मित्र के नाम पत्र

पत्र-लेखक

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अनुवादक

सुरेशचन्द्र शर्मा

शिवलाल अग्रवाल एण्ड क० लि०

आगरा

प्रकाशक--
गोर्धनदास जैन
व्यवस्थापक
शिवलाल अग्रवाल एण्ड क० लि०
आगरा

हिन्दी
प्रथम संस्करण, मार्च [illegible]
मूल्य [illegible]

मुद्रक :
यज्ञदत्तशर्मा,
निराला प्रेस,
आगरा

आमुख

इस ग्रंथ में दिये पत्र, सन १९१३-१९२२ के बाद के वर्षों में रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा मुझको लिखे गये थे। 'विदेशों से पत्र' (Letters from abroad) शीर्षक के अन्तर्गत उनमें से बहुत से 'मॉडर्न रिव्यू' में, व पुस्तक रूप में भी भारतवर्ष में प्रकाशित किये गये थे। उक्त पुस्तक को जिसकी कुछ ही प्रतियाँ इंगलैंड पहुँची यह प्रस्तुत ग्रंथ पूरी तरह दोहरा कर विस्तृत रूप में सामने रखता है। अब विषय को अध्यायों में विभाजित किया गया है। साथ ही उन परिस्थितियों को जिनमें ये पत्र लिखे गये थे, एक संक्षिप्त परिचायक सारांश भी दिया गया है।

'माडर्न रिव्यू' के सम्पादक श्रीयुत रामानन्द चटर्जी व मद्रास के प्रकाशक श्रीयुत एस० गनेशन को धन्यवाद देते हुए मुझे हर्ष होता है, कि उन पत्रों को जो भारतवर्ष में प्रकाशित हो चुके हैं, इस ग्रंथ में सम्मिलित करने की उन्होंने अनुमति दी। साथ ही मैसर्स मैकमिलन को, पृष्ठ (५३) पर दी हुई कविता को पूरी तरह उद्धरित करने की स्वतंत्रता देने के लिये, व महाशय केल्क को कृपा कर प्रूफ सही करने की सहायता के लिये, मैं धन्यवाद दूँगा।

कवि की सहमति से यह ग्रंथ मेरे अभिन्न हृदय प्रियमित्र, एवं शान्तिनिकेतन के सहयोगी विलियम विन्स्टेनले पियर्सन की स्मृति में अर्पित किया गया है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साथ संसार के विभिन्न भागों की यात्रा में और मेरे अकेले की उस यात्रा में जब मैं दक्षिण अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड और फ़िजी गया था, वे मेरे साथी थे। इनमें से बहुत से पत्र लिखने के समय, वे कवि के साथ यूरोप व अमेरिका में थे, और उन पत्रों में अक्सर उनकी चर्चा भी है। इटली में १९२३ में, एक रेलवे दुर्घटना के कारण उनकी असामयिक मृत्यु ने-- ठीक उस समय जबकि वे सेवा व प्रेम की अपनी शक्ति के शिखर पर थे—प्राच्य और पाश्चात्य के बंधुत्व को, जो कि शान्तिनिकेतन का उद्देश्य है, हम सबके लिये दूना पवित्र बना दिया है। उनके दो घर थे, एक मैंचेस्टर में और एक शान्तिनिकेतन में और दोनों ही उनको बहुत प्रिय थे। वर्षों के उपरान्त भी, प्रत्येक में उनकी स्मृति आज भी सजग है।

इस पुस्तक से होने वाला लाभ, शान्तिनिकेतन में पिअर्सन-स्मारक-चिकित्सा-गृह में, जो हमारे पड़ोसी संथाल आदिवासी व आश्रमवासियों के लिये खुला है लगा दिया जायगा। शान्तिनिकेतन आश्रम के कुमारों को साथ लेकर इन संथाल ग्रामीणों को देखने जाना, विली पिअर्सन के लिये एक बहुत बड़े उल्लास का विषय था। उन्होंने इनके लिये एक पाठशाला व कुँआ बनवाया और अन्य सेवायें भी कीं। उनकी स्मृति को चिरस्थायी बनाने का, ऐसे चिकित्सागृह से अधिक उपयुक्त ढङ्ग नहीं हो सकता।

अन्त में अपने शीशे पर खुदे चित्र (Dry point etching) के उपयोग करने की स्वीकृति देने की कृपा के लिये, म्युर हैडबोन व मुकुल दे मेरे विशेष धन्यवाद के पात्र हैं, और विलियम रोथेन्स्टीन भी जिन्होंने कवि की हस्तलिपि का प्रतिरूप दिया। जिनको यह पुस्तक अर्पित की गई है, उन्हीं विली पिअर्सन के, वे सब भी, मेरी ही भाँति मित्र थे।

अक्टूबर, १९२८ — सी० एफ० एन्ड्रूज

विलियम विन्स्टेनले ग्रिअर्सन
की
स्मृति
में

इस पुस्तक में प्रयुक्त कुछ नामों का परिचय

बोलपुर--शान्तिनिकेतन के निकट एक नगर और स्टेशन, जहाँ पर शान्तिनिकेतन जाने वालों को रेल से उतरना पड़ता है।

पद्मा—ईस्टा के निकट गंगा की प्रधान धारा।

शान्तिनिकेतन—शान्ति का निवास। महाकवि के रहने का स्थान। इसकी स्थापना महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने की थी।

शिलाईदा—पद्मा-तट-स्थित एक ग्राम जहाँ कवि की पारिवारिक जागीर है और मकान है।

सुरूल--शान्तिनिकेतन के निकट एक गाँव।

उत्तरायण—आश्रम में कवि का मकान। आश्रम में उत्तर दिशा में होने से यह नाम पड़ गया है।

विचित्रा—कवि के कलकत्ते के घर की संगीत-शाला।

विश्व भारती—'संसार व्यापी संस्कृति'। यह नाम कवि के आश्रम में ऊँची शिक्षा को दिया गया है। इसका दृष्टिकोण अन्तर्राष्ट्रीय है।

बंगाल का पुनर्जागरण

[निबन्ध]

: १ :

एक सौ वर्ष पहले बंगाल के पुनर्जागरण ने जो प्रवाह लिया, उसका सोलहवीं शताब्दी के यूरोप के साथ एक अनोखा साम्य था। सम्भवतः मानव इतिहास में उसका परिणाम भी कुछ अंशों तक एकसा ही होगा। कारण, ठीक जिस तरह यूरोप उस समय एक नये जीवन के लिये जागा उसी तरह आज एशिया जाग्रत हो रहा है।

यूरोप में, अरब सभ्यता और इस्लाम मत के आघात ने, पश्चिम को अंधकार-युग की बौद्धिक तन्द्रा से चौंकाया व सचेत किया। तदुपरान्त, यूनानी एवं लातीनी के सनातन साहित्य का पुनरुद्घाटन हुआ। ईसाई धर्म-ग्रन्थों को एक नया अर्थ दिया गया और इन दोनों ने साथ मिलकर पुनर्जागरण व सुधार को सम्पूर्ण किया।

बंगाल में यह पश्चिमी सभ्यता का आघात था जिसने पूर्व को नव जीवन के प्रति सजग किया; उसके आश्चर्यजनक पुनर्जन्म को प्रोत्साहित किया। उसके बाद प्राचीन संस्कृत साहित्य को फिर से उपलब्ध करने का प्रयत्न हुआ और पुराने धर्मों का अन्तरिक्ष से ही सुधार हुआ। इन दोनों शक्तियों ने साथ मिलकर, बंगाल के पुनर्जागरण को एशिया में एक जीवित शक्ति बनाया। स्वयं बंगाल में साहित्यिक एवं कलात्मक आन्दोलन ने विशेष ख्याति प्राप्त की। रवीन्द्रनाथ ठाकुर उसके सिरमौर हुए।

: २ :

बंगाल में, उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में, महत्वपूर्ण प्रश्न था, कि आंग्ल भाषा के प्रसार को प्रोत्साहन दिया जाय अथवा नहीं। मैकॉले के १८३५ के प्रसिद्ध लेख ने इंगलिश भाषा को ऊँची शिक्षा का माध्यम निश्चित किया।

सर जॉन सीली लिखते हैं, "भूतल पर, इससे गुरुतर प्रश्न पर कभी विवाद नहीं किया गया।" इन शब्दों की ओर सहसा ध्यान जाता है। जब तक हम केवल बंगाल की ही नहीं, वरन् प्राच्य के प्रत्येक देश की इससे संबन्धित समस्याओं को न समझें, ये शब्द अतिरंजित प्रतीत होते हैं।

जीत मैकॉले की हुई। तथापि उनके कुछ तर्क निराधार थे। संस्कृत साहित्य को उन्होंने घृणा से देखा; बंगला साहित्य को तुच्छ समझा। इन सम्मतियों को प्रकट करने में उन्होंने बहुत बड़ी भूल की। पर विचित्र बात यह है कि उनके संकीर्ण दृष्टिकोण के होते हुए भी उनकी व्यवहार्य अन्तर्दृष्टि ठीक उस समय के लिये गलती पर नहीं थी। स्वदेश के पुनरुत्थान का मुहूर्त अभी नहीं आया था। बाहर से एक ज़ोरदार धक्के की आवश्यकता थी और अंग्रेजी के अध्ययन ने वह वाञ्छित आघात दिया।

पर नया जीवन जो सबसे पहले सामने आया पूर्णरूप से स्वस्थ नहीं था। उसने तुरन्त ही पुरानी रीतियों को झकझोर दिया और धार्मिक आस्थाओं को अस्थिर किया और प्रायः ऐसे सिरे पर ले गया जो हिंसात्मक एवं विचारहीन था। सबसे अधिक और सबसे बड़ी उथल-पुथल सामाजिक क्षेत्र में हुई। विशुद्ध पश्चिमीय रीतियों के पूरी तरह अनुकरण के कारण विचार दुखद रूप से उलझ गये। यह एक प्रतिभा और अग्र विकास का युग था, जब कि नयी जीवन-शक्ति फूटी पड़ती थी; लेकिन पथभ्रष्ट और अनियंत्रित, मानो तूफ़ानी सागर में पतवार-हीन जलपोत।

: ३ :

वह राजा राममोहन राय का महान् व्यक्तित्व था, जिसकी उपस्थिति ने बंगाल को इस संकट से बचाया। समकालीनों में शिखरवत, एकाकी और शानदार इस अद्भुत विभूति ने, ऐसा प्रतीत होता है, तत्कालीन विभिन्न धाराओं के प्रवाह-बल को ठीक-ठीक नापा और निर्भूल युक्ति से अपना मार्ग-संचालन किया। वे मैकॉले की भाँति यथार्थदर्शी होते हुए भी केवल अवसरवादी नहीं थे। वे एक सच्चे देवदूत थे और देवदूत की भाँति उनमें प्रबल एवं पवित्र उत्साह प्रज्वलित था। साहित्यिक पक्ष में, नयी पश्चिमीय शिक्षा के सबसे उत्साही प्रसारकों में से वे एक थे और

मैकॉले के कार्यक्रम को आगे बढ़ाने में उन्होंने उत्सुकता से सहयोग दिया। किन्तु. उस असाधारणतः परिपूर्ण जीवन की सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा बंगाली जनता के हृदय में प्राचीन भारत के प्रति उस सच्ची श्रद्धा को फिर से उत्पन्न कराने में लगी, जिससे उनके अच्छे पुराने संस्कृत साहित्य का पुनरुत्थान हो। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपनी मातृभाषा बंगला को हेय नहीं समझा, वरन् उसे पुनः पूरे साहित्यिक उपयोग में लाये।

: ४ :

बंगला के साहित्यिक पुनरुत्थान में दूसरे प्रमुख पुरुष, रवीन्द्रनाथ के पिता देवेन्द्रनाथ ठाकुर थे। उनका काम और प्रभाव आधी शताब्दी से अधिक समय तक रहा। यदि साहित्य-वृक्ष की पृथ्वी में गहरी जमी हुई जड़, राममोहन राय को कहें, तो देवेन्द्रनाथ ठाकुर उसके सुदृढ़, बलिष्ठ तने थे और उनके पुत्र रवीन्द्रनाथ उसके फूल और फल थे। साहित्य के इतिहास में, विकास का ऐसा सीधा क्रम खोज पाना, शायद ही संभव हो।

देवेन्द्रनाथ के धार्मिक चरित्र ने उस युग को एक अपने ही ढंग की नैतिक शालीनता से प्रकाशित किया। उनकी आध्यात्मिक सत्ता ऐसी प्रभावशालिनी थी कि सर्वसम्मति से उन्हें महर्षि का नाम उपलब्ध हुआ। अंग्रेजी फ़ैशन के प्रबल बहाव और उसकी बाढ़ के बीच वे सनातन शृंखला से दृढ़ता पूर्वक आलिंगन किये रहे और उन्होंने प्रत्येक ऐसी लड़ी को जो उनके देश को ऐतिहासिक भूतकाल के समीप रखती, सुदृढ़ किया।

उनके पुत्र द्वारा अनुवादित उनकी स्व-रचित जीवन गाथा, आधुनिक बंगाल की गहरी धार्मिक भावना तथा बौद्धिक सत्य के लिये तीव्र इच्छा का प्रकटीकरण करती है। राजा राममोहन राय की परिधि के अन्तर्गत टैगोर कुटुम्ब पहले ही आकर्षित हो चुका था और बाल्यावस्था से युवावस्था में प्रवेश करते हुए, देवेन्द्रनाथ के जीवन-निर्माण के उस महासुधारक की स्पष्ट स्मृति सबसे बड़े प्रभावों में से एक थी।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यतक, इन आरंभिक आन्दोलनों के कारण बंगला-साहित्य के इतिहास में एक सृजनात्मक काल आरंभ हो चुका था। यह केवल बंगाल के ही जागरण का प्रतीक नहीं था वरन् सारे एशिया में एक नये आगमन का द्योतक था।

: ५ :

बंगाल के इस पुनर्जागरण की सतह पर नयी पश्चिमीय शिक्षा और पुनर्जीत प्राचीन संस्कृत साहित्य से संघर्ष की छाया है। लेखक-लेखिकाओं में सबसे सुन्दर और कोमल कुसुम तोरु दत्त ने अपने गीतों की रचना केवल इंगलिश में ही की। किन्तु प्राचीन कालीन संस्कृत की सुगंध उनकी सारी रचनाओं में व्याप्त है और उन रचनाओं को गरिमा सम्पन्न बनाती है। माइकेल दत्त ने लिखना आरंभ किया अंग्रेजी भाषा से; किन्तु, जब कि उनकी साहित्यिक प्रतिभा अपने शिखर पर ही थी उन्होंने उसे छोड़ दिया और अपनी बाद की कविताएँ एक आश्चर्यपूर्ण सुमधुर एवं ओजपूर्ण बंगला में छन्दबद्ध की। बंगाल के पुनरुत्थान में उनको मिल्टन कहा गया है। बंकिम के उपन्यास हर मोड़ पर पश्चिम के गल्प लेखकों की याद दिलाते हैं। जिस उत्साह और लालसा के साथ, किशोर बंगाल ने इस नयी निधि की खोज निकाला, इसकी अभिव्यक्ति इन लेखकों में होती है।

परन्तु इस बात की सुस्पष्टता निहित है इसमें, कि ये लेखक, अपने अंग्रेजी के, तत्परता और लगन-भरे अध्ययन के बीच भी, पुराने भारतीय आदर्श के प्रति अपनी निष्ठा बनाये रहे। जिस शिक्षा में वे निमित हुए थे उसे वे भूले नहीं। अपने जन्म-सिद्ध अधिकार को उन्होंने उपेक्षा से नहीं देखा। स्वतः भाषा ही नहीं वरन इस नये साहित्य के विषय भी सर्वसाधारण के सम्पर्क में आवक लाये गये। बंगाल के ग्राम्य जीवन को जो धीरे धीरे दूर, भूमि में जा रहा था, एक नया आदर मिला। मध्यकालीन और प्राचीन समय, प्रसंग एवं विषय की देन के लिये खोजे गये। अन्ततः स्वदेशी काव्य, संगीत, एवं गायन की सर्जना शिलाओं से, सांगोपांग, राष्ट्रीय साहित्य और कला के निर्माण के लिये, मनुष्यों के मस्तिष्क में प्रेरक आदर्श उठा।

: ६ :

तरुण कवि रवीन्द्रनाथ ने ऐसे वातावरण एवं घनी परम्परा में प्रवेश किया और इन आदर्शों को बंगाल के निजी सच्ची प्रेरणा बनाने के लिये सबसे अधिक काम किया। मेरे एक मित्र ने मुझसे उस दृश्य का वर्णन किया है जब कि वयो वृद्ध

उपन्यासकार बंकिम का आदर हो रहा था और उनको पुष्प-हार अर्पित किये गये थे। उस वृद्ध पुरुष ने अपने गले से हार उतारा और अपने चरणों के पास बैठे एक तरुण लेखक रवीन्द्रनाथ ठाकुर के गले में डाल दिया।

बंकिम बाबू का यह कृत्य अब सभी जगह उदार और उचित माना गया है। दुस्तर कठिनाइयों के बीच, जिसको प्राप्त करने के लिये और सब घोर परिश्रम कर रहे थे, उस तक, अपनी सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा की तेज छलांग से, रवीन्द्रनाथ सहज ही पहुँच गये। कला के आदर्शों को जो पहले धुँधले दिखाई देते थे, उन्होंने स्पष्टता के साथ देखा। साथ ही अपनी बाद की रचनाओं में, वह अपने पिता के आध्यात्मिक सन्देश को और भी आगे ले गये हैं और उन्होंने स्वयं अपने गहनतम धार्मिक विचारों को सौन्दर्य एवं सादगी से अवरित किया है।

हाल के वर्षों में उनकी ख्याति अपने शिखर पर पहुँच चुकी है और उनकी कविता में अब ऊँचा स्वर बढ़ गया है। प्रकृति निरीक्षण से उत्पन्न असीम आनन्द की अन्तर अनुभूति से ऊपर उठकर, विश्व-शोक के रहस्य में प्रविष्ट होने को, दीन के दुरूह भार में भाग लेने को साक्षात मृत्यु से भी अविचल भेंट करने को; ईश्वर की खोज करने और उसका निरभ्र दर्शन पाने को, वह आगे बढ़े हैं।

: ७ :

इस सब में रवीन्द्रनाथ बंग देश के हृदय के समीप रहे हैं। सन् १९१२ में जब मैं उनके साथ था, उनकी आँखें, प्रतिदिन समुद्र पार शान्तिनिकेतन की ओर अपने बच्चों का स्वागत करने को लगी रहतीं। साथ ही अपने उन शिलाईदा के ग्रामीण नर-नारियों के बीच, जिनके वह एक पिता और मित्र थे, लौटने की लालसा लगी रहती।

अतः यह कोई अचंभा नहीं है कि जिसकी रज से उन्होंने अपनी गहनतम प्रेरणा ली, बदले में, वही बंगाल, अपने उज्ज्वल भविष्य व सौभाग्य की एक बहुत बड़ी चेतना लिये हुए, उनके संगीत व काव्य से प्रभावित हुआ। इतिहास के एक महत्तम क्षण में उन्होंने अपने बंधुओं की चढ़ती हुई आशाओं को एक सजीव अभिव्यंजना दी है। उस संगीत, कला और काव्य के देश में,

१ महत् जग की सौम्य स्वर्गिक आत्मा,
स्वप्नरत आगम निरत के ध्यान में,

अपने मानस-चित्र को उनकी रचनाओं में, उन्हीं रचनाओं की सहायता से, देख पाई है। ऐसा संभव है कि जिन स्वप्नों को बंगाल आज देख रहा है वे सभी साकार न हों। साम्राज्य और साथ ही साहित्य के रंगमंच पर,

२ शांत कोलाहल कलह सब,
शान्त स्वर रण-प्रान्त,
सम्राट, सेनापति सगतितर,
जा रहे सम्भ्रान्त

किन्तु जिस समय एक उठती जनता की चेतना उच्चाशा से संचारित है संगीत और काव्य शक्तिशाली यंत्र है और आज स्त्री, पुरुष यहाँ तक कि छोटे बच्चे भी रवीन्द्रनाथ की आँखों से 'सोने के बंगाल' (सोनार बाँगला) का मानस चित्र देख रहे हैं।

यह भव्य मानस चित्र ज्योतिर्मय और जाज्वल्यमान है और उसके साथ ही एक पवित्र भय और आदर का भाव भी अमिश्रित नहीं है कि परमात्मा ने अपने जन-समुदाय पर कृपा दृष्टि की है।

यदि पश्चिम में, संगीत और साहित्य की यह सर्वश्रेष्ठ शक्ति, एक पूरे मानव-समुदाय को, पुनः अनुप्राणित करने में असमर्थ-सी जान पड़ती है तो साथ ही यह स्मरण रखना चाहिये कि भारत आज भी अपने अन्तस्तल में अदृश्य के प्रति जीवित आस्था बनाये हुए हैं।

---

1 The prophetic soul of the wide world
Dreaming of things to come

2 The tumult and shouting dies.
The Captains and theKing depart.

Rabindranath Tagore

रवीन्द्रनाथ का व्यक्तित्व

[एक निबन्ध]

: १ :

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक दिन लन्दन में अपने साहित्यिक जीवन से संबंधित अपने जीवन की रूपरेखा बताई। उस स्मरणीय दिन के वर्णन से उनके स्वभाव और चरित्र को सबसे अच्छी तरह समझा जा सकता है।

साउथ केन्सिङ्गटन अन्डरग्राउन्ड स्टेशन के प्रवेश द्वार के ठीक बाहर एक मकान में ऊपर के कमरे में वे प्रवास किये हुए थे। सन १९१२ सितम्बर का प्रातःकाल था और लन्दन का गहरा कुहरा वायुमंडल में छाया हुआ था। एक विषम रोग से, जिसके कारण उन्हें ऑपरेशन कराने के लिये पश्चिम में आना पड़ा था, वह अब भी बहुत दुर्बल थे और उनका चेहरा पीला और क्लान्त दिखाई पड़ता था।

उन्होंने पहले अपने पिता के बारे में, मुझे बताया—किस भाँति उनकी उपस्थिति में सारा घर शान्त और नीरव हो जाता था, मानो सब लोग उनके 'ध्यान' में विक्षेप न पड़ने देने को चिन्ता शील हों।

उन्होंने अपनी माँ के बारे में भी चर्चा की, जिनकी मृत्यु उनके शैशव में हो चुकी थी। अन्तिम समय में जब उन्होंने इस भूतल पर उनका चेहरा मृतावस्था में भी गंभीर और सुन्दर देखा, तो उनमें बालकों जैसा कोई भय नहीं जगा और न कोई आश्चर्य ही हुआ। सब कुछ शान्त और स्वाभाविक मालूम देता था। और यह तो बाद की बात है कि ज्यों-ज्यों वे बड़े हुए उन्होंने मृत्यु के आन्तरिक अर्थ को समझा।

उन्होंने अपने बाल्यकाल का जो परिचय दिया था, वह इस प्रकार है :—

"मैं बिलकुल अकेला था—यह मेरे बचपन की विशेषता थी—कि मैं बिलकुल अकेला था। अपने पिता को मैंने बहुत कम देखा और यों तो वह बहुत दूर थे किन्तु सारे घर में उनकी उपस्थिति व्याप्त थी और इसने मेरे जीवन पर सबसे बड़ा प्रभाव डाला। माँ के देहावसान के बाद मैं घर के नौकरों के संरक्षण में रखा

जाता था। दिन-प्रतिदिन मैं खिड़की के सामने बैठा करता और जो बाह्य जगत में हो रहा था, उसका अनुमान करता।

जहाँ तक मैं स्मरण कर सकता हूँ, मैं आरम्भ से ही प्रकृति का अनन्य प्रेमी था। आह! जब मैं आकाश में एक-एक करके बादलों को आते हुए देखता तो आनन्द से उन्मत्त हो उठता था। उन आरंभ के दिनों में भी मैं अनुभव करता था कि मैं बहुत निकट और घनिष्ठ साथियों से घिरा हुआ था। हाँ, यह मैं नहीं जानता था कि उसको क्या कहूं। प्रकृति के लिये मुझ में इतना प्रबल प्रेम था कि समझ में नहीं आता, मैं तुमसे किस प्रकार उसका वर्णन करूँ; किन्तु वह एक प्रेम-भरी सहचरी थी, जो सदा ही मेरे साथ रहती और सदैव ही मेरे सामने किसी नये सौन्दर्य का स्पष्टीकरण करती रहती।"

इस भाँति, लन्दन में उस कुहरे वाले दिन, उन्होंने अपने बाल-जीवन का शब्द-चित्र मुझको दिया था। उनका 'Reminiscences' (संस्मरण) का यह उद्धरण इस चित्र को और भी स्पष्ट बना देता है :—

"हेमन्त की प्रातःकाल सोकर उठते ही मैं दौड़कर उपवन में जाता। ओस से भीगी घास और पत्तियों की गंध मुझे आलिंगन करती प्रतीत होती थी। और सूर्य की प्रथम रश्मियों के साथ ही सुकोमल और नवेली उषा, कम्पनयुक्त ताड़-पत्रों की कुंजों के नीचे, मेरा स्वागत करने को अपना मुखड़ा उठाती थी। प्रकृति अपनी मुट्ठी बन्द करती और सहास्य प्रतिदिन प्रश्न करती, "बताओ इसमें क्या है?" और उसमें कुछ भी होना असंभव प्रतीत न होता।"

: २ :

रवीन्द्रनाथ टाकुर ने बताया कि पुराने बंगाली कवि चंडीदास एवं विद्यापति के पढ़ने से, उनकी प्रथम साहित्यिक जाग्रति आई। जब कि वह १२ या १३ वर्ष के थे, तभी के प्रकाशित संस्करण में उन्होंने उनको पढ़ा था और उस साहित्य-सौन्दर्य में रमण किया।

वह और भी आगे बढ़े और युवावस्था के अग्र विकास के साथ ही उनकी शैली का अनुकरण किया और भानुसिंह उपनाम से कुछ कविताएँ प्रकाशित कीं। कुछ समय तक साहित्यिक बंगाल आश्चर्य करता रहा कि आखिर यह भानुसिंह कौन है। अपने बचपन की इन कृतियों की चर्चा करते हुए वे हँसे और बाद में

बताया कि यह बहुतसी अन्य बाल-रचनायें केवल चालू और अनुकरण पूर्ण थीं। उस समय कविगण प्राचीन शैली का ही अनुकरण करते थे।

किन्तु जब उन्होंने वह कविता लिखी जो बाद में 'सान्ध्य-संगीत' नाम से प्रकाशित हुई तो वे प्राचीन शैली की लीक से एक बार ही हट गए और विशुद्ध रूप से रोमांटिक बन गये। आरंभ में वृद्ध समुदाय ने उनका उपहास किया; किन्तु तरुण वर्ग उनके साथ था। उन्होंने कोई अंग्रेजी सांचा नहीं छाँटा; प्रारंभिक वैष्णव धार्मिक साहित्य ही उनकी प्रेरणा का स्रोत था। यह धार्मिक कवितायें बाद में भी, सदा ही उनको विशेष रूप से प्रिय रहीं। उनके पदों में विशेषतः 'गीताञ्जलि' में उनका प्रभाव स्पष्टतः प्रतिबिम्बित है।

: ३ :

रवि बाबू के कथनानुसार वह एक प्रातःकाल था, जब फ्री स्कूल लेन कलकत्ते में, उनके अन्तर्कवि का जन्म हुआ। उस समय नाटकीय एवं आकस्मिक गति से उनकी आँखों के सामने से परदा सा हटा और उन्होंने वास्तविकता की आन्तरिक आत्मा का दर्शन किया।

"वह प्रातःकाल था (उन्होंने मुझे बताया) मैं फ्री स्कूल लेन से सूर्योदय ध्यान से देख रहा था। एकदम एक परदा हटाया गया और सारी वस्तुएँ प्रकाशमय हो उठीं। सारा दृश्य एक सर्वांग सुन्दर संगीत था—एक आश्चर्य जनक लय एवं गति का मिलाप। सड़क पर के मकान, नीचे चलने-फिरने वाले मनुष्य, खेल-कूद में लगे छोटे बच्चे, सभी एक प्रकाशमय पूर्ण के अंग प्रतीत होते थे—अकथनीय आभामय। यह दृश्य सात आठ दिन तक बना रहा। हर कोई, वे भी जो कभी मुझे भार थे, आज मेरे दृष्टि-पथ में, अपने व्यक्तित्व के बाह्य आवरण और परिधि को खो रहे थे। और मैं आनन्दमय था, प्रेममय था, प्रत्येक प्राणी के लिए, हीन से हीन वस्तु के लिये। तब मैं हिमालय गया और वहाँ उसकी खोज की और मैंने उसको खो दिया।........फ्री स्कूल लेन की वह प्रातःकाल उन पहली वस्तुओं में से थी जिन्होंने मुझे अन्तर्दर्शन दिया और अपनी कविताओं में उसी को अभिव्यक्त करने की मैंने चेष्टा की है। तभी से मैंने अनुमत किया कि यही मेरा लक्ष्य था—जीवन की पूर्णता को उसके सौन्दर्य में बताना और यह भी कि यही पूर्णत्व है—आवश्यक केवल यही है कि परदा हटा लिया जाय।"

उस अंधेरे कुहरे भरे काल, कवि के बताते समय, मैंने इस वर्णन को लिख डाला और आज भी स्पष्ट स्मरण है मुझे उस हास्य का, जब उन्होंने कहा "और मैंने खो दिया" और जो महत्व उन्होंने 'जीवन की पूर्णता' शब्दों पर दिया। रवीन्द्रनाथ की निजी गद्य रचनाओं में भी उस घटना का उल्लेख है। उचित ही होगा, यदि मुझको लन्दन में दिये गये चित्र की इस दूसरे उल्लेख से तुलना की जाय। दोनों एक दूसरे का समर्थन और स्पष्टीकरण करते हैं।

"जहाँ सदर स्ट्रीट समाप्त होती है, फ्री स्कूल स्ट्रीट के उपवन के वृक्ष दिखाई पड़ते हैं। एक दिन प्रातःकाल मैं बरामदे में खड़ा था और उनको देख रहा था। सूर्य धीरे-धीरे उन वृक्षों की पत्तियों के ऊपर उठ रहा था, और जब कि मैं उसको देख रहा था, अकस्मात एक क्षण में ही ऐसा प्रतीत हुआ—मेरी आँखों के ऊपर से एक परदा उठ गया। मुझे लगा दुनियाँ लिपटी हुई है एक अकथनीय सुषुमा से, जिसके आनन्द और सौंदर्य की लहरें चारों ओर से प्रस्फुटित हो रही हैं। संसार के उस प्रकाश से जो चारों ओर अपनी रश्मियाँ फैला रहा था, मेरे हृदय को लपेटे हुए शोक के घने आवरण के पर्त के पर्त, आरपार बींधे गये।

उसी दिन वह कविता "अपने स्वप्न से स्रोत जगा" स्रोत की ही भाँति प्रवाहित हुई। उसके समाप्त होने पर भी उस आनन्द और सौन्दर्य के अद्भुत दृश्य पर परदा नहीं गिरा। उस क्षण न कोई ऐसा प्राणी था न कोई ऐसी वस्तु जिसे मैं प्रेम न करता होऊँ·········। मैं बरामदे में खड़ा था कुलियों को सड़क पर जाते देख रहा था। उनका आना जाना, उसकी पोशाक, उनके चेहरे मुझे एक विचित्र रूप से आश्चर्य भरे प्रतीत हुए, मानों संसार महासिंधु में तरंगों और लहरियों की तरह सब हलचल करते हों। जब एक नवयुवक ने दूसरे के कंधे पर अपना हाथ रखा और निकट से हँसते हुए निकला, तो मुझे यह घटना विशेष महत्व की मालूम हुई·········। अपने दर्शन की पूर्णता में मुझे प्रतीत हुआ कि मैं समष्टि रूप से मानव शरीर की हलचल देख रहा हूँ और संगीत, एवं एक रहस्य भरे नृत्य की लय, गति और स्वर का अनुभव कर रहा हूँ।

कुछ दिनों मैं इस आह्लाद की मनोदशा में रहा। मेरे भ्रातृगण दार्जिलिंग जा रहे थे और मैं उनके साथ हो लिया। मैंने सोचा, संभव है, सदर स्ट्रीट की घनी

बस्तियों में, जो कुछ दृश्य मैंने देखा था, उसे हिमालय गिरि-शृंगों पर अधिक पूर्ण एवं सुस्पष्ट रूप से निहार सकूँगा।

किन्तु जब मैं हिमालय पहुँचा, सारा चित्र बिदा हो गया। यह मेरी ही भूल थी। मैंने सोचा कि सत्य को मैं बाहर से प्राप्त कर सकूँगा। कारण, हिमालय चाहे कितने ही ऊँचे और गौरवपूर्ण क्यों न हो वे मुझे कोई सत्य पदार्थ न दे सके। किन्तु, ईश्वर, वह महादानी, एक गली के संकीर्ण स्थल पर स्वयं ही सारे विश्व को हमारी दृष्टि के लिये सुलभ बना सकता है।"

: ४ :

"प्रभात गान' नाम से प्रचलित छन्द-संग्रह, उसी आनन्दोल्लास के स्रोत से प्राप्त हुआ। उसमें जगत के सौन्दर्य रहस्य को घनिष्ठता पूर्वक जानने की कौतूहल और उत्साह-भरी लालसा है। परन्तु अभी तक प्रत्यक्ष अनुभूतियों की गहरी नींव उनके पास नहीं थी कि जिसके ऊपर वे निर्माण कर सकते। इसी कारण उनके पहले पहल के गीत कल्पना के क्षेत्र के हैं और आये दिन के मानवीय अनुभवों से विशेष रूप से सम्बन्धित नहीं है।

वाह्य परिस्थितियों ने व साथ ही उनके अन्तर्प्राण ने इस तरुण लेखक को, आत्मा के जादूभरे उपवन में अधिक समय रहने से रोक दिया। उनके पिता ने उनकी महती प्रतिभा देखकर बड़ी बुद्धिमत्ता से इस बात पर जोर दिया कि कलकता त्याग कर वे पारिवारिक जागीरों की देखभाल करने के लिये गङ्गातट पर चले जायं। इस काम से वे बंगाल के ग्राम्य जीवन के घनिष्ठतम सम्पर्क में आ गये। प्रतिदिन उनको आदमियों के व्यावहारिक मामलों को बरतना पड़ता; उनकी मौलिक आशायें, उनके मानवीय भय का, जिनमें प्रथा या रीति का कोई लगाव-लिपटाव नहीं था, अनुमान करना और समझना होता। एक कवि के नाते उनके सौभाग्य से, उनके प्रकृति सम्पर्क के आनन्द को पूर्ण और स्वतन्त्र रूप से अभिव्यक्ति मिली। अपने कार्य-संलग्न जीवन में अवकाश के समय, गंगा के बीच मटीलनों में वे अकेले रहते; अपनी नाव में एक गाँव से दूसरे गाँव को आते जाते रहते।

"कभी-कभी, (उन्होंने मुझे बताया) बिलकुल अकेले ही मैं महीनों बिता देता और मौन रहता यहाँ तक कि न बोलने के अभ्यास से मेरा स्वर क्षीण और दुर्बल

हो गया। काम के सिलसिले में जो ग्राम्य-जीवन मैंने देखा था, उस पर मैं अपनी नाव में कहानियाँ लिखता और उनके बीच उन घटनाओं व वार्तालापों को जिन्हें मैंने देखा-सुना था, लिपिबद्ध करता। यह मेरा 'आख्यायिका' काल था। कुछ लोगों के विचार से मेरी यह कहानियाँ इससे पहले के गीतों की अपेक्षा अधिक सुन्दर है।"

शिलाईदा के इस लम्बे प्रवास के समय ही, अपनी मातृभूमि बंगाल के लिये, उनका गहनतम प्रेम बढ़ा। राष्ट्रीय आन्दोलन अभी अपने वास्तविक बाह्य रूप और आकार में नहीं आया था। किन्तु वह शक्तियाँ जो बाद में फूटकर बाहर आने वाली थीं, अब भी प्रमुख बंगाली विचारकों के हृदय में हलचल कर रही थीं। रवीन्द्रनाथ की आत्मा ने भी देशभक्ति की ज्योति को प्राप्त किया, कलकत्ते में नहीं वरन ग्रामीणों से। अपने बंधुओं के ग्राम्य-जीवन में जो कुछ देखा था, उसे सोचकर, अपने देश के उज्ज्वल भविष्य में उनका अविचल विश्वास दृढ़तर हो गया। पश्चिम की नयी सामाजिक शक्तियों के सम्पर्क से जिस संकट की आशंका थी, उससे वे अनभिज्ञ नहीं थे। सच तो यह है कि उनकी बहुत सी छोटी कहानियों का आलोच्य विषय यही है। जो कुछ देख चुके थे उसके कारण, उनका हृदय से यही विश्वास था कि वह पदार्थ जिससे नया राष्ट्रीय जीवन जन्म लेने वाला है मूलत: स्वस्थ है, खोखला नहीं है। उस प्रातःकाल, बंगाली ग्रामीणों के बारे में शायद अधिकतम उत्साह और प्रेम से उन्होंने चर्चा की। उन्होंने बताया कि सन्तोष, संयम, सरलता, माननीय सौजन्य एवं सहानुभूति के बहुत से पाठों के लिये, वे उन्हीं ग्रामीणों के आभारी हैं।

: ५ :

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने साहित्यिक जीवन का दूसरा प्रकरण तब से निश्चित किया है जब वह शिलाईदा से शान्ति-निकेतन आश्रम को गये। उन्होंने अपने पिता की जागीर को छोड़ा। उनको अधिकाधिक ऐसा लगा कि उनके जीवन में एक नये साहस का युग आरंभ होने वाला है। किसी परिवर्तन का पूर्वाभास तो उन्हें हो ही रहा था, जिसके लिये इन शान्त वर्षों में, ग्राम्य-जीवन में निरन्तर तैयारी हो रही थी।

धीरे-धीरे उनके सामने वह स्पष्ट पुकार आई कि अपने देश की सेवा के लिये जीवन-समर्पण कर दिया जाय। एक पाठशाला की स्थापना के उद्देश्य से पहले तो वे कलकत्ते गये, बाद में उसी उद्देश्य से वह शान्ति-निकेतन आये। शान्ति-निकेतन आने पर और अपना नया काम आरंभ करने के मार्ग में धना... एक बाधा थी। "मैंने अपनी पुस्तकें बेचीं।" उन्होंने मुझ से सकरुण स्वर से कहा।

"मैंने अपनी सारी पुस्तकें, पुस्तक अधिकार और जो कुछ भी मेरे पास था सब का सब बेच डाला ताकि मैं पाठशाला को चालू रख सकूँ। यह बताना कठिन होगा कि कैसा संघर्ष वह था और कैसे संकटों का मुझको सामना करना पड़ा। शुरू में तो उद्देश्य विशुद्ध देशभक्ति का ही था किन्तु कालान्तर में वह अधिकतर आत्मिक हो गया। तब इन्हीं सब कठिनाइयों एवं परीक्षाओं के बीच ही वह सबसे महान् परिवर्तन आया—वह था सच्चा 'वर्ष शेष' मेरे निजी आन्तरिक जीवन मे परिवर्तन।"

इसके बाद उन्होंने बताया कि किस तरह जब वह चालीस वर्ष के थे, उनकी पत्नी का देहावसान हुआ। कुछ ही समय बाद उनकी पुत्री में राजयक्ष्मा के चिन्ह दिखाई देने लगे। वह स्कूल छोड़कर अपनी लड़की के साथ उसकी सुश्रूषा व चिकित्सा कराने के लिये बाहर चले गये। छः महीने तक वे आशा और भय के बीच हिलोरें लेते रहे। किन्तु अन्त में वह लड़की सदा के लिये उनकी गोद से निकल गई और उनके हृदय को और भी अधिक सूना बना दिया। तब दुःख की तीसरी प्रबल बाढ़ आई। उनका सबसे छोटा लड़का, जिसके लिये वे स्वयं माँ और बाप दोनों ही थे, हैजे से बीमार पड़ा—और उनके विशेष स्नेह से प्रतिपालित बच्चा उनकी उपस्थिति में चल बसा।

उस प्रातःकाल, जब वह इन बातों की चर्चा कर रहे थे, लन्दन के कुहरे का अंधेरा धीरे-धीरे हटा। एक विशेष कान्ति के साथ बादलों में होकर प्रकाश की रश्मियाँ चमकने लगीं। ऐसा प्रतीत होता था कि यह बाहरी दृश्य एक अस्पष्ट सा प्रतीक है उस कहानी का जो ऐसी शान्ति से मुझे ऊपर के कमरे में सुनाई जा रही थी।

महाकवि ने उन दिनों व घड़ियों की चर्चा की, जब मरण स्वयं एक प्रिय साथी बन गया था—अब भय का सम्राट नहीं वरन् बिल्कुल परिवर्तित रूप में—एक अभिलषित मित्र।

उन्होंने कहा, "तुम जानते हो, यह मरण मेरे लिये एक महान् आशीर्वाद था। दिन प्रति दिन इस सबके द्वारा वृद्धि का, पूर्ण होने का आभास मिलता था मानो कुछ खोया ही न हो। मुझे ऐसा लगा, यदि इस विश्व में एक भी अणु खोता हुआ मालूम हो तो सच यह है कि वह कभी भी नाश को प्राप्त नहीं होता। मैंने जो अनुभव किया उसका कारण मानसिक-दैन्य न था। वस्तुतः वह विशाल और भरे पूरे जीवन का बोध था। अन्त में मृत्यु क्या है! यह मैंने जान लिया। यह थी जीवन की पूर्णता।"

जब उन्होंने ये शब्द कहे तो उनकी भावमुद्रा संकेत कर रही थी उस गहरी वेदना की तह की ओर, जिसको पार कर आनन्द और शान्ति विजयी हुए हैं।

: ६ :

इसी समय, अपनी मातृभाषा बंगला में, उन्होंने 'गीतांजलि' लिखी। उन्होंने कहा, "उन कविताओं को मैंने अपने लिये लिखा था। उन्हें लिखते समय उनको प्रकाशित कराने का तो मैंने विचार भी नहीं किया था।"

वे उनके जीवन में एक परिवर्त्तन को व्यक्त करती हैं, जब कि महाकवि की 'सामाजिक व राष्ट्रीय आकांक्षाएँ पूरी तरह विश्वबन्धुत्व में समा गईं'। उनके अपने ही शब्दों में, उन्होंने प्रयत्न किया है, "जीवन की पूर्णता को उसके सौन्दर्य में बताना और यह भी कि यही पूर्णत्व है।"

उस शोक के समय के बाद वह एक पथिक की भाँति, एक यात्री की भाँति आगे बढ़ते रहे हैं। यह उनके जीवन का सबसे अन्तिम पक्ष है। अपने स्वास्थ्य के ही कारण, पश्चिम की यात्रा करने के लिये वह बाध्य हुए। पर यहाँ भी, जैसा जीवन के और पहले अवसरों के बारे में बताया जा चुका है, वाह्य परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ-साथ एक नयी आध्यात्मिक प्रगति हुई है।

उन्होंने मुझे लिखा, "जब मैंने अटलांटिक पार किया और जहाज पर नये वर्ष के पहले दिन बिताये थे तो मैंने अनुभव किया कि मेरे जीवन की एक नयी

स्थिति आ गई है—एक पथिक की स्थिति। खुली सड़क की ओर, प्रेम में स्वात्मानुभूति की ओर !"

एक पत्र उन्होंने मुझे पहले लिखा था। उसमें उन्होंने संसार की परस्पर लड़ने वाली जातियों के मिलन और रंगभेद से उत्पन्न होने वाले पक्षपात को दूर करने के सम्बन्ध में चर्चा की है। उसी के एक स्थल पर ये शब्द हैं:—

"मनुष्य के सामने, कभी भी जो समस्याएं आई हैं, उनमें सब से बड़ी इन जातियों के मिलन एवं सम्मिश्रण की है। मेरा ऐसा विश्वास है कि यह वर्तमान युग की समस्या है और हमको सत्यार्थी की भाँति कष्ट और अपमान सहन करने को प्रस्तुत रहना चाहिये जब तक मनुष्य में स्थित दैव की विजय न हो।"

'गीतांजलि' लिखे जाने के बाद रवीन्द्रनाथ ठाकुर दिन प्रतिदिन इन महत्तर अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों का सामना करते रहे हैं। अपेक्षाकृत संकीर्ण राष्ट्रीयता को, जिसने एक समय उनकी रचनाओं पर अपनी छाप डाली थी, उन्होंने एक ओर हटा दिया है। अपने निजी जीवन कार्य के अन्तर्सामंजस्य को समझने का भी उन्होंने प्रयत्न किया है और साथ ही उसके गूढ़ार्थ को भी। महाकवि अब दर्शन की सीमा पर पहुँच गये है किन्तु उनकी काव्य-प्रतिभा किसी ढंग से घटी हुई नहीं प्रतीत होती। संगीत का स्रोत अब भी नयी धाराएँ भेज रहा है।

: ७ :

१९१२ में जब रवीन्द्रनाथ पहली बार लन्दन पहुँचे तो अपने अंग्रेज़ मित्रों के सामने अपनी बंगला कविताओं का अनुवाद रखा। रखते समय वे विशेष रूप से हतोत्साहित थे। उन्होंने अपनी इस बड़ी उपलब्धि के मूल्य का बिल्कुल अनुमान भी नहीं किया था। "मुझे पता चला" उन्होंने कहा, "कि मुझे अपने बंगाली छन्दों से सारे रंग-बिरंगे अलंकारों को हटाना पड़ा और उनको सादी अंग्रेजी पोशाक पहनानी पड़ी। उन अंग्रेजी विद्वानों के निकट जिनका कथन प्रामाणिक है, रवीन्द्रनाथ की शैली के विषय में यह मान्य है कि यह सुललित, सुमधुर गद्य का प्रदर्शन करती है और अंगरेजी भाषा के लिये अपेक्षाकृत नये ढंग की है। इस शैली ने ग्रेट ब्रिटेन के साहित्य को धनी बना दिया है। विजय श्री पाई गई है—साहित्यिक इतिहास के लिये अद्वितीय विजय श्री—कि एक कलाकार ने अपनी

रचनाओं का अनुवाद किया एक बिल्कुल नयी भाषा में और अपने सन्देश को एक दम उच्चकोटि के साहित्यिक रूप में दो राष्ट्रों के सामने रख दिया।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की असाधारण सफलता ने पूर्व और पश्चिम को निकट लाकर भाईचारे और एक दूसरे को समझने का अवसर दिया है। जहाँ जातीय प्रतिद्वन्द्विता और धार्मिक विभाजन की शक्तियाँ इतनी दृढ़ हों, यह मानवमात्र के लिए सचमुच एक बहुत बड़ा आशीर्वाद है कि एक उदारमना महापुरुष का स्वर सुना जा सकता है, विशेषकर ऐसे युग में जब चारों ओर कोलाहल और उपद्रव हों। सारा संसार स्वागत करता है उनके स्वर का, मानो वह देवदूत हों, और मानव जाति के लिये शुभकामनाओं और शान्ति का भंडार हो।

मित्र के नाम पत्र

प्रकरण : १ :

इस प्रथम प्रकरण के पत्र उन प्रारम्भिक वर्षों में जब मैंने शान्तिनिकेतन में अध्यापन कार्य आरंभ ही किया था, रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा मुझको लिखे गये थे। सितम्बर १९१३ में वह युरोप से लौट आये किन्तु मलेरिया ज्वर से पीड़ित होने के कारण मैं उनके साथ नहीं आ सका था। बाद में अपने मित्र विली पिअर्सन के साथ दक्षिण अफ्रीका जाना मेरे लिये आवश्यक हो गया था ताकि मैं शर्त बन्दी की प्रथा से भारतीय श्रमिकों पर होने वाले अत्याचार के विरोध में, असहयोग आन्दोलन में भाग ले सकूँ। हम दोनों १९१४ की अप्रैल में भारत लौटे और १९१५ सितम्बर में फिजी जाने तक महाकवि के साथ रहे।

नैनीताल के निकट रामगढ़ [illegible] १९१४ मई के पिछले भाग में महाकवि नित्य प्रति मुझको पत्र भेजते थे। पत्रों के इस विशेष क्रम के सम्बन्ध में कुछ स्पष्टीकरण आवश्यक है।

अपनी गर्मियों की छुट्टियाँ बिताने के लिये वे पहाड़ियों पर गये थे और शरीरतः पूर्ण रूपेण स्वस्थ थे। पर बाद में उन्होंने बताया कि वहाँ पहुँचने पर मृत्यु कष्ट जैसी मानसिक पीड़ा का उन्होंने अनुभव किया। उन्हें आशा भी न थी कि वह जीवित बच सकेंगे। इससे भी विचित्र बात तो यह थी कि यह सब कुछ अकस्मात ही हुआ और एक ऐसे समय पर जब कि वे हिमालय के सर्वोपरि सौंदर्य के कारण पुलक गात थे, साथ ही मैदानों की भीषण गर्मी से परिवर्तन पाकर शान्ति अनुभव कर रहे थे। मुझे स्मरण है जब उन्होंने यह कहा कि निर्मल, निरभ्र आकाश में आकस्मिक वज्रपात की भाँति मर्मपीड़ा के आघात ने मुझे अभिभूत कर लिया।

यह व्यथा, जिसकी मई के पत्रों में चर्चा है, सम्पूर्णतः शान्त हो गई। जून के पूरे महीने भर कवि मन और शरीर से स्वस्थतम थे और उन्होंने छुट्टियों की समाप्ति पर अपनी पाठशाला में, व अपने बच्चों में पूरी तरह काम पुनः आरम्भ

कर दिया था। मुझे ठीक स्मरण है कि सन् १९१४ जून विशेष आनन्द से बीता।

किन्तु जुलाई के आरंभ में फिर उनके जीवन पर अँधेरा छा गया और ऐसा प्रतीत होता था कि एक बार फिर उनपर अधिकार पाया जायगा। उस अन्धकार का कोई बाहरी कारण जैसे बुरा स्वास्थ्य या बुरा जलवायु नहीं मालूम देता था और पाठशाला का काम भी आश्चर्यजनक प्रगति पर था। परन्तु बराबर उन्होंने, एक रहस्यमय दुर्वह भार एवं मानसिक पीड़ा की चर्चा की है। यह पीड़ा बलात् उन्हें एकाकी जीवन की ओर ले गई। वे पाठशाला को छोड़कर सुरूल में अकेले रहे। लगभग तीन महीने तक यह उदासी रही। संभवतः इस बीच में पत्र नहीं लिखे गये; किन्तु मुझे इस पीड़ा का सुस्पष्ट एवं दुखद स्मरण है।

आने वाले महायुद्ध का समाचार एवं संकेत पाने के बहुत पहले की बात है। हम एक ढङ्ग से संसार से हटकर शान्तिनिकेतन में रह रहे थे। इस समय उनका चित्त, मानवता को डसने वाली किसी भावी दुर्घटना का आभास पाकर पूरी तरह व्यथित था और वे उसके लिये चिन्तित थे। इसी समय उन्होंने बंगला में एक महत्वपूर्ण कविता विध्वंसक (Destroyer) लिखी जो युद्ध आरंभ से कुछ सप्ताह पूर्व ही प्रकाशित हुई। इस कविता में उन्होंने भूतल पर अकस्मात आने वाले संसार की चर्चा की है। उसमें सम्मिलित पंक्तियों का अनुवाद यह है :—

आ रहा यह कौन, विध्वंसक कहीं ?

उच्छ्वसित हो अश्रुवारिधि काँपता
वेदना की ऊर्ध्वउच्छल ज्वार में
झूमता उन्मत्तता से मेघदल
अरुण हो, विद्युत-प्रताड़ित वात में

भर गये नभ नील तम में घहर कर
वज्र कंपित हास से उन्मत्त के;
मरण से अभिषिक्त रथ-आरूढ अब
जीवन; करो अर्पित उसी सम्राट को—

भेंट जो संचित किये तुमने सभी।

अब उस विगतकाल पर ध्यान देते हुए जब कि मानवता पारस्परिक संघर्ष से छिन्न-भिन्न हो रही थी, यह निश्चित प्रतीत होता है कि महाकवि का अत्यन्त भावुक हृदय आने वाली दुर्घटना को पहले से ही अस्पष्ट रूप से अनुभव कर रहा था। मैं और किसी ढंग से उस गहरी मानसिक पीड़ा का समाधान नहीं कर सकता।

लन्दन, १६ अगस्त १९१३

यह जान कर कि अब तुम शान्ति निकेतन में हो मुझे बहुत हर्ष है। वहाँ तुम्हारे साथ होने की अपनी उत्कट इच्छा को वर्णन करना असंभव है।

अन्ततः वह समय आ गया है कि इंगलैंड से मुझे विदा हो जाना चाहिये; कारण, मैं देख रहा हूँ कि पश्चिम का मेरा काम मुझे बहुत खपा रहा है। यह मेरा बहुत अधिक ध्यान आकर्षित कर रहा है और वास्तविक से अधिक महत्व का रूप धारण कर रहा है। अतः बिना अधिक समय नष्ट किये, मुझे उस विज्ञप्ति-विहीन, शान्त, एकान्त स्थल में चले जाना चाहिये, जिसमें हर सप्राण बीज को अंकुरित करने की क्षमता है।

अभी प्रातःकाल में ही रौथैन्स्टीन के ग्राम्य-निवास तक मोटर की सवारी करने जा रहा हूँ। अब यदि मैं और भी देर करूँ तो दूसरे पत्रों का इसी डाक से उत्तर देने को समय नहीं रहेगा। अतः इस पत्र को मुझे यहीं समाप्त कर देना चाहिये।

कलकत्ता ११ अक्टूबर १९१३

इधर मैं बाधाओं के बीच होकर निकला हूँ। मेरा जीवन मुझे सूना-सा प्रतीत होता था और उत्तरदायित्व के ऐसे भारी बोझ से दबा हुआ प्रतीत होता था, जो अकेले आदमी के लिये असह्य था। स्पष्टतः मेरा मन इंगलैंड में पाये हुए मित्रों का सहारा लेने का अभ्यस्त हो गया है और उसकी धारा बहिर्मुखी हो रही है। अतः अपने देश में आने पर जहाँ कि मानव का सम्पर्क पश्चिम जैसा घनिष्ट नहीं है, मैंने अपने आपको स्वजन-परित्यक्त और अपनों से हटाया सा अनुभव किया, जहाँ बिना किसी की सहायता पाये ही हर व्यक्ति को अपनी समस्याओं से जूझना पड़ता है। कुछ काल तक एकाकीपन मेरे हृदय पर एक भारी बोझ सा लदा रहा। पर कुछ ही समय में मैंने पूर्ववत मानसिक व्यवस्था

प्राप्त की और अपनी मानसिक धारा को बाह्य जगत से पलट कर अन्तर्मुखी होते हुए अनुभव किया और अब मैं जीवन में सुसगति की बाढ़ अनुभव कर रहा हूँ। वह मेरे कंधों से बोझ को बहाये लिये जा रही है और अपने आह्लाद भरे मार्ग में मुझे भी लिये चल रही है।

भारत में हमारे जीवन का क्षेत्र संकीर्ण और अनैक्यपूर्ण है। यही कारण है कि बहुधा हमारा मस्तिष्क प्रान्तीयता से ओतप्रोत है। अपने शान्तिनिकेतन आश्रय में हमारे बच्चों का दृष्टिकोण यथासम्भव व्यापक होना चाहिये और विश्वव्यापी, मानवीय हित ही उनका स्वार्थ होना चाहिये। यह सब, केवल पुस्तकों के पढ़ने से नहीं—वरन् विस्तृत जगत से व्यवहार द्वारा—स्वतः ही होना चाहिये।

शान्तिनिकेतन

११ अक्टूबर १६११।

शान्तिनिकेतन में अपने नियमित काम के दायित्व लेने के पूर्व तुमको निश्चय ही मलेरिया रोग के विष से अपने शरीर को मुक्त कर लेना चाहिये। क्या तुरन्त ही यहाँ चला आना और हमारे साथ शान्तिपूर्वक, पूर्ण विश्राम से रहना तुम्हारे लिये असम्भव होगा? यहाँ अपना काम आरम्भ करने से पहले जगदानन्द को बहुत बुरे ढङ्ग का मलेरिया था। उनका बोलपुर आगमन, प्राण-रक्षक हुआ है। हमारे आश्रम को एक प्रयत्न का अवसर दो वह तुमको पुनः स्वस्थ करदेगा। तुम्हारे कमरे में डेस्क, लिखने के सामान और अन्य आवश्यक वस्तुओं का प्रबन्ध कर दिया जायगा। अपने स्कूल की भूमि में तुम थोड़ी सी फुलवारी आरंभ कर सकते हो और जब तब साल की कुंजों में रमण कर सकते हो। संभवतः यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो कभी-कभी मुझे एक यूनानी भाषा का पाठ पढ़ा देना, तुमको क्लान्त नहीं करेगा।

आजकल मैं सङ्गीतमय हो रहा हूँ और प्रतिदिन नये-नये छन्द बना रहा हूँ।

*

शान्तिनिकेतन, फरवरी १९१४

[दक्षिण अफ्रीका से मेरे इंगलैंड लौट आने पर लिखा गया ।]

मैं तुमको अपना स्नेह, और लगभग दो महीने पहले लिखे हुए अपने एक गीत का अनुवाद भेजता हूँ। यह जानकर कि तुम हमारे पास मरण का ज्ञान और दुख का कोमल बल* लेकर आ रहे हो, हम तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। विदित हो, कि जब श्रीयुत गाँधी व दूसरे व्यक्तियों के साथ दक्षिण अफ्रीका में हमारे निमित्त लड़ रहे थे, हमारा सर्वोत्तम प्रेम तुम्हारे साथ था।

कोलाहल भरे मेरे दिन अभी बीते नहीं हैं। सच तो यह है कि व्यवस्थित होकर अभी मैं अपने काम से नहीं लग पाया हूँ और साथ ही विश्राम भी नहीं पा रहा। विभिन्न रूप में प्रतिदिन बाधाएँ आती हैं। अन्ततः मैंने निश्चय कर लिया है कि निमंत्रणों पर ध्यान न दूँ, पत्रों का उत्तर न दूँगा और अभद्र बन जाऊँगा।

अपने आश्रम में आमों पर बौर आरहा है। श्रुत और अश्रुत संगीत से पवन ओत-प्रोत है। मेरी समझ में नहीं आता कि ऋतुओं की पुकार के लिये क्यों हम बहरे बन जायें और मूर्खता से इस तरह व्यवहार करें कि मानो मनुष्य के लिये वसंत और शिशिर एक से ही हैं—नित्य उसी ढर्रे के कामों में जुटे रहें और जब तब भी निरर्थक और असंगत होने की भी हमको स्वतंत्रता न हो। जो भी हो, आजकल मैं एक ऐसी धुन में हूँ जहाँ व्यक्ति यह भूल जाता है कि उसका कोई दायित्व भी है, अतिरिक्त इसके कि वह निरर्थक रहे और प्रसन्न हो।

शान्ति-निकेतन, ५ मार्च १९१४

इधर कुछ दिनों से मैं अकेले ही शिलाईदा के एकान्त में समय व्यतीत कर रहा हूँ। उसकी मुझे बहुत बड़ी आवश्यकता थी और उससे मुझे बहुत लाभ हुआ है। मुझे ऐसा लगता है कि कुछ समय के लिये बाह्य विक्षेप से मैं अपनी रक्षा करूँ ताकि अपनी आन्तरिक सामर्थ्य की वृद्धि कर सकूँ और कभी—परोपकार के मिथ्या निश्चय से इस बात को कर्तव्य न समझूँ कि बलात् अपने को काम में लगाऊँ और जिस काम को मैं करूँ उसे सजीव एवं वास्तविक बना दूँ।

---

* नोट—यह मेरी माँ की मृत्यु की ओर संकेत है जो मेरे अफ्रीका निवास के समय हुई थी—सी० एफ० एन्ड्रूज।

दूसरे को लाभ पहुँचाने का प्रयत्न करना और साथ ही अपने आप पर इतना भी न हो कि दूसरे को दे सके—यह दयनीय व्यापार है।

शान्तिनिकेतन, १० मई १९१४

यहाँ पर मेरे साथ रहने के लिये तुम कब आ रहे हो? मुझे डर है कि आजकल तुम बहुत अधिक चिन्ता से घिरे हुए हो और तुमको बहुत विश्राम की आवश्यकता है। मैं इन छुट्टियों में तुमको काम नहीं करने दूँगा। छुट्टियों के लिये हमारा कोई विशेष प्रोग्राम नहीं होना चाहिये। हम दोनों इस बात पर सहमत हों कि जबतक आलस्य स्वयं हमारे लिये भार न हो जाय, हम छुट्टियों को पूरी तरह नष्ट करें। एक आध महीने के लिये हम यह सहन कर सकते हैं कि हम समाज के उपयोगी सदस्य न रहें। उपयोगी बनने के उत्सुक प्रयत्न से बहुत-सी असफलताएँ होती हैं, कारण अपने लोभ से हम बीजों को बहुत पास-पास बो डालते हैं।

रामगढ़ १४ मई १९१४

यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि मैं ठीक उसी जगह आगया हूँ जिसकी मुझे संसार भर में सबसे अधिक आवश्यकता थी। बंगाल के मैदानों के प्रति अश्रद्धा होने से मैं घृणा करता था, जहाँ कि पृथ्वी ऐसी अनबोल और लजीली है कि एक मात्र आकाश को उसने सारे क्षितिज का साम्राज्य सौंप दिया है। पर हर्ष की बात है कि कवि का हृदय अस्थिर होता है। वह सरलता से जीता जा सकता है; और आज मैं, क्षमा याचना करते हुए, पिता हिमालय के सम्मुख घुटने झुका रहा हूँ कि अंधविश्वास के कारण इतने समय तक मैं दूर रहा।

चारों ओर की पहाड़ियाँ मुझे मणिपात्र प्रतीत होती हैं जिससे शान्ति और सूर्य प्रकाश छलका पड़ता है। एकान्त उस पुष्प की भाँति है जो सौन्दर्य की पंखड़ियाँ फैला रहा है और जो ज्ञानमधु को हृदयंगम किये है। मेरा जीवन भरा पूरा है। अब वह छिन्न-भिन्न और विभाजित नहीं है।

रामगढ़, १५ मई १६१४

अन्त में, अब मैं अत्यन्त आनन्द अनुभव कर रहा हूँ। केवल इस कारण से नहीं कि इस स्थान की नीरवता ने वह आवश्यक परिवर्तन उपलब्ध किया जहाँ सामुदायिक जीवन की चिन्ता नहीं है वरन इस कारण कि यह मेरे मस्तिष्क को प्राकृतिक और स्वाभाविक भोजन दे रहा है। ज्योंही मैं ऐसी जगह आता हूँ, मैं अनुभव कर सकता हूँ कि पहले मैं आधे आहार पर रह रहा था।

जबसे मैं यहाँ आया हूं मैंने अपने आपको पा लिया है। मैं आश्चार्य में डूब रहा हूँ कि अनन्त शक्ति और असीम आनन्द ठीक वही बन गया है जो मैं हूं और जो यह घास की पत्ती है। जब हम चंचल होते हैं तो चारों ओर धूल उठाते हैं और उस परम सत्य को विस्मृत कर देते हैं कि—"हम हैं।" अन्तरंग से आयी दृष्टि से हर एक वस्तु को गोचर करने से जो आनन्द मिलता है उसका मैं तुम्हें वर्णन नहीं दे सकता।

रामगढ़, १७ मई १६१४

आज पिताजी के जन्म-दिवस का उत्सव है। अभी-अभी हमने प्रातःकालीन प्रार्थना की थी और मेरा मन उसीसे भरा हुआ है। आज प्रातः झंझामय है, अंधकार और भय से आच्छादित है जिसमें कभी-कभी विवर्ण प्रकाश झलक दे जाता है। यह आध्यात्मिक नवजन्म का प्रतीक-सा प्रतीत होता है। एक महती आशा की भवना का मैं अनुभव कर रहा हूँ यद्यपि उसमें बहुत बड़े कष्ट का अंश भी निहित है। शाश्वत सत्य के हृदय में विशुद्ध स्वरूप से जन्म लेना, अपने सारे अस्तित्व के साथ विश्वव्यापी हृदय की धड़कन अनुभव करना—यही मेरी अन्तरात्मा की पुकार है। यह सब मैं तुम्हें इसलिये बता रहा हूँ कि तुम समझ सको कि मैं किस स्थिति में हूँ और समय आने पर तुम मेरी सहायता कर सको।

तुम अपनी चिन्ता करो और स्वस्थ हो जाओ, इस योग्य हो जाओ कि अपने साधना-पथ पर नयी शक्ति और आशा के साथ आगे बढ़ सको।

रामगढ़, २१ मई १६१४

निर्जन में होकर, अपने पथ पर मैं संघर्ष कर रहा हूं। शिखर के उस पार का प्रकाश स्पष्ट है। किन्तु अंधेरी घाटी के ढालों पर छाया तिरछी और गहरी

है। मेरे पैर लहुलुहान हो रहे हैं और हँफ-हँफाता मैं परिश्रम कर रहा हूँ। क्लान्त होकर मैं धूल में लेट जाता हूँ और उसके नाम की पुकार करता हूँ।

मैं जानता हूँ कि मुझे मृत्यु को पार करना होगा। ईश्वर जानता है कि यह मरण-वेदना है, जो मेरे हृदय को फाड़कर खोल रही है। अपने पुरातन-आत्म से विदा होने में कष्ट हो रहा है। जब तक कि समय नहीं आता, किसी के लिये समझना कठिन है कि उसने अपनी जड़ें कितनी गहरी जमा ली थीं और कितनी अप्रकाशित एवं अपरिचित गहराई तक उसने अपनी तृषित शिराओं को भेज दिया था जिनके द्वारा जीवन के बहुमूल्य रस को वह चूस रही थी।

किन्तु माँ भगवती कठोर है। सारे उलझे लिपटे सत्यों को वह फाड़ फेंकेगी। अपने में जो मृत है उसका हमको पोषण नहीं करना चाहिये। कारण मृत, मृत्युदायक है। 'मृत्यु के द्वारा अमरत्व की ओर ले चल''। यातना के दंड का तो पूरा भुगतान करना ही होगा।

जब तक हम ऋण मुक्त न हों और मृत-अतीत से बंधन मुक्त न हों, तब तक पवित्र प्रेम और स्वच्छ श्वेत प्रकाश के क्षेत्र में हम प्रवेश नहीं पा सकते। पर मैं जानता हूँ कि मेरी माँ, मेरे साथ है, मेरे सामने है।

रामगढ़, २२ मई १९१४

आध्यात्मिक स्नान जल से नहीं, अग्नि से होता है। कारण, पानी तो केवल ऊपरी धूल को हटाता है, न कि उस मृत पदार्थ को जो जीवन से चिपटे हुए हैं और उसके सौजन्य का दुरुपयोग कर रहा है।। अतः हमको बार-बार अपने आपको अग्नि के अर्पण करना चाहिये।

इसकी कल्पना से हम संकुचते हैं और थर्रा जाते हैं। परन्तु माँ हमको आश्वासन देती है कि जो वस्तु सत्य है, जीवित है, उसका यह कभी स्पर्श भी नहीं करेगी। अग्नि, पाप को भस्म कर देती है किन्तु आत्मा को नहीं। जिसे हम सबके अन्त में जान पाते है वह आत्मा है; क्यों कि माँ आत्मा का पोषण जिस रहस्य में करती है, वह निविड़ अंधकार है और उस पवित्र दृश्य को हम तपस्याग्नि के तीव्र प्रकाश में देख सकते हैं। कभी मृत्यु उस मशाल को लाती है,

जो उसे प्रकाशित करती है और कभी उस संदेश-वाहक को जिसका चेहरा हमारे परोक्ष में होता है।

वह संदेश-वाहक मेरे द्वार पर है। मैं उससे प्रश्न पूछता हूँ। वह उत्तर नहीं देता। परन्तु अग्नि भीषण रूप से प्रज्वलित हो रही है और मेरे अस्तित्व के छिपे कोने जिनमें, असत्य और आत्म-विस्मृति की ऐसी ढेरियाँ जिनका ध्यान भी नहीं था, सामने आ रही हैं। आग को जलने दो यहाँ तक कि फिर कुछ जलाने को रह ही न जाये। सर्वनाश को प्राप्त होने वाली कोई वस्तु बच न रहे।

रामगढ़, २३ मई १६१४

अब मुझे ऐसा लगता है कि मैं फिर हवा और प्रकाश में आ रहा हूँ और अबाधित श्वास ले रहा हूँ। खुले और स्वाभाविक वायुमंडल में आना, जीवन के संतुलन को फिर से पाना और संसार की खुली लीला में अपना स्वाभाविक हाथ बँटाना एक अकथनीय चैन है। साधना में बल प्रयोग उपलब्धि * का खुला शत्रु है। विजय प्राप्त करने वाली शक्ति है निश्चल शान्ति जिसका अक्षय स्रोत अकर्म की गहराई में है। लोभ निश्चय ही परास्त होगा चाहे वह ईश्वर के प्रति ही क्यों न हो।

पिछले कुछ दिनों से मैं एक ऐसी दुनिया में संघर्ष कर रहा हूँ जहाँ छाया का आधिपत्य था और सही अनुपात विलीन हो गये थे। जिन शत्रुओं से मैं लड़ रहा था, वे केवल छाया-चित्र ही थे। अंधेरे के इस अनुभव ने मुझे एक शिक्षा दी है। असत्य की बारीक चादर जब जीवन के बहुत बड़े क्षेत्र पर फैली होती है तो उसका देखना और अनुभव करना बहुत कठिन होता है। हम उसके साथ संधि किये रहते हैं। अब मैंने उसे पूरे भद्दे स्वरूप में स्पष्ट देख लिया है और अब अपने जीवन के प्रति छिन उससे लड़ने की प्रेरणा होती है।

---

* नोट—उपलब्धि से महाकवि का लक्ष्य उस ज्ञान चेतना से है, जो निश्चल अवस्था में ही प्राप्त है।

रामगढ़, २४ मई १९१४

आज मैं पहाड़ी देवदारु की तरह अपने को स्वस्थ अनुभव कर रहा हूँ। आकाश से अपने भाग के प्रकाश को संग्रह करने को प्रस्तुत हूं। साथ ही जब भी तूफान आये, मैं उसके साथ अपना बल तौलने को भी तैयार हूं। इसके अतिरिक्त मैं अनुभवक रता हूँ कि मेरी सभी रुचियाँ हरी बनी रहें, और सभी ओर बढ़ें और मेरे शरीर और मन को पूरी तरह सजग रखते हुए संसार के साथ विभिन्न सम्बन्ध स्थापित करें। जब मनुष्य का स्वभाव बहुरंगी होता है तब स्वर का मिलना बहुत कठिन होता है। कारण, वीणा में तार बहुत से हैं और प्रत्येक तार स्वर में मिलाये जाने का अपना अधिकार समझता है।

पर मैं जानता हूँ कि शरीर-यंत्र कितना ही जटिल क्यों न हो, जीवन सरल है, और केन्द्रीय सरलता के सजीव सत्य को खोने पर सभी वस्तुएँ नाश की ओर अग्रसर होती हैं।

रामगढ़, २५ मई १९१४

यद्यपि प्रातः बेला रात्रि की अपेक्षा असख्य गुनी बहुरगी होती है, तथापि उसमें एक सरलता है। कारण, वह खुली और प्रकाशमान होती है। रात्रि वास्तविकता की सारी समस्याओं पर पर्दा डालना चाहती है और स्वप्न के अत्याचारों को संपूर्ण बना देती है। सत्य के अन्तस्तल को प्रकाश खोलता है और जो कुछ भी अनिर्मित है, या निर्माण हेतु संघर्ष कर रहा है, और मृत है या मृत्यु की ओर अग्रसर हो रहा है उसका प्रकटीकरण होता है, किसी एक ओर ही नहीं परन्तु उस सबके मूल में, जो शक्ति और शालीनता के साथ वृद्धि पा रहा है।

हम सब विरोधात्मक बातों को देखते हैं परन्तु आन्तरिक समन्वय को अनुभव करते हैं। संग्राम और संघर्ष सभी जगह पर हैं किन्तु सौन्दर्य सर्वोपरि है। इससे रात्रि और उससे सम्बन्धित मिथ्या रहस्य और अत्युक्ति की छाया, प्रातःकाल के सरल और श्वेत, पोशाक में प्रकट होने पर, लज्जा से झुक जाती है। आशा और आनन्द विजेता की भाँति उषा के साथ प्रकट होते हैं क्योंकि एक भी काँटा

और घास की पत्ती अब छिपी हुई नहीं है। अब मेरे ऊपर में प्रातःकाल उदय हुआ है; छायाओं के साथ मेरा जूझना अब समाप्त हो गया है। जीवन के तरंगमय क्षेत्र को मेरा हृदय निहार रहा है। बीच में जहाँ-तहाँ फसलों से सुशोभित हरियाली है और कहीं-कहीं विवर्ण बालू के बंजर मैदान हैं और मैं अनुभव करता हूँ कि सब ठीक है। यह बहुत विस्तृत है; सभी ओर क्षितिज तक फैला हुआ है और उसके ऊपर एक सिरे से दूसरे सिरे तक आकाश क्या प्रकाश अपना शासन कर रहा है।

प्रकरण : २ :

अगले कुछ महीनों में मानसिक उथल-पुथल बढ़ी हुई थी। उसके बाद में क्रमशः वह मानसिक दबाव जो महा[illegible] को इतने समय से व्यथित किये हुए था।

यूरोपीय युद्ध के आरंभ में यह [illegible] लगभग असह्य हो गया था। उसका एक कारण तो युद्ध जन्य, संसार व्या[illegible] था और दूसरा था बेलजियम का भारी कष्ट जिससे महाकवि बहुत व्यथित हुए थे। अपने निजी मस्तिष्क के अन्तर्द्वन्द्व को प्रकट करने वाली उन्होंने तीन कवितायें लिखी जिनको उन्होंने भारत में एवं इंगलैंड में एक साथ ही प्रकाशित कराया। इनमें से पहली का शीर्षक था The Boatsmen (नाविक)। उन्होंने लिखने के बाद मुझे बताया कि उसमें वह स्त्री जो नीरव आँगन में धूल पर बैठती है और प्रतीक्षा करती है, बेलजियम को व्यक्त करती है। तीनों में सबसे प्रसिद्ध कविता थी The Trumupet (रणभेरी)। तीसरी कविता का शीर्षक था The Oarsmen (मल्लाह)। उसका लक्ष्य युद्ध के परे है; क्यों कि उसमें प्रकटीकरण है उस साहस, उत्साह एवं विश्वास का जिसकी कि मानव जगत को आवश्यकता होगी, यदि उसे पुराने संसार को उसकी मृत वस्तुओं के साथ छोड़ देना है और प्रयत्न करना है, उन विशाल, अज्ञात, तूफानी सागरों में जो एक नयी दुनिया की ओर ले जायेंगे।

एक चौथी कविता थी जो उस समय प्रकाशित नहीं हुई और बाद में छपी। १९१४ ई० के अन्त में महाकवि ने वह मुझको दी। उस वर्ष बड़े दिन पर आश्रम में उन्होंने एक महत्वपूर्ण व्याख्यान, विद्यार्थियों एवं अध्यापकों को दिया जिसमें वे संत ईसा पर बोले। उसमें उन्होंने ईसा को शान्ति का राजकुमार बताया और साथ ही यह भी बताया कि किस तरह यूरोप में ईसा के नाम की अवहेलना की जा रही थी।

———

शान्ति निकेतन, ४ अक्टूबर १६१४

ऐसा प्रतीत होता है कि मैं फिर अंधेरे से बाहर आरहा हूँ। इतने दिनों से जो भारी बोझ मुझे दबोच रहा था, उसको अपने कन्धों से फेंकने का प्रयत्न कर रहा हूँ। मेरा मस्तिष्क एक हलकापन अनुभव कर रहा है और मैं आशा करता हूं कि मैंने सही तौर पर अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करली है।

सुरूल से हम शान्तिनिकेतन आगये हैं। इस परिवर्तन से मुझे लाभ हुआ है। डा० मैत्रा ने तुम्हारे बारे में मुझे एक लम्बा पत्र लिखा है। उनका विचार है कि यदि तुम्हें फिर रोगी नहीं होना तो भविष्य में अपने स्वास्थ्य के बारे में तुमको बहुत सावधान रहना होगा,

---

शान्तिनिकेतन,
७ अक्तूबर १६१४

एक बार फिर मेरा अन्धकार युग समाप्त हो गया है। यह मेरे लिये एक बहुत बड़ी परीक्षा का समय रहा है और मेरा विश्वास है कि मेरी मुक्ति के लिये यह अत्यन्त आवश्यक भी था। मैं जानता हूँ कि जिस स्तर पर मैं पहले था, उससे उठाया जा रहा हूँ और यह नयी अवस्था का नयापन और पुराने जीवन की पुकार है जो अब तक मुझे दुःख देती रही है। किन्तु आनन्द के प्रकाश की झलक मुझे मिल चुकी है। उसको शब्दों में व्यक्त करना संभव नहीं। मेरा ऐसा विश्वास है कि यह प्रकाश मेरा साथ नहीं छोड़ेगा। उपदेशक का काम मुझे छोड़ देना चाहिये और साथ ही दूसरों के सामने परोपकारी देव दूत के रूप में आना भी छोड़ना चाहिये। मैं प्रार्थना कर रहा हूँ कि मैं अन्तर्ज्योति से प्रकाशित होऊँ न कि केवल एक प्रकाश दीप अपने हाथ में लिये रहूँ।

दार्जीलिंग, ११ नवम्बर १६१४

सच्चा प्रेम हमेशा आश्चर्यमय होता है। हम उसको स्वीकार नहीं कर सकते। अपने लिये तुम्हारे प्रेम को सहर्ष, सधन्यवाद स्वीकार करता हूँ और आश्चर्य-पूर्वक विचार करता हूँ कि उसका हेतु क्या समझूँ। संभवतः हर मनुष्य में अपना एक मूल्य होता है जिससे वह स्वयं अपरिचित रहता है। उसीसे अपने आवरण के

द्वारा अपने प्रेम की प्रेरणा करता है। इसके द्वारा मनुष्य को आशा होती है कि सत्य स्वरूप से अधिक है और तर्क से जितना विदित होता है, उसकी अपेक्षा कहीं अधिक के लिये हम उपयुक्त होते हैं। प्रेम हमारे अन्दर निहित असीम के लिये है, न कि उसके लिये जो प्रकटतः सामने आता है।

कुछ व्यक्तियों का विचार है कि हम जिसे प्रेम करते हैं उसे आदर्श बना लेते हैं। पर सच यह है कि प्रेम के द्वार हम उसके आदर्श को प्राप्त करते हैं और यदि हम उसे जानें तो आदर्श ही सत्य है। हमारे अन्दर शाश्वत विरोध है कि हमारा मूल्य हमारी अयोग्यता से प्रकट होता है; और प्रेम प्रक्रिया के परे भी जा सकता है और अन्त में परम सत्य क्यों प्राप्त करता है। यदि हमको प्यार न किया जाता तो हम कभी भी निश्चय नहीं कर सकते कि हम वस्तुतः जहाँ हैं, उससे अधिक सत्य में हैं या नहीं।

तुम्हारे द्वारा श्रीयुत रुद्र को मैं अपना प्रेम भेजता हूँ। उनको बता देना, कि जब तक कि मेरे स्वभाव में कृतज्ञता का एक कण भी शेष है, भूमण्डल के हर क्षेत्र में धन्यवाद वितरण करते हुए मैं पत्र व्यवहार के जंगल में बुरी तरह खोया हुआ हूँ।

कलकत्ता १२ नवम्बर १६१४

मैं जानता हूँ कि ये स्कूली आर्थिक कठिनाइयाँ हमारे लिये अच्छी हैं, किन्तु लाभ उठाने की हममें काफ़ी शक्ति होनी चाहिये और सत्य में हमारी निष्ठा होनी चाहिये और सारे आश्रम को बिना बाहरी सहायता की आशा किये, निरर्थक अकर्मण्यता से सजग होकर, अपनी बुद्धि संयम और छानबीन के ही भरोसे पर संकट का सामना करने को प्रस्तुत होना चाहिये।

अपनी पाठशाला एक जीवित संस्था है। हममें से छोटे से छोटे को भी उसकी समस्याओं को अपनी समस्याएँ समझनी चाहिये। कुछ प्राप्त करने के लिये हमको त्याग करना चाहिये। यहाँ तक कि छोटे बच्चों को भी अपनी कठिनाइयों से अनभिज्ञ नहीं रखना चाहिये। उनको इस गौरव का अवसर देना चाहिये कि उन्होंने अपने भाग का दायित्व-भार वहन किया।

कलकत्ता, १५ नवम्बर १९१४

आलोचक और जासूस स्वाभाविकत: शंकित हैं। जहाँ कि ऐसी कोई गूढ़ बात नहीं है वे रहस्यों और विस्फोटकों का अनुमान करते हैं। इन्हें उनको अपनी सरलता और निर्दोषता का विश्वास दिलाना कठिन है।

तुमने अपने पत्र में मेरे नाटक The king of the dark chamber की आलोचना के सम्बन्ध में जो चर्चा की है उसमें मानव आत्मा का अपना आन्तरिक अभिनय है जो ठीक उसी तरह है जैसे मनुष्य से सम्बन्धित हर एक वस्तु। और सुदर्शन, लेडी मैकबेथ की अपेक्षा अधिक गूढ़ एवं सूक्ष्म नहीं है जो मनुष्य स्वभाव की अनैतिक आकांक्षाओं का प्रतीक है। जो भी हो आलोचकों के नियम के अनुसार इसमें कोई सम्बन्ध नहीं कि वस्तु क्या है। जो कुछ भी वह है—वे हैं—अत: उनका दर्गीकरण कठिन है।

जाड़ों के लिये रामगढ़ अनुपयुक्त नहीं बताया जाता है। यही कारण है, जिसने मुझे अगले कुछ महीनों में विश्राम के लिये वहाँ जाने को प्रेरित [illegible] है जब तक कि वह अधिक गर्म और सुखद न हो जाय। परन्तु यह मेरी गुप्त बात है और तुम इसे प्रकट न करना। चाहे जो हो मुझे पत्रों की पहुँच से दूर रहना है, मुझे बिल्कुल अकेला रहने की आवश्यकता है। किसी अगम्य क्षेत्र में जाने से मैं मुक्त हो जाऊँगा उन वार्षिक उत्सवों, सम्मान पत्रों और सम्मेलनों से और अन्य बुराइयों से, जिनका शरीर पर कोई पैतृक अधिकार नहीं है। फिर भी जो बिना किसी रस्म के उसको बाँधे हुए हैं। यह मेरे लिये बहुत अभद्र है कि रोगोपरान्त जब तुम आ रहे हो, मैं आश्रम से दूर चला जाऊँ। पर मेरा विचार है कि मेरी अनुपस्थिति में बच्चों व शिक्षकों के निकट आने का तुमको अधिक अच्छा अवसर मिलेगा और यह मेरी अनुपस्थिति की कमी को पूरा कर देगा।

आगरा, ५ दिसम्बर १९१४

मौडर्न-रिव्यू में यह पढ़कर कि अपने बोलपुर के बच्चे एक सहायक कोष खोलने के निमित्त, बिना चीनी और घी के काम चला रहे हैं, मुझे आश्चर्य हुआ। क्या तुम समझते हो यह ठीक है? पहली बात तो यह है कि यह तुम्हारे विदेशी विद्यार्थियों का अनुकरण है और यह उनकी अपनी सूझ नहीं है। दूसरी

बात यह है कि जब तक यह बच्चे हमारी संस्था में रहते हैं वे अपने आहार का कोई भी भाग जो कि उनके स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त आवश्यक है छोड़ने को स्वतन्त्र नहीं हैं। किसी अंगरेज बच्चे के लिये जो माँस और उसके साथ चर्बी भी लेता है, चीनी छोड़ना हानिकारक नहीं है। परन्तु शान्तिनिकेतन में अपने बच्चों के लिये जिनको बहुत थोड़े परिमाण में ही दूध मिलता है और जिनके शाकाहारी भोजन में बहुत थोड़ी सी चिकनाई होती है, यह बहुत हानिकारक है।

हमारे बच्चों को इस तरह के आत्म त्याग को पसन्द करने की स्वतन्त्रता नहीं हैं ठीक उसी तरह जैसे वे अपने अध्ययन की पुस्तकें क्रय करना छोड़ने को स्वतंत्र नहीं है। आत्म त्याग के लिये सबसे उत्तम ढंग होगा—धनोपार्जन के लिये कुछ परिश्रम। स्कूल का छोटा काम वे स्वयं करें--बर्तन माँजें, पानी भरें, कुए खोदें उस तालाब को, जो स्वास्थ्य के लिए अहितकर है, पाट दें, राजगीरी करें। यह दोनो तरह से लाभदायक होगा। और सबसे बड़ी बात यह है कि यह उनकी सच्ची सहानुभूति की वास्तविक परीक्षा होगी। लड़के अपने आप सोचें कि कौन सा काम बिना किसी का अनुकरण किये वे अपने लिये चाहते हैं

इलाहाबाद, १८ दिसम्बर १६१८

अपने आश्रम के धूमीले नीलाकाश मे और शान्त हरियाली में तुम्हारे खोये होने की कल्पना कर मुझे हर्ष होता है। मुझे प्रसन्नता है कि तुम्हारे जाने के पूर्व हम परस्पर वार्तालाप कर सके। मैं निजी अनुभव से जानता हूं कि आश्रम तुमको, वह गहराई में निहित अनासक्ति देगा जिसकी अन्तरतम के एवं संसार की वास्तविकता के समक्ष आने के लिये भारी आवश्यकता है।

अब तक तुमने यह पहचान लिया होगा कि मेरे अन्दर कुछ ऐसी वस्तु है जो औरों की अपेक्षा मुझे भी कम चकमा नहीं देती। अपने स्वभाव के इस अंश के कारण मुझे अपने वाह्य उपकरणों को खुला और स्वतन्त्र रखना पड़ता है ताकि मेरे जीवन में पर्याप्त स्थान बना रहे, उसके लिये जो मन को अगोचर है और जिसकी हर क्षण प्रतीक्षा है। विश्वास करो, मेरे अन्दर बलवती माननीय सहानुभूति है। फिर भी मैं दूसरे से ऐसा सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकता जो मेरी जीवन-धारा की गति घटा दे। मेरी जीवन-धारा—जो मेरी बुद्धि से परे एकान्त

क अंधियारे में प्रवाहित है। मैं प्रेम कर सकता हूं पर मेरे अन्दर वह नहीं है जिसे फ्रेनोलॉजिस्ट * आसक्ति कहते हैं। अधिक सही तो यह है कि मेरे अन्दर एक ऐसी आकर्षण शक्ति है जो आसक्ति के प्रति ईर्ष्यालु है। एक ऐसी शक्ति जो मेरे ऊपर अपने लिये, अपने गुप्त उद्देश्य के लिये अधिकार बनाये रखने का प्रयत्न करती है।

यदि यह गुप्त उद्देश्य केवल नैतिक ही होता तो उसको सहज ही सहन कर लिया जाता—यही नहीं उसका स्वागत किया जाता, परन्तु यह तो जीवनोद्देश्य है, विकास और वृद्धि का लक्ष्य है और इसी कारण, उसे थोड़े से विरोध का सामना करना पड़ता है जब [illegible] री जीवन-धाराओं के मार्ग को काटता है। यह अंधकारमय प्रतीत [illegible] होता है। परन्तु जिस शक्ति का मैं चर्चा कर रहा हूँ, वह उस व्यक्तित्व का है जो मेरे अहम् भाव से परे है। अपने हृदयस्थ ईश्वर को मुझे पा लेना चाहिये, जो केवल मात्र एक अपार्थिव, नैतिक आदर्श ही नहीं है वरन एक पुरुष है। प्रायः जिसको आनन्द कहते हैं, उसका मूल्य देकर भी, परित्यक्त और हेय होने पर भी, और गलत समझा जाने पर भी, मुझे उसके प्रति निष्ठा बनाये रखनी चाहिये। मैं स्वभाव से मिलनसार हूं। मित्रों के साथ की मित्रता के सुख और उपयोगिता के स्वाद लेने की मेरी तीव्र इच्छा होती है किन्तु मैं अपने आपको दे देने के लिये स्वतन्त्र नहीं, चाहे वह आवश्यक और लाभदायक ही क्यों न प्रतीत होता हो। और कुछ अंशों तक जो विस्तृत समय और स्थान अपने पास एकत्रित किये रहता हूँ, वह जिस तरह मैं चाहूँ उस तरह उपयोग करने के लिये मेरा नहीं है। कभी-कभी यह अकेलापन मेरे लिये असह्य हो जाता है, परन्तु यह कमी अच्छी तरह पूरी हो जाती है। मैं निश्चय ही कह सकता हूँ, कि उनके लिये जो यह जानते हैं कि इससे क्या आशा करनी चाहिये, यह सब फलप्रद होगा।

मानव आत्मा ईश्वरीय पुष्प है। इसकी सर्वोत्तम गंध और बहार उस समय नहीं मिलती जब रस निकालने के लिये, उसे उत्सुक हथेलियों में बन्द कर दिया

---

* कपाल की आकृति से मानसिक स्वभाव और प्रवृत्तियों को बताने वालों को फ्रेनालाजिस्ट कहते हैं।

जाता है वरन उस समय जब वायु एवं प्रकाश की वृहत स्वतन्त्रता में अकेले ही छोड़ दिया जाता है। किन्तु बड़े दुर्भाग्य से,

> नियति को तो भूल हम जाते सहज,
> जगत के अत्यन्ततम सामीप्य में।
> प्राप्त कर-कर नष्ट देते शक्ति सब,
> भूल पर वरदान भावाधिक्य में।

मेरा प्रेम, मौन और खुला है। यह अपने यौवन भरे बहार के समय चमकीले आवरण से ढका था; और जब इसमें फूल से आकर फल पकने लगे तो भेंट और उपहारों से उभरा पड़ता था। किन्तु अब फिर बीज-दान का समय आ गया है और वह अब खोल को तोड़ कर फिर खुली हवा में आ गया है। आकर्षण, और लुभाने के आवश्यक बोझ ने उसको फेंक दिया। अब उसकी झीनी चादर में जीवन की गंभीरता भरी हुई है। अतः जब तुम आकर शाखा को झकझोरोगे तो प्रत्युत्तर नहीं मिलेगा। क्योंकि वहाँ पर वह है ही नहीं। किन्तु यदि उसकी नीरवता में तुम विश्वास कर सकते हो और उसे नीरवता में स्वीकार भी कर सकते हो, तुमको निराशा नहीं होगी।

महाकवि ने सन् १९१४ के बड़े दिन पर जो बंगला कविता का अनुवाद मुझे दिया था वह यह है यहाँ उसका हिन्दी अनुवाद दिया जाता है।

न्याय

हर्ष में उन्मत्त हो जब क्रूरने, धूलि ले कर में तुम्हारे वसन को।
शुचि! मलिन करने चले तब अहरु मम, वेदना से भर गया उर व्यथित हो॥

द्रुत विमूर्च्छित कंठ से मेरे कसक, एक स्वर निकला विकल चीत्कार से।
"भव्य! कर में दंड ले निज न्याय का आज करदो न्याय इस अपराध का॥"

प्रात आया विंध गई उन नयन से लाल थे जो रात्रि के रसराग से।
शीश नत हो झुक गया सित कुसुदवन तप्त श्वासों से करुण भयभीत हो॥

गहनतम की अतलता को भेद कर, तारकों की दृष्टि रुक थिर होगई।
क्रूर के मदपान पर आरक्त हो, धूलि धूलित कर लिये जो थे खड़े॥

कुसुमदल में विहगरव मधुमास में, सरित तट की छाँह ये तरुकंप में।
न्याय था संचित तुम्हारा मृदुलतर चल तरंगों की सलिल-हिलोर में ॥
किन्तु प्रिय ! आवेश में वे निदय थे दस्यु से घन तिमिर में छिप चुप चले।
परिहरण करने तुम्हारे साज सब निज लालसा कटुकामना श्रृंगार हत ॥
जब कठिन आघात से तुम व्यथित हो रंग गये चुप, सरल मेरा तो हृदय ।
वेदना से विकल हो फूटा सहज—"प्रिय ! न सोचो, खड्ग ले अब न्याय कर"
आह ! पर था न्याय कैसा रहस वत, जननि के आँसू गिरे थे स्नेह से ।
शर क्षतों में था छिपाया विहत ने, भूल अपनी मंत्रणा हो सदयतर ॥
प्रणय की अस्वर अ ना' ही कसक में पतिव्रता की सरल कोमल लाज में।
शून्य निशि के अश्रु में—तब न्याय का—सुक्षमा की पीत ऊषा किरण में ॥
अह कठिन ! खल विसुध अपने लोभ में चढ़ तुम्हारे द्वार पर निशि प्रान्त में।
छिन्न कर तव कोष गृह उन्मत्त हो, लूटने तुमको चले जब मूढ़ वे ॥
किन्तु असह्य प्रभार से निज लूट के पंगु बन असमर्थ हो ठिठके रहे।
करुण उनको देख तब मैंने कहा—"हे कठिन मेरे ! क्षमा करदो उन्हें"
आँधियों में छिन्न करती धूलि में, भूपनित करती कुपरिहित कोष को।
वज्रघन में, रक्त वर्षा में, प्रकूपित—अस्त रवि की लालिमा में—
छूट तव निकली क्षमा ॥

कलकत्ता,
२० जनवरी, १९१५

जल्दी में लिखे, तुम्हारे पिछले पत्रों से मुझे लगता है कि तुम्हारा चित्त उदास था। तुम्हारा मस्तिष्क अब भी उस माया के क्षेत्र में है जहाँ छाया बढ़ी हुई मालूम देती है और छोटी-छोटी वस्तु भी मनुष्य को दुखी बनाती है। मुझे प्रतीत होता है कि तुम्हारी प्रसन्नता स्वयं ही तुम्हारे ऊपर एक बोझ है—वह बड़ी झकझोरमय है क्योंकि कभी-कभी वह तुम्हारे पास प्रतिक्रिया के रूप में आती

है । बुरे स्वास्थ्य की अपेक्षा, इसके कारण मैं तुम्हारे बारे में अधिक चिन्तित हो उठता हूँ ।

कलकत्ता,
२६ जनवरी १९१५

अपने बुरे स्वास्थ्य के समाचार से मैं तुम्हें डराना नहीं चाहता किन्तु आश्रम से अपनी अनुपस्थिति को न्याय्य ठहराने के लिये इसका बताना आवश्यक है। मुझे ऐसा लगता है कि सारा ढांचा टूट कर गिरना ही चाहता है । अतः पद्मा के निर्जन प्रदेश में मुझे भाग जाना चाहिये । मुझे विश्राम की और प्रकृति की सुश्रूषा की आवश्यकता है ।

यदि तुम्हारी बीमारी फिर लौट कर आये तो हतोत्साह न होना । प्रयत्न करो कि उद्वेग न हो । तुम परिश्रम न करना वरन् निज को, नींद को सौंप देना । हमको बलात् अपने आपको अत्यधिक सचेत नहीं बनाना चाहिये—यहाँ तक कि ईश्वर के प्रति भी नहीं । हमारा प्राण उसे सहन नहीं कर सकता । प्रायः उदासी अतितृप्ति के कारण भी होती है । हमारे अर्धचेतन स्वभाव के पास, उसे, जिसकी हमारे चेतन स्वभाव को आवश्यकता है, एकत्रित करने के लिये पर्याप्त समय रहना चाहिये ।

कलकत्ता, ३१ जनवरी १९१५

मुझे सुनने को मिला कि तुम सचमुच रुग्ण हो । इससे काम नहीं चलेगा कलकत्ते चले आओ । किसी डाक्टर से सलाह लो और यदि वह इसे उचित समझे तो शिलाईदा चले आओ । मैं कल शिलाईदा जा रहा हूँ । मैं बोलपुर जाने का साहस नहीं कर सकता । मैं थकान की इतनी बड़ी गहराई में पहुँच गया हूँ कि मेरे स्वार्थमय एकान्त को उसने एक शान दे दी है । सारे उत्तरदायित्व को छोड़ कर भाग आने में मुझे तनिक भी लज्जा नहीं मालूम देती । अपने जी जान से मैं अकेला रहना चाहता हूँ ।

किन्तु तुमको देरी नहीं करनी चाहिये । हम तुम्हारे बारे में बहुत चिन्तित हैं और हम तुमको खाट पर बिल्कुल नहीं पड़ने दे सकते ।

शिलाईदा, १ फरवरी १६१५

तुम सही हो। मैं एक समय से गहरी उदासी और थकान से पीड़ित हूँ। परन्तु मैं पुनः मन और काया से स्वस्थ हूँ और यदि आलोचक गण छेड़छाड़ न करें तो एक दूसरी शताब्दी तक जीवित रहने के लिये तैयार हूँ। उस समय मैं शरीरतः क्लान्त था। इसी कारण छोटा सा आघात भी कितने ही गुना हो जाता था। वह अनुपात बिल्कुल बेसिरपैर है। जो भी हो, मुझे प्रसन्नता है कि मेरे अन्दर वह बालक अब भी जीवित है, जिसमें मिठाइयाँ और मानवीय प्रशंसा पाने की दुर्बलताएँ हैं। मुझे अपने को आलोचकों से बहुत अधिक ऊँचा नहीं समझना चाहिये। मैं मंच पर अपना आसन नहीं चाहता। मुझे दर्शकों के साथ उन्हीं के स्तर के आसन पर बैठने दो और उन्हीं की भाँति सुनने का प्रयत्न करने दो। जब वे मेरी वस्तुओं की सराहना नहीं करते तो उनकी स्वाभाविक निराशा की भावना को जानने के लिये मैं इच्छुक हूँ और जब मैं यह कहूँ "मैं परवाह नहीं करता" तो किसी को मेरा विश्वास नहीं करना चाहिये।

मानव-जगत का एक बहुत बड़ा अनुपात मूक है। मैं देखता हूँ कि इनमें से कितने ही मेरे मित्र हैं और मेरी कृतियों के प्रति उनके पक्षपात के सम्बन्ध में, अपने अनुमान की सीमा में निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं समझता। इसी कारण यद्यपि वे इस धारणा को दृढ़तर नहीं करते, पर साथ ही उसका कोई विरोध भी नहीं करते।

मैं यहाँ एक सुन्दर स्थान पर नाव में रह रहा हूँ। मुकुल, नन्दलाल और एक अन्य कलाकार मेरे साथी हैं। उनका उल्लास और उत्साह मेरी हर्षवृद्धि करता है, प्रत्येक नन्हीं सी बात उन्हें आश्चर्य में डाल देती है और इस तरह उनके अक्रान्त मस्तिष्क मेरी सेवा में रहते हैं और उन वस्तुओं पर मेरा ध्यान आकर्षित करते हैं जिनकी उपेक्षा करने का मेरा स्वभाव बनाता जा रहा है।

शिलाईदा, ३ फरवरी १६१५

यहाँ पहुँचते ही मैं अपने स्वरूप में आ गया हूँ और अब स्वस्थ हूँ। जीवन के रोगों की चिकित्सा, जीवन की आन्तरिक गहराई में छिपी हुई है और उस गहराई तक पहुँचना तभी संभव है, जब हम अकेले रहते हैं। इस एकान्त का भी

अपना एक संसार है, आश्चर्य भरा और ऐसे स्रोतों का बाहुल्य लिये कि जिनकी कल्पना भी नहीं होती। यह बेहद पास है किन्तु बहुत अगम रूप से दूर है। पर मैं वार्तालाप नहीं करना चाहता। मेरी अनुपस्थिति और मौन को क्षमा करना। ठीक इस समय, अपनी विचारधारा को चारों ओर बिखेर नहीं सकता।

मैं हृदय से आशा करता हूँ कि अब तुम पहले से अच्छे हो।

कलकत्ता, १८ फरवरी १९१५

कलकत्ते में रविवार तक मुझे रहना होगा। यद्यपि मैं प्रयत्न करूँगा फिर भी कलकत्ते से रविवार से पहले छुटकारा पाने की आशा नहीं है। सोमवार को मैं बोलपुर में होऊँगा, हाँ, कुछ दुर्बल और क्लान्त, उत्तरदायित्व के लिये असमर्थ और अयोग्य।

मैं आशा करता हूँ कि महात्मा गाँधी और श्रीमती गाँधी बोलपुर पहुँच गये हैं और शान्ति-निकेतन ने उनके अनुरूप उनका स्वागत किया है। जब हम मिलेंगे, तभी मैं स्वयं अपना प्रेम उनको अर्पण करूँगा।

मुझे हर्ष है कि हमारे आश्रम ने उस सताये हुए राजपूत बच्चे को आश्रय दिया। उसको ऐसा मालूम हो कि अपने स्थान और अपने आदमियों द्वारा निर्वासित होने पर भी उसने आश्रम में अपना घर पा लिया है।
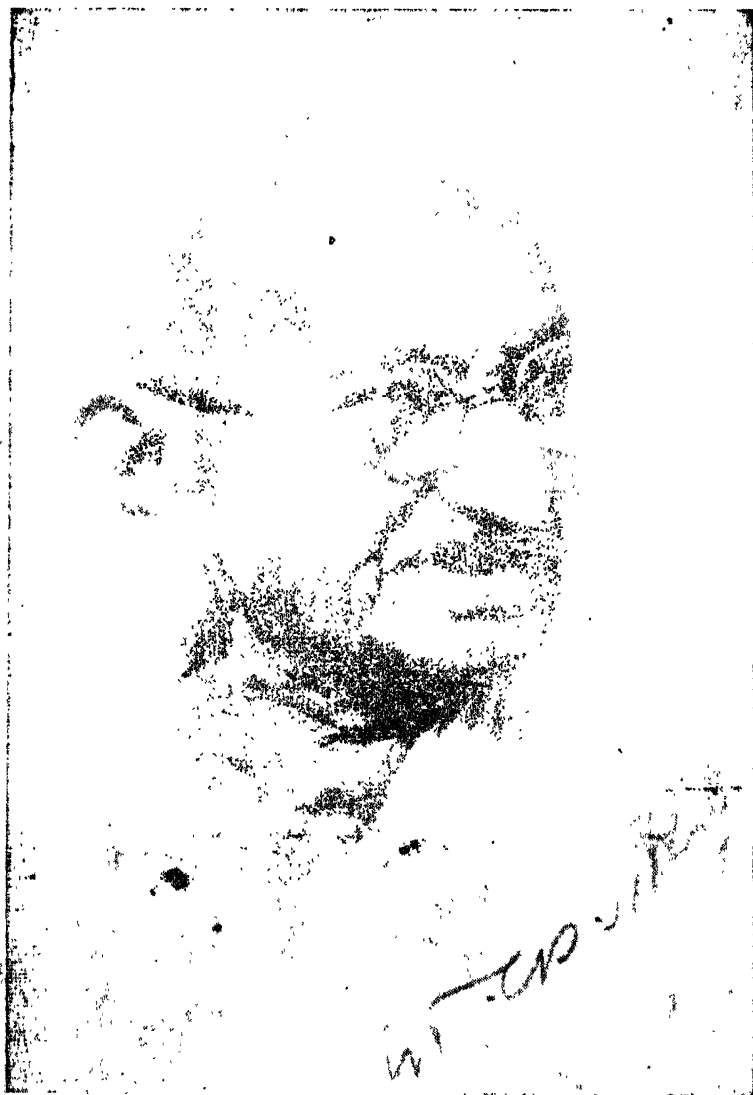
Mahatma Gandhi.

प्रकरण : ३ :

सन् १९१५ मई के मध्य, मेरी लगातार बीमारियों के बाद, जिनमें में बड़ी कठिनाई से पुनः स्वस्थ हो पाया था, मुझे एशियाई हैजे ने अचानक आ घेरा और जो मेरे लिये लगभग प्राणघातक सिद्ध हुआ। महाकवि ने स्वयं मेरी सुश्रूषा की और उनका यत्न और स्नेह अत्यन्त भावुक कोमलता और सहानुभूति से भरे थे। मेरे ही कारण ग्रीष्म ऋतु के बुरे से बुरे दिनों में भी वह छुट्टी के लिये बाहर नहीं गये। वह पास ही में ठहरे रहे जब कि मैं कलकत्ते में सुश्रूषागृह में स्वास्थ्य लाभ कर रहा था। अन्त में रोगमुक्त होने पर जब दुर्बलता अवशिष्ट थी किन्तु मैं शिमला ले जाया जा सकता था, उनके पत्र पुनः आरम्भ हो गये।

सन् १९१५ वर्ष के बीच, स्वयं भारत में अपने एकाकीपन के कारण, युद्ध के क्षेत्र और पहुँच से हम इतने दूर थे कि उसके भयंकर दृश्य धीरे-धीरे मानसिक पृष्ठभूमि में जाने लगे। परन्तु वे महत्तर विचार जो पहले वर्ष में युद्ध के कारण ही जगे थे—मानवीय कष्ट की समस्या; पूर्ण विश्वबंधुत्व की सम्भावना; प्राच्य और पाश्चात्य का पारस्परिक भाई-चारे में सम्मिश्रण—यह पहले किसी समय की अपेक्षा अधिक सामने आते। जब मैं कलकत्ते में सुश्रूषागृह में था, हमारी आपसी बातें बराबर इन्हीं समस्याओं पर थीं। इस वर्ष भी ये विचार कवि के उपचेतन मन में गहरे बने रहे। साथ ही शान्ति-निकेतन में सारे स्कूली काम का बोझा उनके कंधों पर आ पड़ा और अपनी स्वाभाविक शक्ति और निश्चय के साथ उन्होंने निज को उस संबंध की छोटी-बड़ी सभी समस्याओं में डाल दिया।

१९१५ की गर्मियों में महाकवि का सुदूरपूर्व देखने का प्रोग्राम बन रहा था। उनके पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी सुदूरपूर्व यात्रा, आधी शताब्दी पहले की थी और यह एक विशेष साधन था जिसके द्वारा उन्होंने अपने जीवन में मनुष्य का विश्वबंधुत्व अनुभव किया महाकवि को जिनके विचार सदा मानव-मात्र से छोटी किसी इकाई से सम्बन्धित होते ही न थे, पश्चिमी भ्रातृघातक महा-

युद्ध ने मानव जाति की भयंकर असयमित अवस्था प्रकट की ।, युद्ध आरंभ से पहले और बाद में पिछले वर्ष जिस वेदना का उन्होंने अनुभव किया था उस, कारण शान्ति निकेतन आश्रम की सीमाएँ बढ़ाने का उनका निश्चय दृढ़तर हो रहा था: वह शान्तिनिकेतन, जिसकी उनके स्वर्गीय पिता ने धर्मगृह के रूप में स्थापना की थी उनका ध्यान बराबर उस समय पर था जब आश्रम पाठशाला से बढ़कर संसार व्यापी भाई-चारे का केन्द्र हो जायेगा जिसमें प्राच्य और पाश्चात्य दोनों के ही विद्यार्थियों और शिक्षकों को समान स्वागत और आदर मिलेगा ।

१९१५ में ये विचार उनके मस्तिष्क में लगातार घूम रहे थे । इस कारण उन्हें यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि यदि शान्तिनिकेतन सम्बन्धी योजनायें उन्हें पूरी करनी है तो चीन और जापान के प्रमुख विचारकों का सहयोग और मित्रता पाने के लिये उनका सुदूर-पूर्व भ्रमण आवश्यक था । अगस्त में प्रस्थान का निश्चय लगभग कर ही लिया था और वस्तुतः एक जापानी स्टीमर पर अपने लिये स्थान भी ले लिया था । किन्तु कई परिस्थितियों ने बाधा दी और उस समय उनकी यात्रा असंभव हो गई ।

प्राच्य की यात्रा के इस विचार को बिलकुल छोड़देने के बाद, स्वयं भारत अचनक एक संकट उपस्थित हुआ । उसका सम्बन्ध नई आबादियों में भारतीय श्रमिकों के साथ शर्तबन्दी की प्रथा के विरोध में, मानवता के संघर्ष से था । मेरे मित्र विली पिअर्सन ने और मैंने नेटाल में इस प्रथा की पूरी छानबीन की थी और उसकी निन्दा की थी । इसी कारण, अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा, हम, ठीक समस्या के अधिक सही सम्पर्क में थे । भारतीय श्रमिकों के साथ शर्तबन्दी की अनैतिक दासता की जो स्थिति थी उसको पूरी तरह उघाड़ना था । इसलिये प्राच्य-भ्रमण का विचार छोड़ने के बाद हमको महाकवि की हार्दिक स्वीकृति मिल गई, जब हमने साथ-साथ फिजी जाने का प्रस्ताव रखा । उस नव-आबादी में भारतीय मजदूरों के साथ शर्तबन्दी की प्रथा के सम्बन्ध में हम स्वतन्त्र रूप से छान बीन करना चाहते थे । उनको विशेषकर ऐसा प्रतीत हुआ कि हमारी यह नई यात्रा उन्हीं के विश्व बंधुत्व के आदर्शों के अनुरूप होगी । हमारे प्रस्थान के

समय उन्होंने आशीर्वाद दिया। जब हमने उनसे विदा ली तो स्वयं मुझको उन्होंने उपनिषद् के दो प्रवचन उपहार रूप में दिये।

उनका अनुवाद इस प्रकार है :—

"आनन्द से ही हर पदार्थ की उत्पत्ति होती है। आनन्द से ही उनका अस्तित्व है और अन्त में आनन्द में ही वे लीन हो जाते हैं।"

"मैं उस महा प्रतिभावान का ध्यान करता हूं जो इस पृथ्वी, आकाश, ग्रह-नक्षत्र का सृजन करता है और जो हमारे मन में बोध की शक्ति देता है।"

रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने अपने प्रोत्साहन और सहानुभूति से हमको एक प्रेरणा दी जो हमको अपनी कठिन तम यात्रा में पार लेकर गई। अन्त में जो जाँच हमने की थी उसका उद्देश्य पूरा हुआ और यह आश्वासन दिया गया कि भारतीय मजदूरों की शर्तबन्दी प्रथा यथासम्भव शीघ्रता से मिटा दी जायगी।

शान्ति निकेतन,
३० जून १९१५

ठीक अभी मैं शान्तिनिकेतन में हूं। यहाँ अभी छुट्टियों का ही वातावरण है। कारण, कुछ ही लड़के लौटकर आये हैं और यह भी असंभव नहीं कि कुछ तो आश्रम हमेशा के लिये छोड़ गये। हाँ,तो, हमारे अर्थ मंत्री के सामने कठिनायों का समय है—पुराने हिसाब चुकता करने है और इमारतें पूरी करानी है। तुम्हारी, कितनी ही तीव्र इच्छा क्यों न हो, तुम अभी न आओ—स्वास्थ्य पर चुपके से आक्रमण करने में आर्थिक कठिनाइयाँ, रोग के कीटाणुओं की भाँति हैं। पर इस बात का विश्वास रखो कि यह बुरा समय हम पर बिलकुल ही नहीं आ पड़ेगा। हम जल्दी ही इससे पार होंगे और पहले किसी समय की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र होंगे— यद्यपि स्वतंत्रता क्षीणतर होगी।

जहाँ तक मेरा प्रश्न है मेरे लिये खुली सड़क की पुकार है, यद्यपि वैसे अधिकांश सड़कें बन्द हैं। मुझ पर घूमने की धुन छाई हुई है परन्तु स्वतंत्रता के अभाव में यह मेरे लिये कष्ट प्रद हो रहा है। ऐसा मालूम होता है कि डेरों में रहने के स्थान पर मैं उनको अपनी कमर पर लादे फिर रहा हूँ।

संभवतः मेरा जीवन उस स्थिति में है जब उसकी कुछ और फलियाँ फूटने को और बीज बिखरने को हैं। मेरे रक्त में लगातार आतुरता भरी है जिसका कारण छिपा हुआ है। मेरे ऊपर यह निश्चय बलात् लादा जा रहा है कि कवि को किसी कार्य विशेष से अपने को कभी नहीं बाँधना चाहिये क्यों कि वे संसार की वृत्तियों के उपकरण हैं। वर्षों तक परोपकारी योजनायें बनाने के बाद भी, मेरा जीवन फिर उत्तरदायित्व-विहीनता के खुले बंजर में प्रकट हो रहा है—जहाँ सूर्य उदय होता है, अस्त होता है, जहाँ वन-कुसुम हैं किन्तु समितियों की बैठकें नहीं है।

———

कलकत्ता १७ जुलाई १९१५

क्या मैंने और किसी स्थल पर यह स्वीकार नहीं कर लिया कि संन्यास मेरे लिये नहीं है और यह कि मेरी स्वतन्त्रता एक बंधन से दूसरे बंधन में घूमना ही है। मेरे मन को, अपने स्वरूप को पुनः नये सिरे से जान लेना चाहिये। एक बार जब मैं अपने विचारों को रूप देता हूँ, मुझे अपने को उससे मुक्त कर लेना चाहिये। वर्तमान में नये विचारों के लिये, नया आकार देने की मैं पूर्ण स्वतंत्रता चाहता हूं। मुझे निश्चय है—कायिक मरण का हमारे लिये वही अर्थ है—हमारी आत्मा जो सृजनात्मक गति, अपनी अनुभूति के लिये नया स्वरूप चाहती है। मरण उसी शरीर में रह सकता है किन्तु जीवन अपने निवास स्थान से निरन्तर बढ़ता जायगा अन्यथा आकार का आधिपत्य हो जाता है और वह कारागर बन जाता है। मनुष्य अमर है अतः उसे अनन्त बार मरना चाहिये। जीवन एक सृजनात्मक विचार है; वह अपने आपको केवल परिवर्तनशील रूप में ही प्राप्त कर सकता है।

आकार तो जड़ और मूक पदार्थ है जो जब तक कि अन्त में वह टुकड़े-टुकड़े ही नहीं हो जाता, स्थायी रहने के लिये संघर्ष करता रहता है।

तुम्हें पिअर्सन से मेरा सारा कार्यक्रम विदित हो गया होगा। अपने विचारों को एक नये बंधन के अर्पण कर मैं अपनी स्वतन्त्रता खोज रहा हूँ। शान्तिनेकतन में निर्जीव पदार्थ के एकत्रित होने से मेरे विचारों की गुत्थियाँ बन गई हैं। मैं, व्याख्यान देने में, एवं बलात सहयोगियों को बाध्य करने में विश्वास नहीं करता,

क्योंकि स्वतन्त्रता के द्वारा सारे सत्य-विचार स्वयं ही ऊपर आ जायेंगे। केवल एक नैतिक अत्याचारी ही यह सोच सकता है कि उसमें भयपूर्ण शक्ति है, कि यह कल्पना मूर्खता है कि अपने विचारों को स्वतन्त्र बनाने के लिये तुमको, दास बनाने चाहिये। उन विचारों को नष्ट होते देख कर मुझे बहुत प्रसन्नता होगी, इसकी अपेक्षा कि उन विचारों के पोषण के लिये उन्हें दासों के आधीन रखा जाय। ऐसे मनुष्य भी हैं जो अपने विचारों की प्रतिमा निर्माण करते हैं और उनकी वेदी के समक्ष मानवता का बलिदान करते हैं। किन्तु विचार की अपनी पूजा में, मैं काली का उपसक नहीं हूँ।

अतः जब कि मेरे सहकारी रूप पर मोहित हो जाते हैं और उस विचार के अन्दर पूर्ण निष्ठा खो देते हैं, मेरे लिये एकमात्र खुला मार्ग यह है कि मैं हटकर अपने विचार को नया जन्म दूँ और उसमें नयी क्षमता भर दूँ। चाहे यह व्यवहार्य न हो, पर संभवतः सही विधि यही है।

कलकत्ता, ११ जुलाई १९१५

आत्मा-प्रेरित मनुष्य सुखी प्राणी होते हैं। वे कर्त्तव्य की सीमाओं के अन्तर्गत रहते हैं अतः एक निश्चित अनुपात से समयावकाश का स्वाद लेते हैं। किन्तु मैं अपने कर्त्तव्य को जानबूझ कर हटाकर रख देता हूँ इसलिये कि ऐसे नये काम निकल आयें जो मेरा सारा समय घेर लें; और तब मैं अचानक अपने काम को छोड़ देता हूं और नितान्त अकर्मण्यता के साथ भाग जाने का प्रयत्न करता हूँ।

अगले सप्ताह के समाप्त होने के पहले ही मैं 'पद्मा' पर जल-विहार कर रहा होऊँगा और इस विचार को भूल जाऊंगा कि मानव जगत के कल्याण के लिये, सृष्टि समिति में मेरी उपस्थित आवश्यक है। मैं तो जन्मतः भ्रमणशील हूं---जैसा मुझे विश्वास है कि तुम भी हो—मेरा काम यदि उसे मेरा काम होना है तो उसे चलता-फिरता होना चाहिये। पर ऐसा तो ठीक कार्यारम्भ के ही समय हो सकता है; अतः मेरा कर्त्तव्य है---काम आरंभ करना और तब उसे छोड़ देना। जब तक कि मैं उन्हें छोड़ न दूं और दूरी पर न रखूं, मैं उनका आदर्श स्वरूप बनाये रखने में सहायता नहीं कर सकता। किन्तु इस बार यह

शरीर और मन की शिथिलता है जो मुझे एकान्त में लिये जा रही है। किसी योजना विशेष में, जिस ढंग का काम मैं कर सकता हूँ, उसमें जुटे रहने की अपेक्षा, मानसिक ताजगी की आवश्यकता अधिक है। अतः अपने काम पर फिर जुटने से पहले मुझे अवकाश की आवश्यकता है।

संसार के दोषों, विशेषकर बलवान जातियों द्वारा त्रस्त दुर्बल जातियों के कष्टों से, आज, तुम जो पीड़ा भार अनुभव कर रहे हो, उसका मैं सहज ही अनुमान कर सकता हूँ। मानवीय अनीतियाँ, दयनीय नहीं, भयंकर हैं। जिनके हाथों में शक्ति है वे सदा भूल जाते हैं कि अपनी शक्ति के ही लिये उन्हें न्याय-परायण होना है। जब दीन-दुर्बल प्राणी से ईश्वर पर प्रार्थना पहुँचती है तो जिनके हाथों में शक्ति है उन्हीं के लिये वह संकट भरी होती है क्योंकि तब उनके लिये उसकी अवहेलना करने की बहुत बड़ी संभावना होती है विशेष कर यदि उससे उनके दफ़्तर के प्रबन्ध और ढंग में तनिक भी उथल-पुथल होती हो। नैतिक और पोषक शक्ति की अपेक्षा उन्हें अपनी शान में और दयनीय ढाँचे में अधिक विश्वास है।

भारत में जब ऊँची श्रेणी के मनुष्य छोटी श्रेणी पर शासन करते थे तो स्वयं उन्होंने अपने लिये बेड़ियाँ तैयार कर लीं। यूरोप भी ब्राह्मण-भारत का बहुत कुछ अनुकरण कर रहा है, जब कि वह साधिकार [illegible]शिया और अफ्रीका को शोषण का क्या क्षेत्र समझता है। समस्या सरलतर [illegible]दि वह दूसरे महाद्वीपों को बिल्कुल जन हीन बना देता है; किन्तु जब तक [illegible]ई जातियाँ हैं, यूरोप के लिये उनके प्रति अपना नैतिक दायित्व अनुभव करना कठिन है। सब से बड़ा संकट तो इसमें है कि यूरोप अपने आपको धोखा दे रहा है, यह सोच रहा कि अपनी सहायता करने से वह मानव-जगत का कल्याण कर रहा है; मनुष्य तो मूलतः भिन्न हैं और जो उनके देश वासियों के लिये हितकर है वह दूसरों के लिये जो हीन हैं, हितकर नहीं हैं। इस प्रकार यूरोप धीरे-धीरे, अज्ञान रूप से अपने निजी आदर्शों में विश्वास खो रहा है और अपने नैतिक आधार को कमज़ोर बना रहा है।

किन्तु प्रत्यक्ष सत्य पर अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है और अपनी ओर, साथ ही इस बात को मैं स्वीकार करूँगा कि दुर्बलता निंद्य है और सबल के लिये भारी खतरा है और दुर्बलों की अपेक्षा, दूसरों के अधःपतन का अधिक निश्चय कारण है। प्रत्येक जाति का यह नैतिक कर्त्तव्य है कि वह बलिष्ट बने ताकि संसार

की शक्ति के संतुलन को सम अवस्था में रखने में सहायता दे सके। इंगलैण्ड के लिये यह सरल बना कर कि हमारे प्रति सहानुभूति शून्य होते हुए भी वह हमारे ऊपर न्यायाधीश बने, और घृणा करते हुए भी हम पर शासन कर सके, हम उसका महत्तम उपकार कर रहे हैं।

क्या यूरोप वर्तमान महायुद्ध का मूल कारण कभी नहीं समझेगा और यह अनुभव करेगा कि सच्चा कारण उसका अपने आदर्शों में दिन प्रति दिन बढ़ता हुआ अविश्वास और संशय है; वही आदर्श-जिन्होंने उसे महान होने में सहायता दी है? ऐसा प्रतीत होता है कि जिस तेल से पहले उसका दीपक प्रकाशित हुआ, उसको उन्होंने अब निबटा दिया है। अब उन्हें उस तेल के प्रति ही अविश्वास की भावना हो गई है, मानो प्रकाश के लिये अब उसकी कोई आवश्यकता ही नहीं रह गई थी।

शिलाईदा, १६ जुलाई १६१५

पता नहीं मेरा पिछला पत्र जिसे मैंने रेलगाड़ी में लिखा था और जिसमें अपने जापान-भ्रमण के विचार की सूचना दी थी तुम्हें मिला या नहीं? मैं अपने स्वप्नों को विस्तृत, हरे, सुनहले और नीले क्षेत्र में तैराने में संलग्न हूँ, ठीक जिस तरह बच्चे अपनी कागज़ की नाव के लिये होते हैं। इस संसार में आश्चर्य-जनक सौन्दर्य है किन्तु यह विचार आये बिना नहीं रह सकता कि उसके हृदय में एक छिपी हुई पीड़ा है जिसका स्वयं एक अमर सौन्दर्य है। यह तो आश्चर्य जनक रंगरूप की वह सीपी है जिसके अन्तरंग में एक अश्रु बिन्दु छिपा है जो उसको अमूल्य मूल्य देता है। हमारे सारे भुगतान पीड़ा से ही होते हैं। अन्यथा यह जीवन और सारा संसार धूल जैसा सस्ता हो जाय।

शिलाईदा २३ जुलाई १६१५

वर्षों बाद मैं अपने काश्तकारों के बीच आया हूँ; मुझको और उनको भी ऐसा लगता है कि मेरी उपस्थिति की आवश्यकता थी। जब मैं पहली बार अपने ही आदमियों के बीच यहाँ रहा, तो यह मेरे जीवन की महत्वपूर्ण घटना थी। इस प्रकार मैं जीवन की वास्तविकता के सम्पर्क में आया; क्योंकि उनमें

मनुष्यत्व अपने नग्न रूप में दीखता है। मनुष्य का ध्यान दूसरी ओर नहीं जाता और तब वह वस्तुतः जान पाता है कि विश्व-व्यापी मानव में और साधारण मानव में बहुत कुछ ऐक्य है; किन्तु मनुष्य के लिये यह सब भूल जाने की बहुत सम्भावना है, ठीक उसी तरह जैसे मनुष्य उस पृथ्वी का कभी विचार भी नहीं करता जिस पर वह चला करता है।

किन्तु इन हीनप्राणियों से मिलकर अधिकांश मानव जगत बना है, जो सभ्यताओं को जीवित रखता है और उनके भार को सहन करता है। ये केवल जीने मात्र से संतुष्ट है ताकि दूसरे व्यक्ति यह सिद्ध कर सकें कि केवल अस्तित्व से मनुष्य जीवन बहुत अधिक है। न्यूनतम स्तर को जो परिमाण में बहुत है, वे स्थाई बनाये रखते हैं ताकि अधिकतम अपनी वृद्धि में निर्बाधित हों। सहस्रों एकड़ भूमि जोती जाती है कि एक एकड़ पर एक विश्व विद्यालय निर्वाह कर सके। फिर भी यह व्यक्ति अपमानित होते हैं केवल इसलिए कि यद्यपि उनकी अत्यन्त आवश्यकता है किन्तु उनके जीवित रहने की गरज उन्हें इस स्थिति पर ले आई है। वे अपनी जगह पर इस कारण हैं कि वे लाचार है।

हम सब आशा करते हैं कि ठीक इसी स्थान पर अन्त में विज्ञान मनुष्य की साहायता करेगा। वह हर व्यक्ति के लिये जीवन की आवश्यकतायें उपलब्ध कर सकेगा और मनुष्य जगत जड़ पदार्थ के उस अत्याचार से मुक्त हो जायेगा, जो आज उसको अपमानित कर रहा है। संघर्ष मे पड़ा हुआ मनुष्य समूह भावना में और असीम शक्ति के रहस्य में बहुत बड़ा है। जहाँ यह सरल और स्वाभाविक है, वहाँ यह सुन्दर है; जहाँ यह गहरा और दृढ़ है, वहाँ महत्ता लिये हुए है। मैं स्वीकार करता हूँ जब कि मैं इनसे दूर शान्तिनिकेतन में था मैंने इन प्राणियों पर ध्यान नहीं दिया। अब फिर उनके साथ होने में मुझे प्रसन्नता है, जिससे मैं उनके बारे में और अधिक यत्नपूर्वक ध्यानशील हो जाऊँ। मुझे भय है कि मेरा आश्रम का जीवन, मुझे अन्त में एक अध्यापक बना रहा था जो मेरे लिये अप्राकृतिक होने के कारण बहुत ही असन्तोष प्रद है। परन्तु एक व्यक्ति को वास्तविक मनुष्य होने के लिये सहायक होना चाहिये; क्योंकि तब हम दूसरे मानव-बन्धुओं के जीवन के साथ अपने जीवन को मिला देते है न कि केवल विचारों।

कलकत्ता, २६ जुलाई १६१५

अनन्त सत्ता यदि वह बिलकुल अनन्त ही रहे तो वह पूर्ण नहीं है, सान्त के के द्वारा—अर्थात् सृष्टि के द्वारा उसे अपने आपको जानना है। अनुभूति की लहर तो आनन्द की पूर्णता से आती है परन्तु उसका मार्ग पीड़ा में होकर है। तुम यह नहीं पूछ सकते हो कि ऐसा क्यों हो—अपने में फिर से लौट आने के लिये कष्ट का कारण उल्लास क्यों हो; क्यों अनन्त सान्त में होकर सत्य प्राप्त करें—क्योंकि यह ऐसा ही है; और जब हम ज्ञान प्राप्त करते हैं तो हमको हर्ष होता है कि यह ऐसा है।

जब हम अपना सारा ध्यान अनन्त के सम्बन्ध में उस पक्ष में लगाते हैं जहाँ वह मरण और पीड़ा है, जहाँ वह परिपूरित करने की प्रक्रिया है, तो हम सहम जाते हैं। पर हमको जानना चाहिये कि उसका एक निश्चित सत्तामय पक्ष भी है, कि हमेशा अपूर्ण के साथ ही साथ पूर्णत्व रहा आता है। अन्यथा पीड़ित के लिये हमारे अन्दर कोई दया न होता; अपूर्ण के लिये हृदय में कोई प्रेम न होता।

जो मैं कहना चाहता हूँ, वह यह है। तुमने बन्दर को तारों में बुरी तरह उलझा हुआ मरा हुआ देखा जब कि उसके चारों ओर श्रेष्ठतम सौन्दर्य था। यह विषमता तुमको बड़ी क्रूर मालूम दी। यह वास्तव में ठीक है। यदि कुरूपता पूरी तरह होती तो तुमको क्रूरता प्रकट नहीं हुई होती। तुमने दया अनुभव की क्योंकि वहाँ पूर्णत्व का आदर्श है। यहाँ इस आदर्श में हमारी आशा, और अन्त में सारी शंकाओं का समाधान निहित है। सृष्टि में दुःख पर उल्लास विजय पाता रहा है अन्यथा कष्ट के लिये हमारी सहानुभूति निरर्थक होगी।

तब हम हतोत्साह क्यों हों? हम अस्तित्व के रहस्य की गहराई को नाप नहीं सकते। किन्तु इतना हम जान गये हैं कि प्रेम एक ऐसी वस्तु है जो सत्य की दृष्टि से मरण और पीड़ा दोनों से ही बड़ा है। क्या यह हमारे लिये पर्याप्त नहीं है?

शान्तिनिकेतन, ७ अगस्त १६१५

तुम्हारा पत्र मुझे बहुत रुचिकर हुआ। विशेष महत्व की अधिकांश वस्तुओं में विचार निर्देश के लिए मेरा एक सिद्धान्त है। वह यह है, सृष्टि को व्यक्त करने वाला अंक 'एक' नहीं 'दो' है। दो विरोधात्मक शक्तियों के संतुलन में सभी चीजें स्थिति हैं। जब कभी द्वन्द्व दो को एक में घटाकर, तर्क चीजों को सरल बनाता है, तो वह गलती कर बैठता है। कुछ दार्शनिक कहते हैं कि गति बिलकुल माया है और सत्य गतिहीन है; दूसरों का यह मत है कि सत्य चलायमान है और यह माया का ही कारण कि सत्य अचल प्रतीत होता है।

किन्तु सत्य तर्क से परे है; वह एक शाश्वत आश्चर्य है। वह एक साथ ही गतिमय और गतिहीन है; वह आदर्श है और वास्तविक है; वह निस्सीम और असीम दोनों है।

युद्ध और शान्ति के सिद्धान्त दोनों का ही सत्य में समावेश है। वे विरोधात्मक हैं। वे एक दूसरे पर अँगुली और वीणा के तार की भाँति चोट करते मालूम होते हैं; परन्तु यह विरोध ही संगीत उत्पन्न करता है। जहाँ केवल एक का ही प्राधान्य होता है, तो वहीं मौन का बंध्यापन होता है। हमारी समस्या केवल यह नहीं है कि युद्ध हो अथवा शान्ति वरन हम उनमें किस भांति पूर्णतः सामंजस्य स्थापित कर सकते हैं।

जब तक शक्ति जैसी कोई भी चीज है, हम नहीं कह सकते कि हमको बल-प्रयोग नहीं करना चाहिये वरन यह कह सकते हैं कि हमको उसका दुरुपयोग नहीं करना चाहिये जैसा करने के लिये हम बहुधा प्रेरित होते हैं। जब हम प्रेम को त्याग कर केवल उसी को अपना मापदंड बना लेते हैं। जब प्रेम और शक्ति दोनों साथ-साथ नहीं चल पाते तो प्रेम केवल दुर्बलता है और बल पाशविक है। शान्ति अकेले होने पर मृत्यु बन जाती है युद्ध राक्षस बन जाता है जब वह अपने सहचर का संहार कर डालता है।

हाँ, यह हमको एक क्षण भी नहीं सोचना चाहिये कि एक दूसरे का प्राण लेना युद्ध का आवश्यक रूप है। मनुष्य प्रधानतः नैतिक स्तर पर है और उसके शस्त्र भी नैतिक होने चाहिये।

शान्तिनिकेतन, २३ सितम्बर १६१५

(हमारे फ़िजी-प्रस्थान के पूर्व लिखा गया)

हेमन्तीय सूर्य की स्वर्णिम घंटियां धीमे स्वर से बज रही हैं और प्रस्थान का समय आ गया है। हमारे दल के [illegible] और पियर्सन ही पहले प्रतिनिधि हो जिन्होंने समुद्र पार के मार्ग के लिये अपना घोंसला छोड़ा है; बड़ी कठिनता से मैं अपने पंखों को नियंत्रण [illegible] हूं। हमारे चारों ओर की वस्तुओं में एक गुरुता है और हमारे [illegible] हमारी आत्मा में समा जाती है यहाँ तक कि एक दिन हम ऐसे [illegible] हुए अनुभव करते हैं जिसकी प्रकृति से हम शायद ही परिचित हों। [illegible] पदार्थ से जीवन दूभर हो उठता है तो हलचल ही एक मात्र इलाज है।

मेरा हृदय इस समय पानी से भरा एक रिसती हुई नाव की भाँति है जो सावधानी से तैर सकती है किन्तु नाममात्र का उत्तरदायित्व का बोझा बढ़ना ही उसकी सामर्थ्य से बाहर हो जायगा। मुझे निर्जन में जाना चाहिये और पूर्ण स्वतन्त्रता का कठोर अनुशासन अपना लेना चाहिये। मैं संसार की सारी अनुनय-विनय, सारे नैतिक एवं सामाजिक शिष्टाचार, कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व के लिये दृढ़ता पूर्वक 'ना' कहना चाहता हूं। किन्तु मेरे विरोध के होते हुए भी मुझे भय है--कि कुछ रूपान्तर के साथ ही मुझे अपना जीवन संन्यासी की भाँति ही शेष करना होगा।

मैं नाटक-अभ्यास में सहयोग दे रहा हूँ और कुछ अंशों तक उसमें स्वाद लेता हूँ क्योंकि इससे उन छोटे बच्चों के निकट-सम्पर्क में आने का अवसर मिलता है जो मेरे लिये सदा ही आह्लाद का स्रोत हैं।

प्रकरण : ४ :

सन् १९१६ जनवरी के अन्त में हमारे फ़िजी से प्रत्यागमन के पश्चात महाकवि की सुदूर-पूर्व यात्रा की इच्छा बहुत बलवती हो गई। अपनी इस समुद्रयात्रा में उन्होंने पिअर्सन, कलाकार मुकुल दे और मुझको साथ लिया। हमने कलकत्ते से 'टोसा मारू' में प्रस्थान किया। बंगाल की खाड़ी में जहाज को एक भयंकर तूफान में होकर जाना पड़ा और तूफ़ान से सुरक्षित निकलने में बड़ी कठिनाई हुई, चीन में हम बहुत थोड़े दिन ठहरे, कारण, जापानी अपने देश में महाकवि के पहुँचने की बड़ी व्यग्रता से प्रतीक्षा कर रहे थे। आरंभ में उन्होंने बड़े उत्साह से स्वागत किया इस नाते से कि उन्होंने एशिया के लिये बहुत बड़ा गौरव प्राप्त किया था।

परन्तु उन्होंने सैन्य साम्राज्यवाद के विरोध में जो कि उन्हें जापान में चारों ओर दृष्टिगोचर हुआ, कठोर शब्दों में अपने विचार रखे। साथ ही उन्होंने दूसरी ओर प्राच्य और पाश्चात्य के सच्चे मिलन का अपना आदर्श चित्र सामने रखा जिसमें विश्व-बंधुत्व की ओर लक्ष्य था। जापान ने ऐसी शान्तिपूर्ण शिक्षा को युद्धकाल में बड़ा आपत्तिजनक समझा और चारों ओर यह कहा गया कि यह भारतीय कवि एक परास्त राष्ट्र का निवासी था। इस कारण जिस वेग से उनका स्वागतोत्साह का उफान आया, उसी वेग से वह ठंडा हो गया। अन्त में वह बिलकुल एकाकी हो गये और जिस उद्देश्य से वह पूर्व में आये थे वह पूर्ण नहीं हो पाया। The song of the defeated (पराजित का गान) नाम की कविता उन्होंने इसी समय लिखी थी।

जापान में जब कि सैन्यवाद का ज्वर अपने शिखर पर था, यह ग्रीष्म मास निराशा से भरे थे। युद्धारंभ काल की मानसिक पीड़ा फिर लौट आई। अपने युग की हिंसक एवं आक्रमणकारी प्रवृत्ति के विरुद्ध महाकवि की सम्पूर्ण आन्तरिक प्रकृति विद्रोह करती थी। उनकी 'Nationalism' (राष्ट्रीयता) नामक पुस्तक में यह सब कहा गया है। उक्त पुस्तक के पहले प्रकरण जापान में इसी घोर मानसिक ताप और विद्रोह के समय में लिखे गये थे। यह जापान में दिये गये

व्याख्यान यूरोप में छपकर प्रकाशित हुए। स्विट्ज़रलैंड में रोम्यों रोलाँ द्वारा सन् १९१६ के अन्तिम दिनों में उसका फ्रान्सीसी भाषा में अनुवाद किया गया है यहाँ यह कहना आवश्यक है कि बाद में १९२४ में उनके जापान पर्यटन के समय, युद्धकाल की पहली धारणाओं में काफ़ी परिवर्तन हुआ। उस बार चीन और जापान दोनों जगहों में उन्हें ऐसे व्यक्तियों से मिलने का अवसर मिला जो उनके विश्वव्यापी सन्देश को समझने के लिये उत्सुक थे।

जापान से महाकवि पिअर्सन और मुकुल दे के साथ अमेरिका गये और मैं आश्रम को लौट आया। उनका अमेरिका प्रवास बहुत कार्य संलग्न रहा। उन्हें नये घनिष्ठ परिचय प्राप्त हुए और उनसे उन्हें बहुत शिष्टता और सहृदयता मिली। बहुत अंशों तक वह अपने अमेरिका भ्रमण से सन्तुष्ट थे और उन्होंने उसे अपने उद्देश्य की दृष्टि से सफल समझा। किन्तु वह वहाँ बीमार हो गये और कुछ समय बाद प्रशान्त महासागर के मार्ग से घर वापस आ गये और चीन और जापान में केवल स्टीमर पर ही ठहरे रहे।

उनके आश्रम आने के कुछ समय बाद ही मुझे फिर से फ़िजी जाना आवश्यक हो गया ताकि भारतीय मज़दूरों की शर्तबन्दी प्रथा पूरी तरह मिटा दी जाय। १९१७ और १९१८ के वर्षों में महाकवि ने शान्त और उपयोगी कार्य किया। इस बीच, शिक्षा सम्बन्धी अध्यवसाय के क्षेत्र और उद्देश्य को युद्धोपरान्त विस्तृत करने की योजनायें उनके मस्तिष्क में आकर स्वरूप लेती रहीं। इस पुस्तक के बाद के प्रकरणों में इस सब की सविस्तार चर्चा है क्यों कि उनका सारा ध्यान इन्हीं योजनाओं में लगा रहता था

१९१८ आरंभ में फ़िजी से लौटने पर मेरे पास आश्रम में रहने का अवकाश था। और क्यों कि उस समय के बाद मैं बराबर महाकवि के साथ बना रहा, मुझे उनके पत्र नहीं मिले। पर कुछ पत्र जो उन्होंने इंगलैंड में पिअर्सन को भेजे, उनकी इस बीच की विचार धारा का परिचय दे सकते हैं।

श्रीनगर, काश्मीर १२ अक्टूबर १९१५

मैं शरीरतः काश्मीर में हूँ, फिर भी अभी मैंने उसके द्वार में प्रवेश नहीं किया है। सार्वजनिक स्वागतों और मित्रों के सम्मानदान की यातना में होकर मैं निकल

रहा हूँ, किन्तु स्वर्ग दृष्टि के भीतर है। मुझे ऐसा लगता है कि मैं अपने समीप आ रहा हूँ। मेरे अन्तर का चपल प्रेरक अब कुछ समय के लिये शान्त है। मेरे लिये यह अनुभव करना सरलतर हो गया है कि यह मैं ही हूँ जो फूल में बहार लाता हूँ, घास में फैलता हूँ, पानी में बहता हूँ, तारों में झिलमिलाता हूँ और हर युग के मनुष्यों के जीवन में जीता हूँ

जब मैं प्रतःकाल नाव में बाहर आकर, उषा रश्मियों से सुशोभित, गिरि शृंगों के भव्य ऐश्वर्य के समक्ष, बैठता हूँ तो मैं अनुभव करता हूँ कि मैं शाश्वत्व हूँ मैं आनन्दरूपम हूँ मेरा सच्चा स्वरूप रक्त और माँस का नहीं, आनन्द का है। जिस संसार में प्रायः हम रहते हैं अहम का इतना प्राधान्य है कि उसमें सब कुछ स्वरचित है और हम इस कारण भूखों मरते हैं कि हम अपना ही भक्षण करते है। सत्य ज्ञान का अर्थ सत्यमय हो जाना है; इसका दूसरा कोई उपाय नहीं है। जब हम अहम के अनुरूप जीवन व्यतीत करते हैं तो हमारे लिये सत्य अनुभूति संभव नहीं है।

'बाहर आओ—दूर छोड़ आओ' यह आतुर पुकार हमारी आत्मा में होती है—अपने खोल के भीतर रहने वाले अर्भक के सारे रक्त-संचार की पुकार। वह केवल सत्य ही नहीं है जो मुक्ति देता है, वरन् वह मुक्ति है जो सत्य उपलब्ध कराती है। यही कारण है कि गौतम बुद्ध ने शरीर जाल से अपना जीवन मुक्त करने पर विशेष महत्व दिया है; कारण तब सत्य स्वयं प्रकट हो जाता है।

मैं अब अन्त में यही समझता हूँ कि मेरे अन्दर बराबर बनी रहने वाली बेकली इसी ढग की है—मुझे स्वभावाधीन जीवन से, सिद्धान्तों के साथ समझौते के जीवन से, और अपने शरीर के जीवन से, बाहर निकल आना चाहिये।

काश्मीर आकर मुझे यह समझने में सहायता मिली है कि मैं ठीक-ठीक क्या चाहता हूँ। यह संभव है कि अपने इसी दैनिक जीवन में पहुँचने पर इस ज्ञान पर फिर आवरण पड़ जाय। किन्तु प्रशमित विचार, काम और रहन सहन में यह कभी-कभी की अनासक्ति ही, अनिभ स्वतंत्रता—शान्तम, शिवम, अद्वैतम की ओर ले जाती है। मुक्ति की दिशा में पहली अवस्था शान्तम—सच्ची शान्ति है जो अपने को वश में करने पर मिलती है। दूसरी अवस्था शिवम—वास्तविक कल्याण है जो अपने को वश में करने के बाद आत्मा की गति है और तब है

अद्वैतम, प्रेम, सबके साथ ईश्वर के साथ एकाकार होना।

हाँ, यह विभाजन बुद्धि का है; प्रकाश रश्मियों की भाँति यह अवस्थाएँ परिस्थितियों के अनुसार एक साथ हो सकती हैं पृथक भी हो सकती हैं और उनका क्रम बदल भी सकता है जैसे शिवम, शान्तम से पहिले आये। किन्तु जो हमें जानता है वह केवल यही है कि शान्तम, शिवम और अद्वैतम ही वह लक्ष्य है जिसके लिये हम जीवित रहते हैं और प्रयत्न करते हैं।

शिलाईदा, ३ फरवरी १९१६

कलकत्ते से हट आने पर मैं फिर अपने में आ गया हूँ। हर बार मेरे लिये यह नई खोज होती है। नगरों में जीवन इतना घिरा हुआ होता है कि मनुष्य सच्चे दृष्टिकोण को खो बैठता है। कुछ समय बाद मैं हर वस्तु से ऊब जाता हूँ केवल इस कारण कि अपना आन्तरिक सत्य विस्मृत हो जाता है। हमारे अस्तित्व के अन्तरंग में हमारा प्रेमी हमारी प्रतीक्षा कर रहा है। जब तक हम उसके पास समय-समय पर नहीं आवें, भौतिक पदार्थों का अत्याचार असह्य हो जाता है। हमको बोध हो कि हमारा सब से बड़ा भंडार हमारे ही अन्तर में छिपा हुआ है। अपनी कृपणता से छुटकारा पाने के लिये हमको आश्वासन की आवश्यकता है।

शिलाईदा, ५ फरवरी १९१६

मेरी अंग्रेजी अनुवाद में 'Taking truth simply' (सत्य सरल अर्थों में लो) नामक कविता से तुम परिचित हो। पिछली रात 'The gardener' (दि गार्डनर) में उसे तथा दूसरी कविताओं को पढ़ते हुए मुझे वह अपने गद्य-पद्यमय रूप में एक विचित्र बेसुरेपन से भरी प्रतीत हुई। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे, जब बहुत सी महिलायें साड़ियाँ पहने हों तो उन्हीं में से एक बहुत कसी हुई अंग्रेजी पोशाक पहने हुए हो। अतः मैंने उसे छन्दमय वेष से निकालने का प्रयत्न किया है किन्तु उसको पुराने छन्दमय स्वरूप से बिल्कुल पृथक करना कठिन है।

"जो कुछ भी आ पड़े, मेरे हृदय, तुम सत्य सरल अर्थों में लो।"

"चाहे तुम्हें प्रेम करने वाले हों, तथापि ऐसे व्यक्ति भी होंगे जो तुम्हें कभी

प्रेम नहीं कर सकते और यदि कारण जानना चाहते हो तो वह तुम में भी उतना ही जितना उनमें और चारों ओर की दूसरी वस्तुओं में।"

"कुछ द्वार तुम्हारे खटखटाने से नहीं खुलेंगे जब कि तुम्हारे द्वार भी सदा और सब के लिये खुले नहीं।"

"ऐसा ही होता रहा है, आगे भी होगा, फिर भी यदि तुम शान्ति चाहते हो मेरे हृदय, तुम सत्य सरल अर्थों में लो।"

"चाहे वह तूफ़ान से बचकर निकल आई हो, किन्तु यदि तुम्हारी नाव पानी से भर कर घाट के किनारे ही डूबती हो तो भी उद्विग्न होने की कोई आवश्यकता नहीं है।"

"यथा संभव उपाय से अपने को तैराते रहो किन्तु यदि संभव न हो तो बिना शोर मचाये ही डूब जाने की भलमनसाहत करो।"

"यह तो आये दिन की बात है कि वस्तुएँ तुम्हारे उपयुक्त हों या न हों और घटनायें बिना तुम्हारी अनुमति लिये ही घटती रहें।"

"किन्तु यदि तुम शान्ति चाहते हो तो मेरे हृदय तुम सत्य सरल अर्थों में लो।"

"भीड़ में तुम धक्का देते हो और धक्का खाते हो किन्तु संसार में पर्याप्त स्थान है—आवश्यकता से कहीं अधिक स्थान है।"

"यद्यपि तुमने अपनी पाई बराबर धनहानि की भी गिनती कर ली किन्तु तुम्हारे आकाश के नीलेपन में रंचमात्र भी अन्तर नहीं है।"

"भयानक परीक्षा होने पर तुमको विदित होता है कि मरण से जीवन मधुर है।"

"तुम इस, उस और अन्य वस्तु को खो सकते हो किन्तु यदि शान्ति चाहते हो तो मेरे हृदय, तुम सत्य सरल अर्थों में लो।"

"उदय होते सूर्य की ओर क्या तुम पीठ करके खड़े होकर अपने सामने लम्बी छाया देखना चाहोगे?"

"क्या अपने भाग्य में दोष निकालते हुए, अपनी आत्मा को इतना खिझाओगे कि उसकी मृत्यु हो जाये?"

"तब दया के नाम पर शीघ्रता करो और उनसे छुटकारा पाइये क्योंकि यदि

सायंकाल के तारों के साथ ही तुम्हें अपना दीपक जलाना है तो मेरे हृदय, तुम सरल अर्थों में लो।

शिलाईदा,
२४ फरवरी १९१६

तुम कहाँ हो? क्या अपनी रिपोर्ट लिखने में गहरे निमग्न हो? उससे ऊपर कब प्रकाश में आओगे और कब अस्तित्व की लहरों और भवरों के साथ नाचते हुए आगे बढ़ोगे।

यहाँ मेरा काम भी है और खेल भी है। इससे दफ़्तरों और अफ़सरों की दुर्गन्ध नहीं है। उसमें एक अपने ढंग की सरसता है। यह ठीक एक चित्र अङ्कित करने की भाँति है।

पिअर्सन रोगी होने में सफल हुए हैं और मेरी यात्रा में साथ चल रहे हैं।

शान्तिनिकेतन
९ जुलाई १९१७

अपने फिजी प्रस्थान के बाद पहली बार तुमने मुझे अपना पता दिया है। तुम्हारी दुर्घटना और पीठ व पैरों में चोट के समाचार से हम सब बहुत चिन्तित हुए हैं।

सन्तोष मित्र के नेतृत्व में बच्चों ने बड़े सच्चे चाव के साथ कृषि आरम्भ करदी है और मेरा विश्वास है कि इसकी वैसी दशा नहीं होगी जैसी कि नैपाल बाबू के जगमगाहटी काम से सड़क की हुई जिसका बनाना निरर्थकता की सीमा पर पहुँच कर अचानक बन्द हो गया और जिससे कोई भी लाभ नहीं हुआ। कलाकार सुरेन्द्रनाथ कर पाठशाला में आगये हैं और उनकी उपस्थिति से बच्चे व अध्यापक सभी को हर्ष है। अपने पुराने विद्यार्थी और कलकत्ते के फुटबाल के प्रसिद्ध खिलाड़ी गोरा ने गणित अध्यापक का कार्य ले लिया है और मैं समझता हूँ कि कालान्तर में उसकी प्राप्ति बहुत मूल्यवान सिद्ध होगी।

हमारे बहुत से विद्यार्थियों की भाँति वर्षा ऋतु ने भी इस बार छुट्टियों की समाप्ति की प्रतीक्षा नहीं की और वह समय से पहले प्रकट होकर, तभी से अपने

काम में जी-जान से जुटी हुई है। दूसरी मंजिल की अपनी खिड़की पर पृथ्वी की प्रफुल्लित हरियाली और रंगबिरंगे बादलों के मध्य देश में मैंने अकर्मण्यता का आसन ग्रहण किया है।

एक ऐसा समय था जब मेरा जीवन इस अंधाधुंधी विश्व में खर्चीले-पन से उमड़ा पड़ता था। यह उस समय से पहले की बात है जब मेरे यौवन के नन्दन-वन में सार्थकता घुसकर आई और अस्तित्व की दिगम्बर सुषुमा को फैशन भरी काटछाँट के साथ एक सुन्दर पोशाक पहनाई। मैं मन के उस लुप्त स्वर्ग को पुनः प्राप्त करने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ—यह भूलजाने के लिये कि मैं किसी के लिये उपयोगी हूँ और यह जानने के लिये कि मेरे जीवन का वास्तविक उद्देश्य मेरे अन्तर का सर्वव्यापी और सर्वकालीन महान लक्ष्य है जो मुझे विवश कर रहा है। पूर्णरूप से वही होने के लिये जो मैं हूँ।

और मैं क्या कवि नहीं हूँ ? मुझे और कुछ होने की आवश्यकता ही क्या है ? किन्तु मैं दुर्भाग्य से एक सराय की भाँति हूँ जहाँ कि प्रवासी कवि को अपनी बगल में विचित्र साथी प्रवासियों को निभाना पड़ता है। पर क्या बहुत दिनों से वह समय नहीं आगया जब कि मैं सराय के, इस छोटी से आपके व्यापार से छुट्टी लूँ ? जो भी हो मैं थका हुआ अनुभव करता हूँ और यहाँ के बहुत से प्रवासियों के प्रति मेरा कर्त्तव्य एक लज्जाजनक अवहेलना के प्रत्यक्ष संकट में है।

शिलाईदा,
२० जुलाई, १९१७

साथ में दूसरा पत्र पिअर्सन का है। मुझे हर्ष है कि अपने एकान्त जीवन के बाद वह मन एवं काया से स्वस्थतर हैं।

एक वर्ष, छैः महीने पृथक रहने के पश्चात मैं पुनः अपनी पद्मा के पास आ गया हूँ और मैंने फिर अपना प्रणय आरंभ कर दिया है। अपनी परिवर्तनशीलता में भी वह अपरिवर्तित है। उसका प्रवाह अब हट रहा है और शिलाईदा से दूर होता जा रहा है। निश्चत रूप से वह अब पवन की ओर जाने की रुचि दिखा रही है। मेरे लिये एकमात्र सान्त्वना इसमें है कि वह बहुत समय तक स्थायी नहीं रह सकती।

आज बड़ा सुन्दर दिन है। मेह के अनिश्चित लहरों के बाद धूप निकल आती है, जैसे समुद्र में गोता मारकर लड़का बाहर निकलता हो जब कि उसमें अंग चमकते हुए दिखाई देते हों।

कलकत्ता,
६ मार्च, १६४८

(इस प्रकरण में आगे दिये पत्र, पिअर्सन को लिखे गये थे)

इस हतभाग्य देश में हममें से प्रत्येक संशक भाव से देखा जाता है और हमारे ब्रिटिश शासक अपने आप उठाई धूल में से इसको ठीक तरह नहीं देख पाते हैं। पग-पग पर और हम भले काम में भी जिसे हम करना चाहते हैं, हमको अपमानित होना पड़ता है।

आरम्भ में प्रत्येक अंध प्रणाली सरल होती है, किन्तु अन्त में ऐसे सस्ते ढंग से हाथ कुछ नहीं लगता। वस्तुतः तिरस्कार करना मूर्खता है। अपने मार्ग से अनभिज्ञ होने के कारण, कालान्तर में उसमें भयंकरता आ जाती है। हमारे शासकों के साथ मौलिक भूल यह है कि वह अच्छी तरह यह जानते हैं कि हमको नहीं समझते, किन्तु फिर भी हमसे परिचित होने की उन्हें तनिक भी परवाह नहीं है। और परिणामतः शासकों और शासितों के बीच अनैतिक बिचौलियों की कटीली झाड़ियाँ उपज रही हैं। उनसे ऐसी अवस्था आ रही है जो केवल दुखद ही नहीं है वरन उसमें अकथनीय असौन्दर्य है। मुझे अभी-अभी थाउनी का पत्र मिला है जिसमें केवल ब्रिटिश भारतीय नागरिकों को ब्रिटिश बन्दरगाहों पर मिलने वाली—परेशानी, छेड़खानी और अपमान की शिकायत है। इसका प्रभाव यह हुआ कि जिस संस्कार के आधीन वह रहते हैं उससे लज्जित अनुभव करते हैं। ऐसा विद्वेषपूर्ण व्यवहार मेरे देश वासियों पर बहुत गहरी छाया डाल रहा है और इतिहास का नैतिक साक्षी मानवता के प्रति निरन्तर असुन्दर व्यवहार से आँख नहीं बचा सकता।

शान्तिनिकेतन, १० मार्च १९४८

तुम्हारे पत्र से मैं अनुमान कर सकता हूँ कि तुम्हारे मन में आत्म-साक्षात्कार के सर्वोत्तम मार्ग के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न उथल-पुथल कर रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति के लिये केवल एक ही मार्ग नहीं हो सकता क्योंकि अपने स्वभाव में एवं प्रकृति में हममें बहुत भिन्नता है। परन्तु एक मुख्य स्थल पर सभी महापुरुष एकमत हैं वह है—आध्यात्मिक स्वतन्त्रता पाने के लिये अपने निजी व्यक्ति को (अहम भाव को) भुला दो। बुद्ध और ईसा दोनों ने कहा है कि यह आत्म-त्याग नकारात्मक नहीं है, उसका निश्चित सत्तामय पक्ष प्रेम है।

हम केवल उसी को प्रेम कर सकते हैं जो हमारे लिये दृढ़ सत्य है। अधिकतर व्यक्तियों में केवल अपने लिये वास्तविकता की सबसे तेज भावना होती है और आत्म-प्रेम की सीमाओं के बाहर वह कभी नहीं आ सकते। शेष मनुष्य-जगत को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—एक तो वह जिनका प्रेम व्यक्तियों से होता है और दूसरे वह जिनका प्रेम विचारों से होता है। साधारणतः स्त्रियाँ पहले वर्ग में आती हैं और पुरुष दूसरे वर्ग में। भारत में यही स्वीकार किया गया है। इसी कारण हमारे गुरुओं ने स्त्री और पुरुषों के लिये दो भिन्न मार्गों का अवलम्बन करना बताया है।

ऐसा कहा गया है कि स्त्रियाँ पूर्ण विकास प्राप्त कर सकती हैं यदि वे व्यक्तिगत सम्बन्ध को आदर्श के क्षेत्र में ऊँचे स्तर पर ले जायँ। यदि स्पष्ट विरोधात्मक वस्तुओं के होने पर भी, एक स्त्री पति के अन्दर उसकी व्यक्तिगत सीमाओं के परे की वस्तु अनुभव कर सकती है तो पति के प्रति अपनी भक्ति से वह अनन्त का साक्षात्कार कराती है और इस तरह कर्म के बन्धन से मुक्त हो जाती है। उसके देदीप्यमान प्रेम के द्वारा उसे पति और अन्तिम देवी सत्य की अभिव्यक्ति होती है। शरीर-विज्ञान सम्बन्धी कारणों से, मनुष्य की प्रकृति, व्यक्ति के प्रति आसक्ति में, अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्र रही है। इस कारण उन विचारों पर जो वस्तु आवरण के पीछे हैं, सीधे ही पहुँच जाना उनके लिये सरलतर हो गया है। वे विचार, जिनके लिये सारे सृजनात्मक और ज्ञान-प्राप्ति के कार्यों में वे सदा प्रयत्न करते रहे हैं। एक बार इस चेतना के आने पर कि वास्तविकता की अन्तरात्मा विचार है,

आनन्द इतना निस्सीम हो जाता है कि अपनापन हट जाता है और उस आनन्द के लिये तुम सब कुछ निछावर कर सकते हो।

परन्तु हमें ध्यान रखना चाहिये कि व्यक्ति और विचारों दोनों के ही प्रेम में भयंकर अहंकार हो सकता है और वह मुक्त करने के स्थान पर, हमारे बन्धन ढीले कर सकता है।

यह तो सेवा में निरन्तर बलिदान ही है जो बन्धन ढीले कर सकता है। हमको अपने प्रेम में चाहे वह व्यक्ति का हो या आदर्श का, सौन्दर्य और सचाई का, मनन करते हुए केवल स्वाद ही नहीं लेना चाहिये वरन् साथ ही जीवन के कामों में उसे व्यक्त करते हुए उसे फलप्रद बनाना चाहिये। हमारा जीवन वह पदार्थ है जिसके द्वारा मनोनीत सत्य आदर्श की प्रतिमा बनाते हैं परन्तु और दूसरे पदार्थों की भाँति जीवन में जिस विचार को वह रूप देता है, उसके प्रति एक प्रबल विरोध लिये होता है। केवल सृजन के कर्मशील ढंग के द्वारा ही उपर्युक्त विरोध की पग-पग पर खोज हो सकती है और हर आघात पर उसे काट-छाँट कर ठीक किया जा सकता है।

अपने आश्रम के चारों ओर आदिवासी संथाल स्त्रियों पर ध्यान दो। शारीरिक जीवन का आदर्श उनमें केवल इसी कारण से पूर्ण वृद्धि पाता है कि वह उस आदर्श को अपने काम में प्रकट करने में प्रयत्नशील हैं। उनके ढाँचे और चाल ढाल में एक मधुर सौन्दर्य है क्योंकि जीवन के काम-काज से उसकी लय हमेशा ही मिलाई जा रही है। वह विशेष बात जिसकी प्रशंसा से मैं अघाता नहीं हूँ वह उनके शरीर अवयवों की वह असाधारण स्वच्छता है, जो धूल के निरन्तर सम्पर्क से भी मलिन नहीं होती। भद्र महिलायें अपने साबुन और इत्र फुलेलों के साथ इस ऊपरी शरीर को केवल एक ऊपरी चमक दे पाती हैं; किन्तु वह स्वच्छता जो शरीर की अपनी धारा की गतिशीलता से उत्पन्न होती है, जो शारीरिक स्वास्थ्य की पूर्णता से आती है, इन भद्र महिलाओं में कभी भी नहीं हो सकती।

ठीक यही बात आध्यात्मिक शरीर के साथ होती है। अपनी आत्मा को अकलुष एवं शालीन बनाये रखने के लिये, केवल धूल के झोंकों से बचाये रखने के विशेष यत्न से ही काम नहीं चलता। वरन् उसके लिये आवश्यक यह है कि धूल-धूप के ही बीच उसे अपने आन्तरिक जीवन को अभिव्यक्त करने के लिये बाध्य किया जाय

किन्तु मुझे यह देखने को ठहरना चाहिये कि उपर्युक्त में मैंने तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दिया है या नहीं। ऐसा हो सकता है कि मैंने उत्तर न दिया हो; क्योंकि ठीक-ठीक यह कहना कठिन है कि तुम मुझसे क्या चाहते हो। तुमने अव्यक्तिगत प्रेम प्रेम और अव्यक्तिगत कर्म की चर्चा की है और तुमने पूछा है कि मैं दोनों में किसे बड़ा समझता हूँ। मुझे तो वह एक ही वस्तु लगते हैं जैसे सूर्य और धूप। कारण, प्रेम की अभिव्यक्ति कर्म है। जहाँ प्रेम कर्म नहीं है, वहाँ एक जड़ जगत है।

शान्ति निकेतन,

७ अक्टूबर १९१८

मैं पिछले वर्ष भर आश्रम में स्कूल कक्षाओं को प्रातः समय पढ़ाता रहा हूँ और दिन का शेष भाग पाठ्य-पुस्तकों को लिखने में बिताता रहा हूँ। मेरी जैसी अभिरुचि के व्यक्ति के लिये इस ढंग का काम अनुपयुक्त है। किन्तु इस काम में मुझे केवल स्वाद ही नहीं आया वरन् साथ ही विश्राम भी मिला है। मन पर अपना ही एक भार है और यदि मन को काम की धारा पर तैराया जाय तो हलकापन अनुभव होता है। ध्यान आकर्षित करने वाले विचार भी उसी तरह हमारी सहायता करते हैं। किन्तु विचार अविश्वसनीय है; वे किसी समय विशेष के साथ नहीं आते-जाते और उनकी प्रतीक्षा में जो दिन और घंटे व्यतीत करने पड़ते हैं वे दूभर होते जाते हैं।

इधर मैं उस मानसिक अवस्था पर आ पहुँचा हूँ जब कि विचार-प्रेरणा के लिये प्रतीक्षा करना मुझे सह्य नहीं है। अतः अपने आपको मैंने ऐसे काम के अर्पण कर दिया है जो असंगत नहीं है और मशीन चालू रखने के लिये नित्य ही पर्याप्त कोयला मिलता रहता है। किन्तु यह पढ़ाने का काम मेरे लिये कोई नीरस कार्यक्रम नहीं था क्यों कि अपने विद्यार्थियों को मैं सप्राण यंत्र की भाँति बरतता रहा हूँ; और जीवन के साथ व्यवहार कभी भी नीरस नही हो सकता।

दुर्भाग्य से कवि से निश्चिन्त अवकाश का बहुत समय तक स्वाद लेने की आशा नहीं की जा सकती। ज्यों ही कोई नया विषय उसके मन पर अधिकार करता है, वह हर भले काम के लिये बेकार हो जाता है। वह बौद्धिक अवधूत होता

हैं; आवारापन उसके रक्त में प्रवाहित है और अब भी मुझे उत्तरदायित्व विहीन आवारापन की पुकार सुनाई पड़ रही है—नितान्त प्रमाद के लिये एक बलवती इच्छा। मेरे अन्दर का स्कूल अध्यापक, नटखट शैतान के घुमक्कड़पन से लुभाया जा सकता है।

मैं इस स्थान को दो एक दिन में छोड़ रहा हूँ, प्रकटतः दक्षिण भारत के भ्रमण के लिये जहाँ से मेरे पास बहुत समय से निमंत्रण आ रहे हैं; किन्तु हार्दिक अप्रकट बात यह है कि यह घुमक्कड़पन की भावना है और (जैसा कि मेरे साथ प्रायः होता है) यह उस बुद्धि का, जो मेरा निर्देश कर रही है और जो हर प्रकार के वर्जित कामों में मेरा सरक्षण करने को प्रस्तुत है, अपना कार्य त्याग कर स्थगित होना है। मेरी लालसा, अवकाशमय परी-प्रदेश को खोज पाने की है—कमल प्रदेश की नहीं—न ऐसे स्थान की जहाँ सप्ताह भर रविवार ही हो, वरन् उसकी जहाँ कर्म विश्रामनमय है, जहाँ मेह भरे बादलों की भाँति जिनकी महत्ता प्रकट नहीं होती, कर्त्तव्य भार रूप नहीं है।

शान्ति निकेतन,
११ दिसम्बर, १९१०

कल ही सिडनी विश्वविद्यालय का एक पत्र मिला है। इसमें पूछा गया है कि क्या यह सच है कि मेरी वहाँ आवश्यकता होने पर भी मैं आस्ट्रेलिया नहीं जा रहा। उत्तर में मैंने लिखा है कि मेरे लिये किसी भी निमंत्रण को यदि वह सच्ची भावना से दिया गया है अस्वीकार करना गलत होगा। देश भक्ति का अभिमान मेरे लिये नहीं है। मैं सचमुच ही यह आशा करता हूँ कि स्वयं उसे छोड़ने से पहले मैं ससार के किसी भी स्थल में अपना घर पाऊँगा। हमको अनौचित्य के विरुद्ध लड़ना है और सचाई के लिये कष्ट सहना है; किन्तु हमको अपने पड़ोसियों से, केवल इसी लिये कि हमारे भिन्न-भिन्न नाम है, तुच्छ ईर्ष्या और उत्पात नहीं करने चाहिये।

आत्मा का आवरण माया है। जब वह दूर हटा दिया जाता है, तब हमने अपने कष्टों में, सृष्टि के हृदय से प्रस्फुटित होने वाली शोक की बौछार का जो अनन्त आनन्द सिंधु में रूपान्तरित होकर लीन होने को प्रवाहित है आस्वादन किया है।

जब हम निज को अनन्त में नहीं देखते, जब हम अपने शोक को केवल अपना निजी समझते हैं तब जीवन मिथ्या हो जाता है और उसका भार दुर्वह हो जाता है। बुद्ध के उस उपदेश को मैं अधिकाधिक समझ पा रहा हूँ कि हमारे शोक का मूल कारण अहम् भाव की यही चेतनता है। पीड़ा के रहस्य को सुलझा कर मुक्त होने के पूर्व, हमको सर्वव्यापी की चेतना की अनुभूति करनी है।

कष्ट और तपस्या के मार्ग में आत्म-विकास निहित है। पीड़ा की कुंजी द्वारा, आनन्द-द्वार के ताले को हमें खोलना है। हमारा हृदय एक स्रोत की भाँति है। जब तक उसकी धार अहम् की संकीर्ण नाली द्वारा बहाई जाती है, वह भय, शोक और संशय में भरी है क्यों कि तब वहाँ अंधेरा है और वह अपने अन्त से अपरिचित है। किन्तु जब वह सर्वव्यापी के खुले वक्षस्थल पर आती है तब वह प्रकाश में चमक उठती है और स्वतंत्रता के आह्लाद में संगीतमय हो जाती है।

प्रकरण : ५ :

यद्यपि शेष पत्रों को मैंने प्रकरणों में बाँटा है पर सच यह कि उनमें एक निर्बाध क्रमैक्य है। ये पत्र महा कवि द्वारा यूरोप और अमेरिका की लम्बी यात्रा में जिसमें उनके साथ विली पियर्सन भी थे, लिखे गये थे।

महायुद्ध के शोक और अंधकार के कारण, रवीन्द्रनाथ ठाकुर क्रमशः इस निश्चय पर पहुँचे कि धीरे-धीरे शान्तिनिकेतन आश्रम में शान्ति और भाईचारे का घर बनाया जाय जहाँ, प्राच्य और पाश्चात्य, अध्ययन एवं कर्म से, सम-लक्ष्य के बंधुत्व में मिल सकें।

आरंभ में तो उनका विचार अपने आश्रम में एशिया की जहाँ-तहाँ बिखरी धार्मिक संस्कृतियों को एकत्रित करने का था—इस उद्देश्य से कि शेष संसार के समक्ष उन्हें संयुक्त रूप में रखें। किन्तु उनका मानस चित्र किसी ऐसे क्षितिज से सीमित नहीं हो सकता था जिसकी परिधि मनुष्य मात्र से कम हो। १६१२-१६ की भारत-यात्रा में उन्होंने मुझे अपने साथ रखा। वह यात्रा इस खोज में थी कि मानव प्रगति सम्बन्धी उनके विचारों को अपनी जड़ जमाने और बाद में फलने-फूलने को उपयुक्त भूमि मिल जाय। मैं उनकी यात्राओं में उपर्युक्त केन्द्रीय लक्ष्य को पार्थिवक रूप धारण करते हुये देख पाया। उन्होंने उस दृश्य की कल्पना की जिसमें शान्तिनिकेतन सारे जगत को अपने द्वार खोलता हो और समदृष्टि से पूर्व और पश्चिम में शान्ति एवं सद्भावना के प्रेमियों को आमंत्रित करता हो। वहाँ वे समान अधिकारों से एकत्रित हों और उनमें जाति, उपजाति अथवा धर्म का भेदभाव न हो। उन्होंने उस संस्था को जो संसार व्यापी सत्कार दे सके, विश्वभारती नाम दिया। संस्कृत में विश्व का अर्थ है—संसार—जिसमें सारी सृष्टि का समावेश है। भारती का अनुवाद अपेक्षाकृत कठिन है किन्तु उससे ज्ञान और संस्कृति का बोध होता है। विश्वभारती का हर जन-समुदाय और हर धर्म के लिये ज्ञानोपार्जन का आश्रम होने का लक्ष्य था।

महाकवि ने इन सारे विचारों को उपनिषदों से लिया था और उनके मस्तिष्क में प्राचीन भारत के वे वन्य आश्रम और साधनालय थे जो प्रत्येक इच्छुक व्यक्ति के लिये निर्बाध रूप से खुले थे और अपने अतिथियों का प्रेम और बंधुत्व की पूर्णता से स्वागत करते थे। उनके एक सर्वोत्तम व्याख्यान का शीर्षक है "The religion of the forest" (वन्य-धर्म)। उन्होंने एक दूसरे व्याख्यान में एक सुन्दर स्थल पर निम्न शब्दों में उपसंहार किया है :—

"हमारे पूर्वजों ने केवल एक शुद्ध श्वेत दरी फैलाई जिस पर सहृदयता और प्रेम के साथ बैठने के लिये सारे संसार को हार्दिक निमंत्रण दिया। वहाँ कोई उपद्रव हो ही नहीं सकता था क्योंकि जिसके नाम से शाश्वत निमन्त्रण दिया गया वह शान्तम्, शिवम्, अद्वैतम् था—जो हर प्रकार के झंझटों में भी शान्ति-पूर्ण है। वह कल्याण, जो प्रत्येक हानि और कष्ट में भी प्रकट होता है एवं वह "एक" जो सृष्टि की विभिन्नता में भी उपस्थित है। उसी नाम पर प्राचीन भारत में इस शाश्वत सत्य की घोषणा की गई—केवल वह व्यक्ति ही ठीक देख पाता है जो हर प्राणी को अपनी ही भाँति देखता है।"

अपने केन्द्रीय लक्ष्य की पूर्ति के लिये उन्हें पश्चिम का समर्थन प्राप्त करने और पश्चिम को अपने आश्रम के लिये आमंत्रित करने के निमित्त एक बार फिर यूरोप और अमेरिका जाना आवश्यक हो गया। किन्तु ठीक जिस समय उन्होंने यात्रा के लिये प्रबन्ध करना आरम्भ किया, पंजाब में कुछ उत्पात हुये जिन्होंने कुछ समय के लिये सभी वस्तुओं को पृष्ठभूमि में डाल दिया। दंगे हुए थे और प्रतिकार में दंड दिया गया था। जिस महत्वपूर्ण क्षण में अमृतसर के बारे में यह समाचार आया मैं उनके साथ कलकत्ते में था और मेरे लिये उनकी तीव्र मानसिक पीड़ा को कभी भी विस्मृत करना असंभव होगा। एक के बाद दूसरी रात बिना सोये बीतीं। अन्त में जो कुछ किया गया था उसके विरोध में अपनी "सर" की उपाधि के परित्याग से उन्हें कुछ सान्त्वना मिली। कुछ समय तक तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो अमृतसर ने उनकी सारी ऊँची आशाओं और आकांक्षाओं को चकनाचूर कर दिया। किन्तु जहाँ कवि की विशेष भावुकता के कारण, जलियाँवालेबाग में मानवता पर किये गये अत्याचार के कारण उन्हें बहुत भारी चोट लगी, उधर साथ ही, उस स्थल पर स्मारक बनाकर उस रक्तपात की घटना

को चिरस्थायी बनाने के प्रस्ताव का भी उन्होंने प्रबल विरोध किया। इसी प्रकार पहले एक अवसर पर जापान में एक दुखद रक्तपातमय कहानी को एक छोटी कविता के रूप में शिला पर अङ्कित करने के लिये उनसे प्रार्थना करने पर उन्होंने लिखा :—

मैंने इन बातों की चर्चा इस कारण की है कि वह आगे दिये पत्रों के लेखन काल से संबंधित हैं। उनसे महाकवि का अन्तरतम प्रकट होता है। अन्त में एक लम्बी अनुपस्थिति के बाद वे १९२० में यूरोप पहुँचे। बड़े प्रयत्न के बाद वे अपनी मानसिक स्थिरता को फिर प्राप्त कर पाये। पश्चिम की उदारता में उनका विश्वास अग्नि परीक्षा को पार कर चुका था। गहराई में उनका हृदय, उनकी उपचेतन प्रकृति में, पिछले वर्ष की पंजाब की घटनाओं से घायल हो चुका था। इसी कारण बड़ी चिन्ता के साथ मैंने उनको जहाज से बम्बई से प्रस्थान करते देखा। फिर मैं आश्रम को लौट आया।

लाल सागर,
२४ मई १९२०

आज सायंकाल हम स्वेज : जावेंगे। ठंड अब आरम्भ हो गई है और मुझे ऐसा लगता है कि हम दु के एक सचमुच विदेशी भाग में पहुँच गये हैं जहाँ हमारे अधिपतियों का नहीं, दूसरों का शासन है। इस क्षेत्र से हमारे हृदय अपरिचित हैं यहाँ तक कि इस स्थान का वातावरण भी बगलें झाँकता है। यहाँ के मनुष्य चाहते हैं कि हम उनके लिये लड़ाई लड़ें और उन्हें अपना कच्चा माल भेजें किन्तु दूसरी ओर वे हमें द्वार के बाहर खड़ा रखते हैं जिस पर यह सूचना अंकित है "एशियाई व्यक्तियों पर सीमोल्लंघन करने से अभियोग चलाया जायगा।" जब मैं इस पर विचार करता हूँ तो मेरे विचार सर्दिया कर काँप उठते हैं और मुझे शान्तिनिकेतन के अपने बंगले के धूपीले कोने में पहुँचने के लिये घर की याद आती है।

आज सोमवार है और आगामी रविवार प्रातःकाल हमारा स्टीमर मार्सेलीज पहुँच जावेगा, किन्तु मैं अभी से लौटते समय की यात्रा के दिन गिन रहा हूँ;

और मैं जानता हूँ कि अपनी उठी हुई अंगुलियों से भारत के मार्ग का संकेत करती हुई, अदन की नंगी चट्टानें मेरे हृदय में प्रसन्नता की लहरें दौड़ा देंगी।

लन्दन,
१७ जून १९३०

यहाँ अभाव है चीनी का, मक्खन का, समय का और ऐसे शान्त स्थान का जहाँ मैं अपने विचार एकत्रित करके अपने आपको पहचान सकूँ। मुझ से लम्बे पत्रों की, वस्तुतः किसी वस्तु की भी आशा मत करो। सामाजिक मिलन के कार्य-क्रमों का मेरे ऊपर तूफ़ान है और यह एक ऐसी वस्तु है जिस पर (Western winds)—पश्चिमी हवाओं की भाँति विचारपूर्ण कविता लिखी जा सकती है। यदि मुझे केवल कुछ समय मिल जाय तो मैं प्रयत्न करने को तैयार हूँ। अपनी प्रेयसि के कपोलों पर एक तिल मात्र के लिये कवि हाफिज, समरकन्द और बोखारा की सम्पत्ति निछावर करने को प्रस्तुत था। मैं शान्तिनिकेतन के अपने कोने के बदले में सारा लन्दन दे सकता हूं। किन्तु देने के लिये लन्दन पर अधिकार ही क्या है और न ईरानी कवि का समरकन्द और बोखारा की सम्पत्ति पर कोई अधिकार था। अतः अपने खर्चीलेपन के लिये हमें न तो कुछ व्यय ही करना पड़ता है और न उससे हमें कोई सहायता ही मिलती है।

मैं कल ऑक्सफ़ोर्ड जा रहा हूँ। तब मैं विभिन्न स्थानों में द्वार खटखटा-ऊँगा। ठीक इसी क्षण अपने सम्मान में एक चाय पार्टी के लिये मैं प्रस्थान कर रहा हूँ। उसमें किसी बहाने से भी मैं अपने को अनुपस्थित नहीं कर सकता, अतिरिक्त इसके कि लन्दन की सड़कों पर ही मोटरकार के नीचे दब जाने का मैं प्रबन्ध कर लूँ। यह मेरे लिये शाश्वत आश्चर्य का विषय है कि प्रति दिन तीन चार बार ऐसा ही क्यों नहीं जाता। तुम मेरे समयाभाव पर विश्वास नहीं करोगे यदि मैं इस पृष्ठ को अन्त तक भर दूँ। अतः मैं शीघ्रता से तुम से विदा लेता हूँ।

लन्दन, ८ जुलाई १९३०

प्रतिदिन तुमको पत्र लिखने की इच्छा की है—किन्तु शरीर दुर्बल है। बड़े लोहे के गोलों की भाँति मेरे दिन ठोस हो गये हैं। वे मिलने-जुलने के कार्यक्रम

से बोझिल हो गये हैं यह सच नहीं है कि मेरे पास बिलकुल अवकाश नहीं है किन्तु दुर्भाग्य से बीच-बीच में विघ्न भरे अवकाश से मैं किसी भी काम का लाभ नहीं उठा सकता। अतः ये घड़ियाँ बिना कुछ करते हुए ही बीत जाती हैं।

और्रों की अपेक्षा तुम अधिक भली भाँति जानते हो कि ठलौआपन का भार दुर्वह है किन्तु यदि तुम मेरे बहिरंग को देखो तो तुम्हें क्षति का कोई भी चिन्ह नहीं दिखाई देगा—कारण मेरा स्वास्थ्य बेहद अच्छा है।

मुझे आशा है कि पिअर्सन नियम से तुम्हें ताजे समाचारों से अवगत कराते रहते हैं। जैसा तुम स्वयं अनुमान कर सकते हो उनसे मुझे बहुत सहायता मिली है और मैं देखता हूँ कि कवि की देखभाल करने के भारी उत्तरदायित्व के लिये वे आश्चर्यजनक रूप से उपयुक्त हैं। वे स्वयं स्वास्थ्य का अवतार प्रतीत होते हैं और कुल मिलाकर उनके स्वप्न बहुत मनोरंजक हैं। उदाहरणार्थ, गत रात्रि स्वप्न में तरबूज बराबर बड़ी रसभरियों को खरीदते रहे। यह उनके स्वप्नों की महत्वपूर्ण सामर्थ्य को प्रमाणित करता है।

मैं जानता हूँ कि स्कूली छुट्टियाँ समाप्त हो गई हैं। लड़के स्कूल लौट आये हैं और आश्रम में हास्य और गायन प्रतिध्वनित हो रहे हैं। वर्षा-आगमन भी अपना भाग देकर इस उल्लासमय वातावरण को बढ़ा रहा है। मेरा जी होता है कि मेरे पंख होते। सभी बच्चों को मेरा स्नेहाशीर्वाद देना।

लन्दन,
१२ जुलाई १९२०

कल जब तुम्हारी बहन मुझसे मिलने आईं और जब तुम्हारी दूसरी बहन के कुशल के बारे में आश्वासन दिया तो मुझे बहुत हर्ष हुआ और बड़ी सान्त्वना मिली। और उन्होंने मुझसे बारबार अनुरोध किया कि मैं तुम्हें लिख दूँ कि उनके बारे में तनिक भी चिन्तित होने का कारण नहीं है। और वे सब अपने नये घर में सुखपूर्वक व्यवस्थित हो गये हैं। मैंने उन्हें तुमसे सबंधित सारे समाचार दिये। किन्तु दुर्भाग्य से उन्हें यह विश्वास नहीं दिला सका कि तुम अपने स्वास्थ्य के बारे में सावधान हो।

यूरोप के अन्य देशों से बराबर निमंत्रण आ रहे हैं और मुझे यह निश्चित प्रतीत होता है कि इन स्थानों में हार्दिक स्वागत मेरी प्रतीक्षा कर रहा है। जब मैं क्लान्त होता हूँ और जब लौटने की प्रबल इच्छा होती है तो यह सोचकर मुझे शक्ति मिलती है कि मेरे विचारों के पक्षीवर्ग ने इन समुद्र तटों पर अपना घोंसला पा लिया है और सच्चे प्रेम और आश्चर्य के साथ इन अत्यन्त व्यस्त पुरुषों ने सुदूर पूर्व के स्वर को सुना है। यह मेरे लिये बराबर विस्मय का विषय है। जो भी हो यहाँ प्रश्न यह नहीं है कि व्यक्ति सचमुच पूरी तरह वहाँ ही रहता है जहाँ उसके विचारों और कामों को प्रत्युत्तरमय जीवन का माध्यम मिलता है।

इस समय जब मैं पश्चिम में हूँ, मैं पहले की अपेक्षाकृत ज़ोरों से अनुभव करता हूँ कि मस्तिष्क की सजीव सृष्टि में मेरा स्वागत हो रहा है। यहाँ मुझे अपने अवकाश, आकाश और प्रकाश का अभाव है। किन्तु मैं उनके सान्निध्य में हूँ जो मेरी आवश्यकता अनुभव करते हैं और व्यक्त करते हैं और जिनको मैं अपने आपको अर्पण कर सकता हूँ।

यह असंभव नहीं है कि कालान्तर में उन्हें मेरे विचारों की भविष्य में कोई आवश्यकता न रहे और मेरे व्यक्तित्व में कोई आकर्षण भी न रहे, किन्तु क्या इसका कुछ महत्व है। पेड़ पत्तियों को छोड़ देता है पर सच यह है कि जब वे जीवित थीं, उस वृक्ष के हृदय में वे ही धूप पहुँचाती थीं और उनका ही स्वर जंगल का स्वर था। पश्चिमीय समाज से मेरा आदान-प्रदान—जीवन का आदान-प्रदान रहा है। जबवह बन्द भी हो जायगा तो यह सत्य स्थायी रहेगा कि वह प्रकाश की कुछ किरणें जो उनके मस्तिष्क के जीवित पदार्थ में रूपान्तरित हो गई हैं, वहाँ लाया। हमारे जीवन का फैलाव छोटा है और [illegible] कदाचित ही मिल पाते हैं। अतः जहाँ आत्मा उनकी माँग कर रही है और जहाँ फसल पकेगी, वहीं अपने विचारों का बीज-आरोपण कर देना चाहिये।

लन्दन,
२२ जुलाई १९२०

पार्लियामेंट की दोनों सभाओं में डायर विवादों का परिणाम, इस देश की शासक श्रेणी की भारत के प्रति मनोवृत्ति को, दुखद रूप से सुस्पष्ट कर देता है।

इससे प्रकट है कि उनकी सरकार के प्रतिनिधियों द्वारा हमारे विरुद्ध कितना ही वीभत्स अत्याचार—उनके हृदय में निन्दा और घृणा की भावना नहीं जगा सकता। जिनमें से हमारे शासक छाँट जाते हैं, उनके व्याख्यानों में प्रकट, और समाचार पत्रों में प्रतिविम्बित, पाशविकता की निर्लज्ज अवहेलना, भयंकर, रूप से असुन्दर है।

लगभग पिछले पचास वर्षों से आंग्ल-भारतीय शासन में अपनी स्थिति संबंधी तिरस्कार की भावना दिन प्रति दिन बलवती होती रही है। किन्तु एक सान्त्वना थी कि अंगरेज जनता की न्याय प्रियता में हमारा विश्वास था जिनकी आत्मा राजमद से विषाक्त नहीं हुई थी। ऐसा तो केवल परतन्त्र देश में ही हो सकता था जहाँ सारी जनता का पुरुषत्व कुचल कर उसे लाचार बना दिया गया है।

किन्तु वह विष हमारी आशाओं के आगे बढ़ गया है और उसने बृटिश जन-समूह के स्वस्थ शरीर पर आक्रमण कर दिया है। मुझे ऐसा लगता है कि उनकी उच्चता प्रकृति के प्रति हमारी प्रार्थना दिन प्रति दिन कम प्रत्युत्तर पायेगी। मैं केवल यही आशा करता हूँ कि हमारे देशवासी इससे हतोत्साह नहीं होंगे और अपने देश की सेवा में अदम्य उत्साह और निश्चय की भावना के साथ अपनी सारी शक्ति लगा देंगे।

बाद की घटनाओं ने निश्चित रूप से यह सिद्ध कर दिया है कि हमारा संरक्षण और विकास केवल अपने ही हाथों से हो सकता है; एक राष्ट्र की महत्ता का आधार, गर्हणीय तुच्छता से भरी विमनस्क रियायतों पर नहीं हो सकता।

जिनके हित उनको अवरुद्ध रखने में ही निहित हैं उनकी कृपादृष्टि द्वारा विकास के लिये सरल मार्ग खोज निकालना दुर्बल चरित्र का चिन्ह है—विकास का एक मात्र मार्ग त्याग और तपस्या का कठिन मार्ग है।

सभी बड़े वरदान अन्तर्निहित अमर ज्योति की शक्ति से आते हैं। संकट और हानि के उल्लंघन से वह ज्योति स्वयं प्रमाणित होती है।

लन्दन,
१ अगस्त, १९२०

नगर के हलचल भरे जीवन से बहुत दूर इस मकान की सब से ऊपरी मंजिल पर हम रहते हैं। लन्दन की सड़कों का कोलाहली तीव्र स्वर ही मुझ तक पहुँचता है जो केन्सिगटन बाग के उन वृक्ष समूहों की चोटियों की तरह हिलोरें लेता रहता है जिन्हें मैं अपने जंगलों से देखा करता हूँ। बुरे मौसम का बहुत समय से छाया हुआ आवरण हट गया है और प्रातः कालीन सुन्दर प्रकाश बादलों के पीछे से, उस बच्चे की मुस्कान की तरह जिसके पलक अब भी नींद से भरी हैं, मेरा स्वागत कर रहा है। लगभग सात बजे हैं और पिअर्सन तथा हमारे और सभी साथी बन्द द्वारों और बन्द खिड़कियों के भीतर गहरी नींद में हैं।

आज लन्दन में हमारा अन्तिम दिन है और उसे छोड़ते हुए मुझे दुःख नहीं है। मैं चाहता हूँ कि घर लौटने के लिये समुद्र यात्रा का दिन होता किन्तु वह दिन अभी अनिश्चित रूप से दूर है और इससे मेरे हृदय में पीड़ा होती है।

लन्दन,
४ अगस्त, १९२०

कार्यक्रम परिवर्तन से हम अब भी लन्दन में रुके हुए हैं। हम परसों इसे छोड़ने की आशा करते हैं। सभी की इस धारणा से कि हम यहाँ से चले गये हैं और साथ ही तुम्हारे लन्दन के बुरे मौसम द्वारा कष्ट देना बन्द हो जाने से पिछले छः दिन मेरे लिये बड़े विश्रामप्रद हुए हैं। क्या तुम यह जानते हो कि प्रस्थान के अन्तिम क्षण ही हमने नार्वे यात्रा के लिये न जाना निश्चित किया? मुझे निश्चय है, कि इसका कारण तुम मेरी मानसिक अस्थिरता को ही बताओगे।

पुनश्चः मैंने अभी-अभी डा० गेड्डिज के बारे में यह लिखा है:—

जब मैं भारत में डा० पेट्रिक गेड्डिज से परिचित हुआ तो जिस वस्तु ने मुझे विशेषतः आकर्षित किया वह उनकी वैज्ञानिक उपलब्धि नहीं थी किन्तु वह थी उसके विपरीत, विज्ञान से बहुत ऊपर उठे हुए उनके व्यक्तित्व के पूर्णत्व की असाधारण बात। जो कुछ उन्होंने पढ़ा है और जिस पर उन्होंने अधिकार पाया है वह उनके व्यक्ति के साथ जोरों से ओत-प्रोत हो गया है। उनमें वैज्ञानिक

की सुनिश्चितता है और साथ ही उनमें देवदूत की दृष्टि है। उनमें कलाकार की भी शक्ति है जिसके द्वारा भाषा के चिन्हों से वे अपने विचारों को गोचर बना देते हैं। उनके मानव-प्रेम ने उन्हें मानव सत्य देखने की अन्तर्दृष्टि दी है और संसार में केवल यंत्रिक पक्ष ही नहीं वरन् जीवन के अनन्त रहस्य की अनुभूति करने की कल्पना दी है।

पेरिस,
१३ अगस्त १९२०

मैं पेरिस आ गया हूँ, यहाँ ठहरने को नहीं वरन् यह निश्चित करने को कि कहाँ जाऊँ। सूर्य पूरी तरह चमक रहा है और वायुमंडल में उल्लास व्याप्त है। सुधीर रुद्र, हमको स्टेशन पर ही मिल गया था और उसने हमारे लिये सारे प्रबन्ध किये। हमारे अमेरिका प्रस्थान से पूर्व, पिअर्सन कुछ सप्ताहों के लिये अपनी माँ के पास रहने गये हैं। इस कारण मैं आजकल सुधीर के हाथों में हूँ और वह मेरी उचित देखभाल कर रहा है। पेरिस खाली है और जिन व्यक्तियों से मैं मिलना चाहता था उनसे मिलने की कोई संभावना नहीं है। हमारा इंगलैंग का प्रवास व्यर्थ हुआ है। पंजाब में डायरवाद पर तुम्हारी पार्लियामेंठ के विवाद और भारत के प्रति घृणा एवं हृदयहीनता की असुन्दर भावनाओं के चिन्हों ने मुझे हार्दिक व्यथा पहुँचाई है और इसी कारण मैंने एक हलकेपन की भावना के साथ इंगलैंड छोड़ा।

पेरिस के निकट,
२० अगस्त १९२०

हम फ्रांस में—एक सुखद देश में सुखद स्थान में है और ऐसे जन-समुदाय से मिल रहे हैं जो विशेषतः इन्सान हैं।

मैं स्पष्टतः अनुभव करता हूँ कि मनुष्य जीवन का चरम सत्य, विचार जगत में उसका जीवन है जहाँ वह धूल के आकर्षण एवं खिंचाव से मुक्त है और वह अपने आपको आत्मा अनुभव करता है। भारत में हम क्षुद्र स्वार्थों के पिंजड़ों म विश्वास नहीं करते कि हमारे पंख हैं, कारण, हमने अपना आकाश

खो दिया है; हम चें चें करते हैं, फुदकते हैं और अपने विघ्नभरे अवसरों के छोटे से क्षेत्र में एक दूसरे पर चोंच से चोट करते हैं। ऐसी जगह जहाँ हमारा दायित्व छोटा और विभाजित है और जहाँ हमारा सारा जीवन एक सीमित क्षेत्र में फैला है और उसे ही प्रभावित करता है, चरित्र और अन्तःकरण की महानता प्राप्त करना कठिन है।

इतने पर भी अपनी दीवार की दराजों और छेदों के द्वारा अपनी भूखी शाखाओं को धूप और हवा में भेजना चाहिये। और हमारे जीवन की जड़ें मरुस्थली बालू की ऊपरी तह को वेधें, यहाँ तक कि वह जल के उस स्रोत तक पहुँच जावें जो समाप्त होना नहीं जानता। हमारी सबसे कठिन समस्या यह है कि बाह्य परिस्थितियों की निष्प्राण दशा के होते हुए भी हम अपनी आत्मा की मुक्ति कैसे प्राप्त करें; कि हम भाग्य के सतत अपमान की कैसे उपेक्षा करें ताकि माननीय प्रतिष्ठा को बनाये रखने योग्य हों।

शन्तिनिकेतन, भारत की इस तपस्या के लिये है। हम जो वहाँ आये हैं, अपने उद्देश्य की महानता को बहुधा भूल जाते हैं। उसका विशेष कारण वह आवरण और महत्वहीनता है जिससे भारतीय मानवता मिटाई हुई सी प्रतीत होती है। अपने चारों ओर हमारे पास वह उचित प्रकाश और दृष्टिकोण नहीं है कि हम अपनी आत्मा की महानता को अनुभव करने में समर्थ हों; और इसीलिये हम इस प्रकार व्यवहार करते हैं मानो हमारा सदा के लिये क्षुद्र होना निश्चित है।

---

२१ अगस्त १९२०

यहाँ हम फ्रांस के सुन्दरतम प्रदेश में हैं। किन्तु प्रकृति के सौन्दर्य का क्या उपयोग जब हमने अपने ट्रंक, जिनमें पहनने के सारे कपड़े हों, खो दिये हों। अपने चारों ओर के वृक्षों के प्रति मैं पूर्ण सहानुभूतिमय होता यदि मैं भी उनकी भाँति अपने आत्म सम्मान को बनाये रखने के लिये दर्जियों पर निर्भर न होता इस समय, संसार में मेरे लिये सबसे महत्वपूर्ण घटना यह नहीं है कि पोलैंड, आयर्लंड या मैसोपोटमियाँ में क्या हो रहा है परन्तु यह कि हमारी गोष्ठी के सभी

सदस्यों के सारे ट्रंक पेरिस से इस स्थान की यात्रा में माल के डिब्बे से अदृश्य हो गये।

यही कारण है कि यद्यपि समुद्र, उदय और अस्त होते हुए सूर्य को, तारों से चमकते रात्रि के मौन को अपने गीत गाकर सुना रहा है और यद्यपि मेरे चारो ओर जङ्गल प्राचीन ड्रुइद (एक पुरानी पौराणिक पात्र) की भाँति आकाश की ओर अपने हाथ उठाये हुए, शिला पर पंजों के बल खड़ा है और अपने प्रारंभिक जीवन के जादू भरे वचन सुना रहा है, फिर भी हमको शीघ्र ही पेरिस लौटना है ताकि धोबी और दर्जियों के हाथों आदरणीयता में आसीन हो सकें।

ठीक अभी, मुझे तुम्हारा पत्र मिला है और कुछ समय के लिये मैंने अपने आपको आश्रम के वक्ष से चिपटा हुआ अनुभव किया। मैं तुम्हें बता नहीं सकता कि मेरे सामने उससे जो दीर्घ कालीन विछोह है वह मुझे कैसा लगता है; पर साथ ही जब तक मानवता के विस्तृत जग से मेरा सम्बन्ध, प्रेम और सत्य में नहीं बढ़ता, मेरा आश्रम से सम्बन्ध पूरा नहीं होगा।

पेरिस, ७ सितम्बर, १९३०

तुम्हारे पत्र सदा ही मेरे मन के चारों ओर, शान्तिनिकेतन का वायु-मण्डल उसी का रंग-रूप, ध्वनि और हलचल ले आते हैं; और मेरा बच्चों के प्रति स्नेह-पूर्ण मन, देश-विदेश में भ्रमण करने वाले पक्षी की भाँति आश्रम में अपने प्यारे घोंसले की ओर समुद्र पार कर लौटना चाहता है। तुम्हारे पत्र में मेरे लिये महान उपहार हैं और किसी रूप में उनसे उऋण होने की मुझमें शक्ति नहीं है। कारण, अब मेरा मस्तिष्क पश्चिमाभिमुख है और उसे जो कुछ भी देना है, वह स्वाभाविकता उसी ओर होता है। इसी कारण वर्तमान में मेरा तुमसे सीधा विनिमय, गर्मियों में कोपाई* नदी की धारा की भाँति क्षीण हो गया है। किन्तु, मैं जानता हूँ कि यदि मेरे द्वारा पश्चिमी भूमि में जड़ें न जमाई जावें तो शान्ति-निकेतन का पुष्प न खिलेगा न फलेगा। क्रूर अन्याय के अपमान का डंक खाकर हम यूरोप से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेते हैं किन्तु ऐसा करके हम अपना

---

* बङ्गाल की एक छोटी सी नदी।

ही अपमान करते हैं। हमारे अन्दर वह शान होनी चाहिये कि हम न झगड़ा करें न प्रत्युत्तर दें; और क्षुद्रता का बदला स्वयं क्षुद्र होकर न चुकावें। यह तो वह समय है जब हम अपनी भावना, विचार और चरित्र की अपनी सारी पूँजी का कर्त्तव्य की रचनात्मक दिशा में देश की सेवा के लिये समर्पण करें। हम दुःख झेल रहे हैं, शिवम् और अद्वैतम् के विरुद्ध अपने अपराधों के कारण। दंड से झगड़ने में हम अपनी सारी शक्ति व्यय करते हैं और उन भूलों को जो हम कर चुके हैं या कर रहे हैं, ठीक करने के लिये हमारे पास तनिक भी शक्ति नहीं बचती। जब अपने भाग के कर्त्तव्य का हमने पूरा पालन किया है तो हमारा पूरा अधिकार और अवसर होगा कि हम कर्त्तव्य की अवहेलना करने वालों पर अंगुली उठायें। पंजाब, काण्ड को हमें भूल जाना चाहिए। किन्तु, यह कभी न भूलना चाहिए कि जब तक हम अपना घर ठीक नहीं करेंगे, तब तक हम बार-बार ऐसे ही अपमान के योग्य बने रहेंगे।

चाहे समुद्र की लहरों पर ध्यान न हो किन्तु अपने पात्र के छेद को अवश्य स्मरण रखो। अपने देश की राजनीति अत्यन्त तुच्छ है। उसके ऐसे पैर हैं जिनमें से एक सिकुड़ गया है और उसे लकवा मार गया है और इसी कारण असहाय हो दूसरे की प्रतीक्षा करता है कि उसे घसीट कर आगे बढ़ाये। दोनों में कोई सामञ्जस्य नहीं है और हमारी राजनीति अपने फुदकने, लड़खड़ाने आदि में हास्यास्पद और अशोभन है।

क्रोध और विनय जो क्रमशः इस दुःखद संयोग के उपहास्य पंगु सदस्य में उभरने को प्रयत्नशील हैं दोनों ही आत्म-सम्मान विहीना दुर्बलता के अन्तर्गत हैं। जब अपनी राजनैतिक स्थित की अस्वाभाविकता के प्रति नैतिक विरोध में असहयोग स्वतः हो जाता है तब उसमें महत्ता और सौन्दर्य होता है क्योंकि तब वह असहयोग सच्चा है किन्तु जब वह भिक्षा का ही दूसरा रूप हो तो हमको उसे त्याग देना चाहिये।

आपस में बलिदान और आत्म-समर्पण के द्वारा जीवन और मस्तिष्क के पूर्ण सहयोग की स्थापना सबसे पहले आनी चाहिये। तब अपने स्वाभाविक प्रवाह में असहयोग स्वयं आयगा। जब फल पूरी तरह पक जाता है तो अपने सत्य के पूर्णत्व के द्वारा वह अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करता है।

अपना देश अपने बच्चों को पुकार रहा है कि वे अपनी सामाजिक जीवन की उन बाधाओं को दूर करने में सहयोग दें जो शताब्दियों से आत्मानुभूति में हमारे लिये रोड़े अटकाती रही हैं। अपने देश को अपना ही सिद्ध करने के लिये और किसी वस्तु की अपेक्षा प्रेम के बलिदान में सहयोग की अधिक आवश्यकता है और तब दूसरों से यह कहने का हमको नैतिक अधिकार होगा, "अपने कामों में हमको तुम्हारी आवश्यकता नहीं है" और इसके लिये नैतिक उमंग की आवश्यकता है जो महात्मा गाँधी के जीवन में प्रतिबिम्बित है और जिसका आह्वान करने में संसार के सभी मनुष्यों की अपेक्षा अधिक उपयुक्त वे ही हैं।

यह अपने देश का भयंकर दुर्भाग्य है कि शक्ति की ऐसी अमूल्य निधि राजनीति के दुर्बल, संकुचित पात्र में रख दी गई और उसे क्रोध में प्रतिकार की अनन्त लहरों के पार करने की स्वतंत्रता है जब कि हमारा उद्देश्य आत्माग्नि के द्वारा मृत का पुनरुत्थान करना है। वाह्य परिस्थितियों के कारण हमारे जीवन के स्रोत का बाहरी नाश बहुत होता है; किन्तु अपनी आध्यात्मिक निधि को नैतिक सत्य के दृष्टिकोण से सभूल साहसिक क्रीड़ाओं पर नष्ट होते देखकर, हृदय चूर-चूर होता है। नैतिक शक्ति को एक अंधशक्ति बताना एक भयंकर अपराध है।

हमारा हॉलैंड जाने का समय निकट आरहा है। वहाँ पर व्याख्यान देने के लिये मेरे पास बहुत से निमंत्रण है। किन्तु मैं अभी पूरी तरह तैयार नहीं हूँ। आजकल में व्यस्त हूँ। मेरा विषय प्राच्य और पाश्चात्य का मिलन है। मैं आशा करता हूँ कि पेरिस छोड़ने के पहले ही वह समाप्त हो जायगा।

पेरिस,

१२ सितम्बर, १९२०

मेरे पास जर्मनी के निमन्त्रण थे और मैंने जाने का निश्चय कर लिया था किन्तु आजकल एक देश से दूसरे देश की यात्रा इतनी कठिन हो गई है कि मुझे उस विचार को छोड़ना पड़ा। फ्रांस से जर्मनी जाना विशेष बाधाओं से भरा है। हॉलैंड से लौटते समय कम से कम हेमबर्ग देखने का भरसक प्रयत्न करूँगा।

जर्मनी को सहानुभूति की आवश्यकता है और मैं आशा करता हूँ कि मुझे वहाँ जाने और उसको सहानुभूति अर्पण करने का अवसर मिलेगा।

कुछ समय पहले मैं मोटरकार में रहीम्स और फ्रांस के अन्य भग्न स्थानों में ले जाया गया। सारा दृश्य अत्यन्त दुःखी करने वाला था। इसको भूतकाल की वस्तु बनाने में भारी प्रयत्न की आवश्यकता होगी और लम्बा समय लगेगा। जब आध्यात्मिक आदर्श खो जाता है और जब मानवता का नाता पूरी तरह टूट जाता है तब संपूर्णता के सृजनात्मक बंधन से छुटकारा पाये हुये व्यक्तियों को संहार से एक भयंकर आनन्द मिलता है। ऐसी आपत्तियों के समय ही यह पता लगता है कि हमारे समाज में कितने आश्चर्यजनक परिमाण में विनाशिनी शक्ति केवल रोक ही नहीं रखी जाती वरन् उसको सौन्दर्य और उपयोगिता की विभिन्न पोशाकों में प्रदर्शन कराया जाता है। तब हम जानते हैं कि बुराई, भटकते हुए खण्डों, एक पूर्ण के भग्न अवशिष्टों—उल्काओं—की भाँति है जिसको जीवन-आदर्श एक महाग्रह के आकर्षण की आवश्यकता है ताकि सृष्टि की शान्ति में एकाकार हो जावे।

केवल आध्यात्मिक आदर्शों में ही आकर्षण की वह महान् शक्ति होती है जो इन भग्न-खण्डों को उचित स्वरूप में एकाकार कर सकते हैं। दुष्ट शक्तियाँ अक्षरशः विद्रोही होती हैं। उनको भलाई में परिवर्तित करने के लिये, सृजनात्मक नियमों से नियंत्रण और संचालन की आवश्सकता है। हमारा "शिव" उन भयङ्कर छायाओं का अधिपति है जो मृत्यु की छायायें हैं और वह शिवम् कल्याण भी है। सच्ची अच्छाई, बुराई के अस्वीकार करने में नहीं है, वरन् उस पर स्वामीत्व में है। यह वह आश्चर्य है जो कोलाहल के उपद्रव को सौन्दर्य-नर्तन में परिवर्तन करता है। सच्ची शिक्षा आश्चर्य की वह शक्ति है जो सृष्टि का आदर्श है। बाहर से लादे हुए दंड और अनुशासन केवल नकारात्मक है। 'शिव' शिक्षक है उसमें घातकता का संहार करने की—विष को सोख लेने की दैवी शक्ति है।

यदि फ्रांस के हृदय में शिव होता तो वह बुराई को भलाई में परिवर्तित कर देता: वह उसको क्षमा करता और वह क्षमाशीलता उसके अमरत्व को सिद्ध करती; और उस पर जो चोट पहुँचाई गई उससे अपनी सच्ची रक्षा कर सकता।

है तो यह कठिन, किन्तु मुक्ति का मार्ग यही है। केवल सृजनात्मक आदर्श ही संहार के कृत्यों को पूरी तरह पार कर सकता है। यह आध्यात्मिक आदर्श है। यह प्रेम है। यह क्षमाशीलता है। ईश्वर निरन्तर ही उसका उपयोग करता है और इस प्रकार सृष्टि को सदा ही मधुर बनाये रखता है।

मृत्यु के हृदय में जीवन के आनन्द का अनवरत खेल चलता है। क्या इसे हम अपने व्यक्तिगत जीवन में नहीं जानते? क्या हमारा अपना अधिकार इस आश्चर्यजनक संसार में अस्तित्व के लिये है? क्या हम उसे जला देंगे? नष्ट कर देंगे? क्या ईश्वर की सृजनात्मक सृष्टि ने हमको उसके विश्व में स्थान नहीं दिया? जब हम अपने साथियों से व्यवहार करते हुए हम उन पर निर्णय करें, तो हमें यह बात भूल नहीं जानी चाहिये?

पेरिस,

१२ सितम्बर, १९२०

मैं देखता हूँ कि मेरे देश वासियों में असहयोग के प्रति प्रचंड उत्तेजना है। यह भी अपने बङ्गाल के स्वदेशी आन्दोलन की भाँति हो जायगा। ऐसी भावुकता के उफान का, देश सेवा के लिये, सारे भारत में स्वतंत्र संस्थायें चालू करने के लिये उपयोग किया जाता है।

महात्मा गांधी को इसमें सच्चा नेता होने दो उनको निश्चित सत्तामय के लिये पुकार भेजने दो, बलिदान में सत्कार माँगने दो जिसका अन्त प्रेम और सृजन में है। यदि देशवासियों के साथ प्रेम और सेवा में सहयोग देने के लिये वे मुझे आदेश दें तो मैं उनके चरणों में बैठने और उनका आज्ञापालन करने को तैयार हूँ। किंतु अपने पुरुषत्व को, क्रोधाग्नि प्रज्वलित करने और उसे एक घर से दूसरे घर तक फैलाते हुए नष्ट करने में सहमत नहीं हूँ।

यह बात नहीं है कि मातृभूमि पर जो अपमान और अन्याय लादा गया है उससे मैं अपने हृदय में क्रोध अनुभव नहीं करता हूँ। किन्तु मेरा यह क्रोध, प्रेम-अग्नि में परिवर्तित किया जाना चाहिये जिसमे पूजा-दीप जलाया जाय और उसे अपने देश के द्वारा, अपने ईश्वर को समर्पण कर दिया जाय।

यह मानवता का अपमान होगा, यदि नैतिक दोष की इस पवित्र शक्ति को, मैं सारे देश में एक अंध आवेश फैलाने में उपयोग करूँ। यह तो यज्ञकुंड की अग्नि को विस्फोट के लिये उपयोग करने की भाँति होगा।

ऐण्टवर्प,
३ अक्टूबर, १९२०

मैंने हालैण्ड में एक पखवारा बिताया है। अपने उपहारों के नाते यह पखवारा मेरे लिये अत्यन्त उदार हुआ है। एक बात के बारे में तुम निश्चित हो सकते हो कि इस छोटे से देश और शान्तिनिकेतन में हार्दिक सम्बन्ध स्थापित हो गया है और यह हम पर निर्भर है कि हम उसे विस्तृत करें और आध्यात्मिक निधि के विनिमय के लिये उसका उपयोग करें। कुल मिलाकर हमारे इस भ्रमण में यूरोप हमारे निकट आ गया है। मेरी इच्छा केवल यही है कि शान्तिनिकेतन के मेरे सभी मित्र यह अनुभव कर सकें कि यह कितना बड़ा सच है और यह कितनी बड़ी निधि है। पहले कभी की अपेक्षा मैं आज अधिक अच्छी तरह जानता हूँ कि शान्तिनिकेतन संसार का है और हमको इस बड़ी सचाई के उपयुक्त होना है। हम भारतीयों के लिये इस सारी उत्तेजना को भूलना कठिन है जो हमारी चेतनता को दैनिक खिझलाहट पर केन्द्रित रखती है। किन्तु चेतनता से मुक्ति, आध्यात्मिक जीवन का लक्ष्य और साधन दोनों ही हैं। अतः शान्तिनिकेतन को अपने देश की धूल-भरी राजनीति के चक्रवात में पड़ने से रक्षा करने की आवश्यकता है।

मैं इस पत्र को ऐण्टवर्प से लिख रहा हूँ जहाँ मैं गत प्रातः काल आया था; और मैं ब्रूसेल्स जाने को तैयार हो रहा हूँ जहाँ मेरे लिये निमंत्रण है और तब मैं पैरिस जाऊँगा।

लन्दन,
१८ अक्तूबर १९२०

हमारा सत्य का मानस-चित्र, दृष्टिकोण के अनुसार बदलता है। मुझे निश्चय है कि भारत में यह दृष्टिकोण, राजनैतिक अशान्ति के कारण उत्पन्न घने मानसिक वायुमण्डल से संकीर्ण हो गया है। ऐसे राजनीतिज्ञ हैं जो उतावले निर्णय करेंगे

और तुरन्त ही काम कर डालेंगे। उनका काम तात्कालिक सफलता के लिये छोटे से छोटा मार्ग अपनाना है; और भयङ्कर भूलों में होकर राजनैतिक संस्थाओं को अपने घड़घड़ाते हुए टैंकों को लेकर ज़ोरों से जाना है। किन्तु ऐसी आवश्यकतायें हैं जो मानव मात्र को सदा होती हैं और जिनकी तृप्ति साम्राज्यों के उत्थान और पतन से होती हैं। हम सब जानते हैं कि साहित्य में और सम्पादकीय कार्य में महान अन्तर है। सम्पादन कार्य आवश्यक है और बहुत बड़ा जन-समुदाय उसको करने को उत्सुक है। किन्तु वह साहित्य-ज्योति को दबाता है। परिणामत: लन्दन का कुहरा होता है जिससे सूर्य प्रकाश के स्थान पर गैस प्रकाश का उपयोग होता है

शान्तिनिकेतन तो शाश्वतः पुरुष को अभिव्यक्त करने के लिये है—'असतो मा सद्गमय' (असत्य से सत्य की ओर ले चल) यह प्रार्थना जो जैसे-जैसे युग बीतते जायेंगे और स्पष्टतः ध्वनित होती जायगी—उस समय भी जब देशों के भौगोलिक नाम परिवर्तित हो जावेंगे और अपना अर्थ खो देंगे। यदि मैं वर्त्तमान आवेश और सामुदायिक अधिकार पर ध्यान दूँ तो यह तो अपने स्वामी के भरोसे पर किसी ऐसे काम के लिये कल्पना करना होगा जो उसका अपना काम नहीं हैं। मैं जानता हूँ कि लोग, मुझे सौंपी गई इस पूँजी को उधार लेने के लिये कोलाहल करेंगे और उन आवश्यकताओं के लिये जिन्हें वे औरों की अपेक्षा अधिक महत्त्व का समझते हैं, दुरुपयोग करेंगे। किन्तु उसके साथ ही तुमको जानना चाहिये, मुझे अपने प्रति विश्वास के लिये सच्चा होना है। हर परिस्थिति में शान्तिनिकेतन में वह शान्ति-निधि एकत्रित होनी चाहिये जो अनन्त के अन्तर में है। भीख माँगने से और छीना-झपटी से हमको बहुत थोड़ा मिलता है, किन्तु, अपने प्रति सच्चे होने से हम अभिलषित से अधिक पा लेते हैं। मुझे अपने जीवन में सर्वोत्तम पारितोषिक मिला है, अपने अन्दर के सत्य के स्वतः निस्स्वार्थ प्रकटीकरण से न कि किसी परिणाम के लिये उद्योग से; चाहे उसका कितना ही बड़ा नाम क्यों न हो।

प्रकरण : ६ :

इस प्रकरण में दिये पत्रों में वर्णित अमेरिका-यात्रा में, महाकवि का लक्ष्य विश्वभारती के लिये सहानुभूति और सहायता उपलब्ध करना था। १९१३ और १९१६ की उनकी पहली अमेरिका यात्राओं ने उन्हें यह आशा दी थी कि नये संसार का तरुण हृदय यूरोपीय मनुष्यों की अपेक्षा जो अब भी राष्ट्रीय पक्षपातों में और प्रान्तीय सीमाओं में उलझे हुए थे, अधिक निश्चित प्रत्युतर देगा।

चूँकि अमेरिका से लिखे हुए सभी पत्रों की पृष्ठभूमि में विश्वभारती का विचार है, इसलिये इस प्रकरण के परिचय स्वरूप यह अच्छा ही होगा कि उनके उद्देश्य की, उनकी निजी व्याख्या बताई जाय। पश्चिम यात्रा के प्रस्थान के पूर्व इस रूप में उन्होंने उसे भारतीय भ्रमण में प्रकट किया था। इन व्याख्यानों में से उद्धरित अंश मेरे विचार से कवि को सर्वोत्तम रूप में स्पष्ट कर देता है :—

"वह युग आगया है जब सारी कृत्रिम चहारदीवारें टूट कर गिर रही हैं। केवल वही अवशिष्ट रहेंगी जो विश्वव्यापी से, मूलत: अनुकूल हैं; जब कि वह जो विशेष अस्वाभाविक मार्ग से संरक्षण चाहतीं हैं टूट कर गिर जावेंगी। शिशु-पोषक-गृह एकान्त में होना चाहिये; उसका पालना सुरक्षित होना चाहिये। किन्तु शिशु के बड़े होने पर वही एकान्त उसे मन और शरीर से दुर्बल बनाता है।

एक समय था जब चीन, मिस्र, यूनान व रोम में से प्रत्येक को अपेक्षाकृत एकान्त में अपनी सभ्यता का पोषण करना पड़ता था। तथापि, विश्वव्यापी की महानता जो थोड़े-बहुत अंशों में सभी में हैं, व्यक्तित्व की रक्षिणी म्यान में सबल हुई। अब सहयोग और सामंजस्य का युग आगया है। वह बीज जो पहले बाड़ों में उगाये गये थे अब खेतों में लगा दिये जाने चाहिये। संसार व्यापी बाजार की कसौटी में उन्हें पार उतरना चाहिये यदि उनको उच्चतम मूल्य प्राप्त करना है।

अत: हमको, संसार की सभी संस्कृतियों के सामंजस्य के लिये वह महान् क्षेत्र तैयार करना चाहिये जहाँ प्रत्येक परस्पर सीखेगा और सिखायेगा; जहाँ प्रत्येक का इतिहास अवस्थाओं की वृद्धि के साथ पढ़ा जायगा। इस तुलनात्मक अध्ययन द्वारा

जान का समाधान, यह बौद्धिक सहयोग की प्रगति, आने वाले युग की मौलिक बात होगी। किसी एकान्त की कल्पित सुरक्षा में हम अपने पवित्र एकाकीपन को चिपटाये रहें किन्तु हमारे कोने से संसार सबलतर सिद्ध होगा और यह हमारा ही कोना है जो झुकेगा, पीछे हटेगा और अपनी प्राचीरों की ओर दबेगा और यहाँ तक कि अन्त में चारों ओर फट जायगा।

किन्तु इसके पूर्व कि हम भारत में संसार की अन्य संस्कृतियों के साथ तुलना में ठहर सकें और सचमुच उनसे सहयोग कर सकें, हमको अपने ढाँचे का आधार अपनी विभिन्न संस्कृतियों के समन्वय पर बनाना चाहिये। जब ऐसे केन्द्र पर अपना स्थान लेकर हम पश्चिम की ओर बढ़ेंगे तो हमारी दृष्टि कातरता भरी और चौंधियाई हुई नहीं होगी। हमारा मस्तक अपमान से सुरक्षित और ऊँचा होगा। कारण, तब हम सत्य का अपना दृश्य देंगे अपने उपयुक्त स्थल के दृष्टिकोण से और इस तरह कृतज्ञ जगत के सामने एक नयी विचारधारा का दृश्य देंगे।

प्रत्येक महान् देश का, बौद्धिक जीवन के लिये, एक अपना प्राणमय केन्द्र होता है जहाँ एक ऊँचे स्तर की शिक्षा की व्यवस्था होती है जहाँ मनुष्यों के मस्तिष्क स्वाभाविकतः आकर्षित होते हैं—एक उपयुक्त वायु-मण्डल पाने को; अपना मूल्य सिद्ध करने को; देश की संस्कृति में अपना भाग देने को और इस प्रकार देश की किसी एक सार्वजनिक वेदी पर मेधा की यज्ञाग्नि प्रज्वलित करने को, जो सभी दिशाओं में अपनी पवित्र रश्मियों को प्रसारित कर सके।

यूनान में एथेन्स एक ऐसा केन्द्र था, इटली में रोम और आज के फ्रांस में पैरिस। अपनी संस्कृतीय, संस्कृति का काशी केन्द्र रहा है और आज भी है। किन्तु संस्कृत अध्ययन को वर्तमान भारत की सभी संस्कृतियों के तत्वों का समावेश नहीं हो जाता। यही कारण है कि भारत की अन्तरात्मा इस देश में एक महान् केन्द्र स्थापित करने को पुकार रही है, जहाँ उसकी सभी बौद्धिक शक्तियाँ सृजन निमित्त एकत्रित होंगी और उसके ज्ञान और विचार की सारी निधियाँ—प्राच्य और पाश्चात्य के पूर्ण सामंजस्य में एक होंगी। वह अपने मस्तिष्क से परिचित होने के गौरवपूर्ण अवसर की टोह में है और वह बिखरी शक्तियों की गड़बड़ी से एवं उधार माँगी हुई प्राप्ति की निष्क्रियता से मुक्त होकर, अपने संस्कारों को संसार के समक्ष रख कर उसकी प्रगति में सहायता देने को उत्सुक है।

मुझे स्पष्टतः कहना चाहिये कि किसी भी संस्कृति में उसके विदेशी होने के नाते मेरी अश्रद्धा नहीं है। दूसरी ओर मैं विश्वास करता हूँ कि अपनी बौद्धिक प्रकृति की जीवन-शक्ति के लिये ऐसे आघातों की आवश्यकता है। यह माना जाता है कि ईसाई धर्म की भावना का अधिकांश यूरोप की केवल सनातन संस्कृति के ही नहीं वरन यूरोप के स्वभाव के प्रतिकूल है फिर भी यूरोप की स्वाभाविक मानसिक धारा के विरुद्ध निरन्तर बहता हुआ विचार का यह विदेशी आन्दोलन, उसकी सभ्यता को धनी और सुदृढ़ बनाने में उसकी दिशा के प्रतिरोध के ही कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वस्तुतः यूरोपीय भाषायें विदेशी विचार शक्ति के, पूरे प्राच्य रूप और प्राच्य भावना के आघात से जीवन और फलप्रद शक्ति के लिये सब से पहले सजग हुईं। ठीक वही आज भारत में हो रहा है। यूरोपीय संस्कृति हमारे पास आई है केवल अपने ज्ञान ही के साथ नहीं वरन् अपने वेग के साथ। यद्यपि उसको हम पूर्ण रूप से पचा नहीं पाये और उसके परिणाम स्वरूप विकृति बहुत है। फिर भी यह हमारे बौद्धिक जीवन को अपनी आदतों की निष्क्रियता से हमारी मानसिक प्रणाली का विरोध करते हुए जगा रहा है।

जिसका मैं विरोध करता हूँ वह तो यह कृत्रिम व्यवस्था है जिसके द्वारा यह विदेशी शिक्षा हमारे राष्ट्रीय संस्कारों का स्थान ग्रहण करने को प्रवृत्त है और इस प्रकार सत्य के नये संयोग से एक नई विचार-शक्ति के सृजन के महत अवसर को नष्ट करती है अथवा कुण्ठित करती है। यही बात मुझको अपनी संस्कृति के सारे तत्वों को सुदृढ़ करने के लिये विवश करती है—पाश्चात्य संस्कृति के प्रतिरोध के लिये नहीं वरन् वस्तुतः उसे अङ्गीकार करने और अपने में खपा लेने के लिये; उसका उपयोग अपने भोजन की तरह करने को न कि अपने ऊपर भार बनाने को; इस संस्कृति पर आधिपत्य पाने को न कि केवल उसके छोर पर बने रहने को—जिसमें पाठ्य-पुस्तकें कंठस्थ हों और पुस्तक ज्ञान हो किन्तु वह तत्व और उपयोगिता से शून्य हो।"

अपने अमेरिका पर्यटन के समय रवीन्द्रनाथ ठाकुर रुग्ण थे और इसके कारण उनके मन में उदासी बनी रही। उनके अन्तर्राष्ट्रीय बन्धुत्व के काम में, सहयोग-निमित्त प्रार्थना के आरम्भ में तो प्रत्युत्तर उतना स्पष्ट और व्यापक नहीं हुआ जैसा कि उन्होंने अनुमान किया था। अन्ततः उनकी प्रत्यागमन की इच्छा तीव्र हो

उठी। इन महीनों में जो पत्र उन्होंने मुझे लिखे वे प्रायः निराशा से भरे थे। अगले पत्र उन अत्यन्त महत्वपूर्ण पत्रों में से हैं जिनमें शान्तिनिकेत में अन्तर्राष्ट्रीय बन्धुत्व के केन्द्र सम्बन्धी अपने आदर्श की उन्होंने चर्चा की है।

न्यूयॉर्क,
२८ अक्टूबर, १९२०

हमारा जहाज़ बन्दरगाह में पहुँच गया है—किन्तु इतनी देर से कि आज रात उतरना संभव नहीं है। समुद्र तटों के बीच में रोष पूर्ण लहरें और साँय-साँय करती हवाओं का संकट हिलोरें ले रहा है। और अन्त में वह शान्ति और आश्रय आते हैं जब कि संसार विभाजन करने वाली निर्जनता असत्य भासित होती है और विस्मृत हो जाती है। एक युग से दूसरे युग में संतरण करने वाले यात्री अभी इस महासिंधु को पूरी तरह पार नहीं कर पाये। तूफ़ान आते रहे हैं और नमकीले समुद्रों के उफ़ान उनको रात-दिन घेरे रहे हैं, किन्तु सुरक्षाग्रह दूर नहीं है और समय का नया प्रवेश जीवन और ज्योति का स्वागत करते हुए अपरिचित स्थलों की खोज के लिये निमंत्रण देता हुआ प्रस्तुत है। मैं अभी से उस भविष्य के प्राण को अनुभव कर रहा हूँ, और उन सुदूर तटों से आशामय संगीत लाते हुए उन पक्षियों को देख रहा हूँ।

तुमको विदित होना चाहिये कि हमारा शान्तिनिकेतन उस भविष्य की सम्पत्ति है। हम उस तक अभी पहुँचे नहीं हैं। उस सूर्य प्रकाश के शिखर की ओर अपने प्रवाह संचालन के लिये हमको दृढ़तर विश्वास और स्पष्टतर मानस-चित की आवश्यकता है। ऐसी जंजीरें हैं जो अब भी हमारी नाव को भूतकाल के उस रक्षित खोल से चिपटाये रखती हैं। हमे उनको छोड़ देना चाहिये। हमारी निष्ठा किसी सीमित भौगोलिक प्रदेश से नहीं होनी चाहिये। वह तो उस सहविचार की राष्ट्रीयता से होनी चाहिये, जिसमें विभिन्न राष्ट्रों के व्यक्ति जन्म लेते हैं और जो अपने बलिदान के उपहार को मानवता के महत मन्दिर की ओर ले जाते हैं।

न्यूयॉर्क,
४ नवम्बर, १९२०

एक बात तुम्हें बताने को मैं बहुत उत्सुक हूँ। शान्तिनिकेतन को राजनैतिक हलचल से दूर रखना। मैं जानता हूँ कि राजनैतिक समस्या भारत में घनतर होती जा रही है और उसके हस्तक्षेप को रोक पाना कठिन है, तथापि हमको कभी विस्मरण नहीं होना चाहिये कि हमारा उद्देश्य राजनैतिक नहीं है। जहाँ मेरी राजनीति है वहाँ मैं शान्तिनिकेतन का नहीं हूँ।

मेरा कहने का अर्थ यह नहीं है कि कि राजनीति में कुछ गलत है वरन यह कि वह हमारे आश्रय के लिये बेमेल है। हमको यह सत्य स्पष्टतः अनुभव कर लेना चाहिये कि शांतिनिकेतन नाम का हमारे लिये कुछ अर्थ है और हमें इस नाम को सार्थक करना होगा। मैं चिन्तित हूँ और सशंकित हूँ कि कहीं चारों ओर की शक्तियाँ हमारे लिये बहुत बलवती न हो जाँय और हम वर्तमान समय के प्रहार के प्रति अपने घुटने झुका दें। क्योंकि समय उद्वेगपूर्ण है, मनुष्यों की मानसिक-धारा लक्ष्य-भ्रष्ट हैं, इसलिये हमको विशेष रूप से अपने आश्रय के द्वारा शान्तम्, शिवम् अद्वैतम् में अपनी श्रद्धा बनाये रखनी चाहिये।

न्यूयार्क,
२५ नवम्बर, १९२०

मेरे एक मित्र जो मेरे उद्देश्य में एक सक्रिय अभिरुचि रखते हैं, क्वेकर हैं और प्रति रविवार प्रातःकाल क्वेकर मीटिंग में जाते हैं। वहीं ध्यान की शान्ति में सत्य के शाश्वत स्वरूप को देख पाता हूँ, जहाँ कि वाह्य सफलताओं का मानसचित्र क्रमशः लघुतर होते हुए अपनी अनन्त लघुता को पहुँच जाता है। मुझसे जिसकी आवश्यकता है, वह है बलिदान। हमारा भुगतान है सफलता के लिये किन्तु हमारा बलिदान है सफल के लिये। यदि बलिदान की भावना अपने गुण में पवित्र है तो उसका पारितोषिक, हर गिनती और परिणाम से अधिक होगा। अपने देश के लिये मेरा उपहार, संसार के प्रति बलिदान का जीवन होने दो।

किन्तु मेरी तुमसे उत्सुक प्रार्थना है कि अपने मस्तिष्क को राजनीति से ऊपर रखना। इस नये युग की समस्या है--इस संसार की आमूल पुनर्निर्माण में सहायता। हमको इस महान् कार्य को अंगीकार कर लेना चाहिये। शान्ति-निकेतन संसार के सभी भागों के कार्यकर्त्ताओं के लिये स्थान बनायेगा। अन्य वस्तुएं प्रतीक्षा कर सकती हैं। हमको स्थान करना है 'मानव के लिये' जो इस युग का अतिथि है और 'राष्ट्र' को उसके मार्ग को अवरुद्ध नहीं करने देना। मुझे भय है कि कहीं हमारी पीड़ा और हमारे अपमान की पुकार 'उसके' आगमन की सूचना को कहीं हमसे छिपा न दे। उसके लिये हम अपनी शिकायतों को दूर हटायेंगे, और कहेंगे: "चाहे हमको कुछ भी क्यों न हो उसका उद्देश्य विजयी हो; कारण, भविष्य उसी का है।"

न्यूयार्क,
३० नवम्बर, १९२०

मुझे प्रायः अपनी गीताञ्जलि की उस कविता की याद आती है जिसमें वह स्त्री बताती है कि किस तरह, जब वह ईश्वरीय पुष्प-वाटिका में एक पंखड़ी खोज रही थी, उसे एक ईश्वरी कृपाण मिली। अपने जीवन भर में एक ऐसी हरी पंखड़ी खोजता रहा हूँ और मेरी प्रतिक्षा में जो उपहार है, उसे देखकर मैं हैरान हूँ। यह उपहार मेरी छाँट नहीं है किन्तु मेरे ईश्वर ने ही यह मेरे लिये छाँटा है और मैं अपने आप से कहता हूँ कि ईश्वर के दायित्वमय उपहार के लिये हम अपनी योग्यता उसको अंगीकार करने से प्रकट करते हैं, न कि सफलता से अथवा अन्य किसी वस्तु से।

भूत काल 'मनुष्य' के लिये रहा है, भविष्य 'मानव के लिये' है। यह मनुष्य आज भी इस संसार के आधिपत्य के लिये झगड़ रहे हैं। कलह और कोलाहल और कुछ नहीं सुनने देता। दलित पृथ्वी से उठी हुई धूल ने सारे वायुमण्डल को आवृत्त कर रखा है। इस संघर्ष के ठीक बीच खड़े होकर हमको एक उस जगदीश्वर के लिये आसन बनाना है जो सभी मानव-जातियों को प्रकट हुआ है। जन-समुदाय हमारा उपहास कर सकता है, हमको धकेल कर बाहर कर सकता है पर यह तथ्य बना रहेगा और अदृश्य रूप से यह सत्य बन जायगा

कि हमने विश्वास किया है। मैं जन्मतः कवि हूँ और ऐसे बहुधन्धी आदमियों द्वारा, जिन पर विचारों के लिये अवकाश नहीं है, अपने मार्ग में किसी तरह की ठेस लगते देखना कठिन है। मैं पहलवान नहीं हूँ न मैं अखाड़े से सम्बन्धित हूँ। उत्सुक जन-समुदाय की घूरती हुई आँखें मेरी आत्मा को झुलसा देती हैं, फिर भी और सभी व्यक्तियों में से मैं, पश्चिमीय जनता के ठीक बीच होकर अपना मार्ग बनाने को पुकारा जाता हूँ, एक ऐसे आदेश के लिये, जिसके लिये मुझे कभी शिक्षा नहीं दी गई। सत्य, नरसल से अपने निजी वाण बनाता है—ऐसे जो हलके हैं और कोमल हैं।

न्यूयार्क,
१३ दिसम्बर, १९२०

आश्रम में हमारा पौष-सप्तमी-उत्सव निकट है। मैं वर्णन नहीं कर सकता कि इस उत्सव में तुम्हारे साथ होने को मेरा हृदय कितना प्यासा है। मैं अपने आपको इस विचार से सान्त्वना देने का प्रयत्न कर रहा हूँ कि कोई बहुत महान् और व्यापक चीज़ मेरे वर्तमान प्रयत्नों का परिमाण होने जा रही है। किन्तु अपने हृदयस्तल में मैं जानता हूँ कि जीवन की सरलता, और सतत प्रयत्न ही वास्तविक आनन्द देते हैं। जब अपने काम में अपने पूर्णत्व के आदर्श को, हम कुछ अंशों में अनुभव कर पाते हैं, तो उसके परिणाम क्या हैं यह नगण्य हो जाता है। हमारा विशालता में विश्वास बहुधा सत्य में श्रद्धा का अभाव प्रकट करता है। पृथ्वी का साम्राज्य अपने परिग्रह-विस्तार की शेखी बघारता है किन्तु स्वर्गिक साम्राज्य आत्मानुभूति की गहनता से सन्तुष्ट होता है। कुछ संस्थायें है जिनका उद्देश्य बहिरंग सफलता है किन्तु शान्तिनिकेतन हमको वह अवसर देने के लिये है कि हम अपने को सत्य में अनुभव करें। यह कभी भी बड़ी धन राशियों से सम्भव नहीं है किन्तु यह प्रेम में अपने जीवनार्पण द्वारा संभव है।

इस देश में मैं विशालता के क़िले की कालकोठरी में रह रहा हूँ। मेरा हृदय क्षुधित है। अहर्निशि मैं शान्तिनिकेतन का स्वप्न देखता हूँ जो सरलता के और निस्सीम स्वतंत्रता के वातावरण में कुसुम सदृश विकसित है। जब मैं

उसे इस प्रदेश से निहारता हूँ तो मुझे विदित होता है कि शान्तिनिकेतन सचमुच कितना महान् है। यहाँ प्रतिदिन मैं अनुभव करता हूँ कि मानव आत्मा के लिये कितना भयंकर दुःस्वप्न है यह कि वह इस पिशाच गणित का भार वहन करे। यह अपने आहतों को निरन्तर खदेड़ता है और फिर भी उन्हें कहीं नहीं ले जाता। यह युद्ध के झंझावात उठाती है जो भारी संघर्ष के बीजों को दूर-दूर तक बो देता है।

प्रारम्भिक पृथ्वी के वे विशालकाय रेंगने वाले जन्तु अपनी प्रतिवर्द्धित दुम पर अभिमान करते थे जो उनकी विनाश से रक्षा नहीं कर सकती थी। मैं लालायित हूँ, यह सब तज देने को, इस अवास्तविकता के नितान्त परित्याग को, और सबसे पहले स्टीमर द्वारा शान्तिनिकेतन प्रत्यागमन को और उसकी अपने जीवन और प्रेम से सेवा करने को। वह जीवन जो उसको मैं समर्पित करता हूँ यदि वह सच्चा है तो उसको जीवित रखेगा। सच्चा ज्ञान वहाँ है जो परिणाम के लिये लोभ को मन्द रखे और जो केवल सत्य के प्रकटीकरण से सम्बन्धित है। इस ज्ञान का आविर्भाव भारत में हुआ है। किन्तु वह उस कोलाहल की बाढ़ में डूब जाने के प्रत्यक्ष संकट में है जिसकी समृद्धिशाली पश्चिम की सफलता के पुजारी अभिवृद्धि कर रहे हैं। दिन प्रतिदिन मेरी प्रार्थना तीव्र होती जाती है—माया की अंधेरी मीनार से दूर हटने को और वृत्त के उस नर्तन से पृथक् होने को—जो अपने पदतल से जीवन के मधुर पुष्पों को कुचल रहा है।

न्यूयॉर्क,
१७ दिसम्बर, १९२०

चन्दा एकत्रित करने के बवंडर में, जिस समय मेरे विचार मृत पत्तियों की भाँति जोरों से घूम रहे थे, मेरे हाथ में एक चित्र आया; वह सुजाता का था जिसमें वह बुद्ध को एक प्याला दूध दे रही है। उसका सन्देश मेरे हृदय में गहरा चला गया। उसने मुझसे कहा "जब तुम तपस्या को पार कर गये हो तो दूध का प्याला तुम्हारे पास अयाचित ही आ जाता है। वह तुमको प्रेम के साथ दिया जाता है और केवल प्रेम ही सत्य के लिये अपनी श्रद्धाँजलि ला सकता है।"

तब, तुरन्त तुम्हारा स्वरूप मेरे सामने आया। तुम्हारे द्वारा मुझे दूध भेजा गया है। धनी पुरुष की चैक बुक से जो कुछ आसकता है उसमें और इसमें आकाश पाताल का अन्तर है। सहानुभूति और साथीपन के अभाव के कारण एकान्त के निर्जन में मैं उस समय क्षुधित था जब तुम मेरे लिये अपना प्रेम प्याला लाये। जीवन द्वारा प्रेषित, यह सच्चा जीवन-पोषक भोजन है। और जैसे कवि मॉरिस कहता है "प्रेम पर्याप्त है।" वह प्रेम की ध्वनि मुझे रुपये के प्रलोभन से दूर बुलाती है—वह ध्वनि जो समुद्र पार से, साल वृक्षों की छायिल कुंजों से, सरल आनन्द के संगीत और हास्य की गूँज लिये, मेरे हृदय नीड़ में आती है।

शैतानी यह है कि आकांक्षा प्रेम में पूरी तरह विश्वास नहीं करती। वह विश्वास करती है शक्ति में। वह सफलता-सुरा के लिये चिरस्थायी जीवन के संगीतमय स्वच्छ जल को तज देती है। इस सफलता के मानसचित्र के प्रति ही दिन प्रति दिन मेरा भय बढ़ता मालूम देता है। उपनिषद् में यह कहा गया है "महानता में आनन्द है,।" आकांक्षा बड़ेपन की ओर संकेत करती है और उसे महानता सम्बोधित करती है और बुरी तरह हमारा मार्ग खो जाता है। जब मैं बुद्ध के चित्र को देखता हूँ तो आंतरिक पूर्णता की महान् शान्ति को पुकारता हूं। मेरे चारों ओर की वस्तुओं की निरर्थकता से ज्यों-ज्यों मेरे मनका विक्षेप होता है, मेरी इच्छा दुखद रूप से तीव्र होती जाती है। प्रति प्रातःकाल मैं अपनी खिड़की के सहारे बैठता हूँ और अपने आप से कहता हूँ, "पश्चिम द्वारा, दैनिक मानव-बलिदान के पूजित इस भद्दी मूर्ति के समक्ष मुझे अपना सिर नहीं झुकाना चाहिये। मुझे शिलाईदा की उस प्रात:काल का स्मरण है जब वह वैष्णवी आई और बोली, "तुम अपने तिमंजिला मकान से उतरकर वृक्षों की छाया में अपनी प्रिये से मिलने कब आ रहे हो?"

ठीक अभी मैं गगनचुम्बी भवनों की सबसे ऊपर की मंजिल में हूँ, जहाँ लम्बे से लम्बे वृक्ष भी अपनी फुसफुसाहट नहीं भेज सकते; किन्तु प्रेम चुपके से यह कहता हुआ आता है, "हरी घास पर सरसराहट करती पत्तियों के नीचे मुझसे मिलने कब आ रहे हो? वहाँ तुम्हें आकाश और धूप की स्वतंत्रता है और जीवन की सरलता का कोमल स्पर्श है।" मैं धन के बारे में कुछ कहना चाहता हूँ किन्तु

वह ऐसा हास्यास्पद मालूम देता है और साथ ही ऐसा दुखद कि मेरे शब्द स्वयं लज्जित हो जाते हैं और रुक जाते हैं।

न्यूयार्क,

११ दिसम्बर, १९२०

जब जीवन ने अपने प्रथम प्रयोग आरंभ किये तब उसे अपने प्राणिवर्ग की महाकायिता का भारी घमंड था। जितना ही अधिक बड़ा शरीर होता उतना ही विशाल कवच उसकी रक्षा के लिये बनाना होता। ये हास्यास्पद जंतु अपना संतुलन बनाये रखने की एक दुम रखते हैं जो उनके अवशिष्ट शरीर से बुरी तरह बेमेल होती। यह इसी तरह चलता रहा, यहाँ तक कि जीवन, अपने लिये भार हो गया। साथ ही सृष्टि के कोशाध्यक्ष के लिये भी भार था। यह अपव्ययपूर्ण था और केवल हानिकारक ही नहीं था वरन् अनुपयुक्त था। सच्ची उपयोगिता व्यवहार्य अंकगणित में सौन्दर्य सिद्धान्त है। इस अनिश्चितता में पहुँचने पर असीम बहुगुनेपन के अपने पागलपन में वह विश्राम की खोज करने लगा।

इस प्रकार की आकांक्षिक शक्तियाँ इस बहुगुनेपन के पागलपन से ग्रस्त हैं। उनका हर क़दम वृद्धि की ओर है—पूर्णत्व की ओर नहीं। किन्तु आकांक्षायें जो केवल उनकी दुम और कवच की सम्मतियों पर निर्भर रहती हैं, अपनी निजी बाधा के लिये दंडित है, यहाँ तक कि उनको रुक जाना होता है।

अपने प्रारंभिक इतिहास, अविवेक युक्त, आसुरी वृत्ति के नग्न तांडव के पश्चात् जीवन को अन्ततः निशस्त्री-करण का विचार करना पड़ा। किन्तु उसने क्या प्रभाव डाला? बड़ापन उत्पन्न करने की आकांक्षा को साहस के साथ तजते हुए—मनुष्य दयनीय रूप से नग्न और क्षुद्र जन्मा। अकस्मात ही उसको विशाल कार्य के उत्तराधिकार से वंचित किया गया, जब कि उसका प्रकटतः उसकी अत्यधिक आवश्यकता थी। किन्तु इस विलक्षण हानि से स्वतन्त्रता और विजय प्राप्त हुई।

तब मन का राज्य आरम्भ हुआ। वह अपने विशालकाय पूर्वज को अपने आधिपत्य में लाया। किन्तु जैसा बहुधा होता है, स्वामी, दास का टुकड़ेखोर हो गया और मन ने भी पदार्थ की विशालता से महानता प्राप्त करने का प्रयत्न किया।

मन की परम्परा ने माँस की परम्परा का अनुगमन किया और इस माँस को प्रधान मन्त्री बना लिया।

हमारा इतिहास आत्मा की परम्परा की प्रतीक्षा कर रहा है। पाशविक पर, मानवीय ने विजय पाई और अब दैवी की बारी है।

अपनी पौराणिक गाथाओं में हमने बहुधा सुना है—इस विषय में कि मनुष्य ने असुर-आधिपत्य से स्वर्ग-रक्षा के लिये सुर-पक्ष लिया। किन्तु अपने इतिहास में हम बहुधा उन मनुष्यों को देखते हैं जिन्होंने असुरों से संधि करली है और सुरों को हराने को प्रयत्नशील हैं। विशाल शक्ति और काया की उसकी तोपें और जहाज़, दैत्यों के तोपखाने से निकलते हैं। भलाई के विरुद्ध बड़ाई की लड़ाई में मनुष्य ने पिछली चीज़ का साथ लिया है और पारितोषिकी सिक्कों की संख्या में गणना की है न कि उसके गुणों में——सीसे में न कि सोने में।

जो पार्थिव निधियों के अधिपति हैं, अपने यंत्रों के दास हो गये हैं। हमारे सौभाग्य से भारतवर्ष में ये निधियाँ, उपलब्धि की इह कालिक संभावना से परे हैं। हम निशस्त्रित हैं और अत: हमारे लिये किसी दूसरी ऊँची शक्ति को छाँटने के अतिरिक्त कोई मत-स्वतन्त्रता नहीं है। जो पाशविक बल की सहायता में विश्वास रखते हैं, उन्होंने उसे बनाये रखने को भारी बलिदान किये हैं। भारत में हम लोगों को मनुष्य की नैतिक शक्ति में विश्वास होने दो और अपना सर्वस्व उस पर निछावर करने को प्रस्तुत होने दो। यह सिद्ध करने को हमे सर्वोत्तम प्रयत्न करना चाहिये कि, मानव-सृष्टि में सब से बड़ी भूल नहीं हुई है। यह कहने का अवसर न आने दो कि संसार मे शान्ति और सुख के लिये बौद्धिक जन्तुओं की अपेक्षा जो अपने कारखाने के दाँत, नाखून और विष भरे डंकों की शेखी बघारते हैं, कायिक जन्तु वरेण्य हैं।

न्यूयार्क,
२० दिसम्बर, १९२०

हर युग में और हर देश में हमको तथ्य दिये जाते हैं कि जिनके द्वारा हम सत्य का विशेष प्रकटीकरण कर सकें। तथ्य, वायु में अणुओं की भाँति है; वे परस्पर लड़ते हैं या एक दूसरे से दूर भागते हैं तो उनमें वास्तविकता और

सौन्दर्य आ जाता है। मनुष्य में वह सृजनात्मक जादू होना चाहिये कि अपने समय के तथ्यों को सृजन के किसी ऐक्य में ले आये। बुद्ध और ईसा में इस सृजनात्मक आदर्श ने उन मनुष्यों के, जो धार्मिक आस्थाओं के अपने रीति-रिवाजों से विभाजित थे, एकीकरण का प्रयत्न किया।

धर्म में व्यवहार-परिपाटी, राजनीति में राष्ट्रीयता की भाँति है; उससे मतवाद के अक्खड़पन, परस्परिक ग़लतफ़हमी और नास्तिकों को दण्ड देने की भावना उत्पन्न होती है। हमारे भारतीय मध्य कालीन सन्त, अपने प्रेम के प्रकाश और सत्य के अन्तर्दर्शन द्वारा, मनुष्य की आध्यात्मिक एकता को अनुभव करने लगे। उनके लिये व्यवहार परिपाटी की असंख्य प्राचीरों का कोई अस्तित्व नहीं था। इसी कारण परस्पर प्रतिरोधी, हिन्दू-मुस्लिम निष्ठाओं ने प्रतिरोधी होते हुए भी उनको भ्रम में नहीं डाला। वरन् उससे सत्य में हमारी श्रद्धा की, एवं अनुभूति में प्रकट कठिनता की, परीक्षा होती है।

वर्तमान युग में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य है कि पूर्व और पश्चिम मिले हैं। जब तक कि यह केवल तथ्य ही रहता है, उससे निरन्तर संघर्ष होंगे, यहाँ तक कि वह मानव-आत्मा पर भी आघात करेगा। निष्ठा वाले सभी मनुष्यों का कर्तव्य है कि इस तथ्य को सत्य बना दें। व्यवहार-कुशल सिर हिलाकर कहेंगे—कि यह संभव नहीं है; कि पूर्व और पश्चिम में एक मौलिक भेद है और उनके सम्बन्ध में केवल भौतिक शक्ति ही निर्णायक होगी।

किन्तु भौतिक शक्ति सृजनात्मक नहीं है। चाहे जिन संस्थाओं और क़ानूनों को वह जन्म दें, वह आध्यात्मिक मानवता को कभी सन्तुष्ट नहीं करेगी। हममें राममोहन राय पहले महापुरुष थे जिनका दृढ़ विश्वास और विस्तृत मानसचित्र अपने हृदय में पूर्व और पश्चिम के आत्मिक ऐक्य को अनभुव करना—था। यद्यपि व्यवहार्यतः मेरे देशवासियों द्वारा यह अस्वीकृत है, तथापि मैं उनका अनुकरण करता हूँ।

मेरी यही इच्छा है कि यूरोप में तुम मेरे साथ होते। तुम तुरन्त जान जाते कि वर्तमान युग का क्या उद्देश्य है; मनुष्य की क्या पुकार है जिसे राजनीतिज्ञ कभी नहीं सुनते? मुग़ल सम्राटों के दरबारों में राजनीतिज्ञ होते थे। उन्होंने अपने पीछे भग्नावशिष्ट के अतिरिक्त और कुछ नहीं छोड़ा। किन्तु कबीर और

नायक ! ईश्वर के प्रेम के द्वारा मनुष्य के ऐक्य के प्रति उन्होंने अपना अमर विश्वास छोड़ा है।

न्यूयार्क,
२१ दिसम्बर, १९२०

मेरे चारों ओर जन-समुदाय का मरुस्थल और स्थायी भीड़ का नीरस कर्मैक्य है। अनियमित, अल्पकालिक जन-समूह की बाढ़ में पुरुष डूबा हुआ है इसमें होकर निकलना मेरे लिये एक अनवरत संघर्ष है—विशेषतः जब मैं अपने अन्दर एक बेबसी का भारी बोझ लिये फिरता हूँ। प्रतिक्षण मैं उसके प्रति सजग हो जाता हूं और मैं क्लान्त हूँ। जब उदासीनता की बाधाओं के विरोध में विचार-पताका ले जानी पड़ती है तो हमारी व्यक्तिगत सत्ता का भार हलका होता है। किन्तु अपनी अयोग्यता के कारण, मैं बहुत असुन्दर रूप से बोझिल हो रहा हूँ।

मुझे स्मरण है, मैं जब छोटा था, एक अन्धा भिखारी एक लड़के के सहारे प्रतिकाल हमारे द्वार पर आता। वह दुखद दृश्य था; उस वृद्ध के अंधेपन ने उस लड़के की स्वतंत्रता को छीन लिया था। लड़का उदास प्रतीत होता था और अपनी मुक्ति के लिए उत्सुक था। हमारी असमर्थता एक बेड़ी है जिसके द्वारा हम दूसरों को अपनी सीमाओं से बाँधते हैं। किन्तु यह आन्तरिक उदासी संभवतः मेरे लिये हितकर होगी। इससे मैं इस नयी खोज की झलक पा गया हूं कि व्यक्ति की असमर्थता का अधिकांश माया है।

इधर मैं बराबर इस आत्म विस्मृति की नींद से अपने आपको उठाने के लिये, अपने को झकझोर रहा हूँ। अपने जीवन के अधिकांश-भाग मेरा मस्तिष्क—स्वप्न क्षेत्र के आन्तरिक मार्ग में पर्यटन का अभ्यस्त बनाया गया है। परिणामतः वह बाह्य जगत की भूल-भुलैयों में होकर पार जाने की अपनी शक्ति में पूरी तरह विश्वास खो चुका है। सच यह है कि उसको समाज के ऊपरी कोलाहली जीवन के विभिन्न उत्तरदायित्वों का भार वहन करने की कभी भी शिक्षा नहीं दी गई। इसी कारण पश्चिम मेरा संसार नहीं है।

तथापि, पश्चिम से मैंने प्रेमोपहार प्राप्त किया है और मेरा हृदय, उस पश्चिम के, मुझसे सेवा लेने के, अधिकार को स्वीकार करता है। मुझे अपनी मृत्यु से पूर्व ही, उसके प्रति अपने को अर्पण कर देना चाहिये। मैं वर्तमान युग का—संघर्षपूर्ण राजनीति के युग का नहीं हूँ। तथापि मैं जिस युग में जन्मा हूँ उससे मुँह नहीं मोड़ सकता। मैं संघर्ष करता हूँ और कष्ट पाता हूँ। मैं स्वतंत्रता के लिये क्षुधित हूँ पर रोका जाता हूँ। मुझे वर्तमान संसार से जीवन में सहयोग देना चाहिये। यद्यपि यह सच है कि उसकी पुकार में विश्वास नहीं करता किन्तु जब वह अपनी अप्राकृतिक प्यास बुझाने को अपना प्याला मदिरा से भरती है तो मैं उसकी मेज़ पर बैठता हूँ और कोलाहल भरे सुरापान के बीच-निर्झर के कलकल को, जो स्वच्छ जल को महासिंधु की ओर ले जा रहा है, सुनने का प्रयत्न करता हूँ।

न्यूयार्क,
२२ दिसम्बर, १९२०

आज पौष-सप्तमी है। मैं चाहता था कि मेरे लिये संभव होता कि तुम्हारे बीच खड़े होकर, तुम लोगों के स्वर से स्वर मिला कर प्रार्थना करता। यह मेरी हार्दिक तीव्र इच्छा थी कि मैं इस पुण्य उत्सव में सम्मिलित होने से वंचित न होता। पहले कभी की अपेक्षा आज मैं अपनी यह लालसा अधिक अनुभव करता हूँ कि मैं इस सुन्दर दिसम्बर की धूमिल प्रातःकाल में, अपने बच्चों और मित्रों के साथ परमपिता को सिर झुकाता और अपनी सेवायें अर्पण करता। उस समर्पण से हमारे कार्य महान् होते हैं न कि बाह्य साधनों के प्रसार से।

आह! सत्य कितना सरल है और कितना प्रकाश और आनन्द से भरा हुआ। अपने प्रयत्नों की सफलता में सामुदायिक उत्सुकता से विक्षेप न हो और एकमात्र पारितोषिक केवल अन्तर्यामी प्रभु का आशीर्वाद हो, मैं केवल यही आशा करता हूँ कि मैं जो कुछ यहाँ कर रहा हूँ वह 'शान्तम्' की पुकार के प्रत्युत्तर में है और मेरा पौष-सप्तमी का इस होटल के कमरे में एकाकी अभिषेक तुम्हारे उत्सव से लयमय हो जावे। अवास्तविक के प्रलोभन से हमारी वास्तव के प्रति निष्ठा आच्छा-

दित नहीं होनी चाहिये। हमारे पास वह आये जो भला है न कि वह जो इच्छित है। हमको भले के प्रति, अत्यन्त भले के प्रति सिर झुकाना चाहिये।*

मुझे बहुधा यह इच्छा हुई है कि तुम मेरी इस यात्रा में साथ होते। तथापि मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ कि जब मैं दूर था, तुम आश्रम में रह सके। कारण, तुम मुझे प्रेम की चेतना से समझते हो और इस कारण मैं तुम्हारे द्वारा शान्तिनिकेतन में रहता हुआ अनुभव करता हूँ। मैं जानता हूं कि मैं आज तुम्हारे विचार में हूँ और तुम जानते हो कि मेरा हृदय तुम्हारे साथ है। क्या यह बहुत बड़ा सौभाग्य नहीं है कि इस संसार में एक ऐसा स्थान है जहाँ हमारा सर्वोत्तम, प्रेम और सत्य में मिल सकता है? क्या इससे कुछ और बड़ी बात हो सकती है। कृपया मेरे सभी बालक-बालिकाओं को मेरा आशीर्वाद देना और मित्रों को प्रेम-अभिनन्दन।

न्यूयार्क के निकट,

२५ दिसम्बर, १६२०

आज बड़ा दिन है। संयुक्त राष्ट्र के विभिन्न भागों के पैंतालीस अतिथि इस सराय में एकत्रित हैं। यह एक सुन्दर गृह है और पहाड़ी घाटी की एक झील में जाकर विलीन होने वाले झरने का स्पर्श करती हवा के निरन्तर निमन्त्रण के साथ एक वन्य हरित-वसनि, पहाड़ी के बीच बसा है। मधुर वृन्दों के स्वर एवं चिड़ियों के संगीत से अपरसित, पत्रहीन वन के मौन में, शान्ति और धूप से परिपूर्ण, सुषुमामय प्रातःकाल है।

किन्तु मानव-हृदय में बड़े दिन की भावना कहाँ है? स्त्री-पुरुष विशेष व्यञ्जनों से पेट भर रहे हैं और अत्यधिक उच्च स्वर से अट्टहास कर रहे हैं। उनके आह्लाद के हृदय में शाश्वत का किंचित स्पर्श भी नहीं है; आनन्द की कोई जाज्व-ल्यमान शान्ति नहीं, भक्ति की गहराई नहीं। हमारे देश की धार्मिक उत्सवों से कितनी भारी भिन्नता है। इन पश्चिमीय मनुष्यों ने धनोपार्जन किया है किन्तु जीवन के अपने कार्य्य का हनन किया है। यहाँ जीवन उस सरिता की भाँति है जिसने बालू और मिट्टियों का ढेर कर लिया है और जल की उस अनवरत

* यह वाक्य शान्तिनिकेतन में होने वाली प्रार्थना के एक अंश का अनुवाद है।

धारा को रोक दिया है, जो पुरानी पहाड़ी से बर्फीली ऊँचाई पर, शाश्वत स्रोत से बहती है। जबसे यहाँ आया हूं मैंने पहले कभी की अपेक्षा अधिक मितव्ययी जीवन को और सरल निष्ठा के अनन्त मूल्य को उचित महत्व देना सीख लिया है। यह पश्चिमीय व्यक्ति अपनी सम्पत्ति पर विश्वास करते हैं जो बहुगुनित हो सकती हैं पर उपलब्ध कुछ नहीं कर सकती।

उनकी अभिरुचियों के नितान्त अहंकार का कैसे विश्वास दिलाया जाय। उन पर यह समझने को भी समय नहीं है कि वे सुखी नहीं हैं। क्रमशः क्षयकारी कृत्यों में ये अपने अवकाश के समय को नष्ट करते हैं कि उन्हें कहीं यह बोध न हो जाय कि वे अत्यन्त क्लेशयुक्त प्राणी हैं। वे जाली चीजों से आत्मा को धोखा देते हैं और तब इस तथ्य को अपने से छिपाने के लिये, वे कृत्रिमता से उन झूठे सिक्कों का मूल्य बनाये रखते हैं, जिनकी दिशा आत्म-विस्मृति के एक अविरल क्रम की ओर है। मेरा हृदय हिमालयी झील की जंगली बतख की भाँति सहारा के सीमाहीन मरुस्थल में खोया हुआ अनुभव करता है, जहाँ एक घातक चमक से बालू चमकती है किन्तु आत्म-प्रसाद जल-स्रोत के अभाव में मुरझाती है।

न्यूयार्क,

८ जनवरी, १६२१

एक बहुत बड़ी संख्या ऐसे विचारों की है जिनके बारे में हम यह भी नहीं जानते कि वे अगम्य हैं, केवल इसी कारण कि हम उनके नाम से अत्यधिक परिचित हो गये हैं।

ऐसा ही हमारा ईश्वर का विचार है। उसके प्रति संकेत में हमको उसकी अनुभूति की आवश्यकता नहीं होती। यही कारण है कि उसे एक बहुत बड़ी सजग चेतना की आवश्यकता है ताकि शब्दों की निर्मूल्य जड़ता के पीछे वह ईश्वर की वास्तविकता का प्राण-स्पंदन कर सके। क्षुद्र वस्तुएँ निकट परिचय के बाद हमारे लिये अपनी चरमसीमा पर पहुँच जाती हैं। किन्तु सत्य जो महान् है उसे अपने असीमित को और भी विस्तृत रूप में स्पष्ट करना चाहिये विशेषकर जब कि वह हमारे निकट है। दुर्भाग्य से सत्य व्यक्त करने वाले शब्दों में वह जीवन का भरापूरापन नहीं है जो स्वयं सत्य में है। इसी कारण शब्द और उनके साथ ही ध्यान और

अभिरुचि निरन्तर व्यवहार से निष्क्रिय हो जाते हैं और अपने नीचे हमारी श्रद्धा को ढक लेते हैं। और हम इस दुखद तथ्य में बेहोश रहते हैं।

यही कारण है कि वे पुरुष जो प्रकटतः धार्मिक होते हैं बहुधा, वस्तुतः अधिक अधार्मिक होते हैं—उनकी अपेक्षा, जो खुले तौर पर धर्म की अवहेलना करते हैं। धर्म के उपदेशक और शिक्षकों ने यह अपना व्यापार बना लिया है कि हर समय ईश्वर से व्यवहार करें वह प्रतीक्षा करना सहन नहीं कर सकते। और बहुधा वे उसके सम्मुख में नहीं आते। और यह पिछली बात स्वीकार करने का वह साहस भी नहीं कर सकते। अतः उन्हें अपने मस्तिष्क को ईश्वरी जानकारी के अविरल भान के प्रति बाध्य करना पड़ता है। उन्हें, दूसरों की आशाओं को पूरा करने के लिये या जिसे वे कर्त्तव्य समझते हैं उसके लिये, अपने आपको धोखा देना पड़ता है।

तथापि, और सब विचारों की भाँति ईश्वर-चेतनता भी हमको ज्योति के, प्रेरणा के उत्कण्ठामय क्षणों में आती है। यदि हममें उसकी प्रतीक्षा के लिये धैर्य नहीं है तो हम प्रेरणा के मार्ग को बन्द कर देते हैं—अपने चेतन प्रयत्नों के भग्न अवशिष्टों से। जो ईश्वरोपदेश का व्यापार बना लेते हैं वे मत-मतान्तरों की शिक्षा देते हैं। उनमें, इन दोनों में विवेक लुप्त हो जाता है। अतः उनका धर्म इस संसार में शान्ति के स्थान पर संघर्ष लाता है। राष्ट्रीय स्वार्थ-साधान और शेखी के लिये, विज्ञापन में, उन्हें झिझक नहीं होती।

तुम अपने मस्तिष्क में आश्चार्य कर सकते हो कि आखिर इस पत्र में इस विषय पर मैं क्यों चर्चा कर रहा हूं। इसका सम्बन्ध है, मेरे बीच, उस अनन्त संघर्ष से जो कवि और उपदेशक में चल रहा है और जिसमें एक अपने उद्देश्य के लिये प्रेरणा पर निर्भर है और दूसरा चेतन प्रयत्न पर। चेतनता पर बलात्कार का परिणाम जड़ता है। इसी का मुझे और सबकी अपेक्षा अधिक भय है। उपदेशक किन्हीं विशेष विचारों में व्यावसायिक व्यवहारी हैं। उसके ग्राहक दिन के किसी समय भी आते हैं और प्रश्न पूछते हैं। जिन उत्तरों को देने का वह अभ्यस्त हो जाता है वे क्रमशः अपनी सजीवता खो देते हैं। उपदेशक के लिये, अपने शब्दों की जड़ता से अपने विचारों में विश्वास खो देने का संकट है। मेरा विश्वास है कि जितनी मनुष्यों को आशंका है उससे कहीं अधिक इस दुखद अन्त

की संभावना है—विशेषकर उन लोगों के लिये जो भले हैं और इस कारण दूसरों के लाभ के लिये चैक पर हस्ताक्षर करने को उद्यत रहते हैं, बिना यह सोचे हुए कि बैंक में धन एकत्रित होने को समय मिला भी है या नहीं।

इससे मैं इस विचार पर पहुँचता हूँ कि यह अधिक सुरक्षित बात है कि कवि के अतिरिक्त और कुछ न हुआ जाय। कारण, कवि तो अपने सर्वोत्तम क्षणों के प्रति सच्चा होना होता है, न कि दूसरों की आवश्यकताओं के प्रति।

न्यूयार्क,
१४ जनवरी, १९२१

बचपन में भी मेरा मन, पूर्णत्व के वायुमंडल में सभी अनुभवों को खोजने का प्रयत्न करता रहा। दूसरे शब्दों में वह तथ्य एवं सत्य की दिशा में जाता, चाहे मैं उसे स्पष्टतः समझ न पाता। यही कारण था कि मेरा मन उन चीज़ों में लगा रहता जो स्वयं तो साधारण ही थीं।

जब अपने जोराशंको भवन के अन्दरी हिस्सों से, नारियल के पेड़ों और तालाब को दूधबेचों की झोंपड़ियों से घिरे देखता तो मेरे सामने वह एक अक्षय आत्मीयता से भरे प्रतीत होते। वह प्रतिभा जो बाद में तर्क और आत्म-विश्लेषण से मिल गई, मेरे जीवन में अब तक बनी रही है। यह पूर्णता के प्रति क्षुधा और चेतनता है। लगातार यह औरों से मेरे प्रथकत्व का कारण रहा है और साथ ही मेरी प्रेरक भावनाओं की ग़लतफ़हमी का।

मेरे देशवासियों के मन में स्वदेशी और स्वराज्यवाद साधारणतः एक भारी उत्तेजना पैदा करते हैं, कारण, उनमें एक उमंग और उत्साह का चाव मिला हुआ है, जो उनकी सीमाओं की नितान्तता से उत्पन्न है। यह नहीं कहा जा सकता कि इस गर्मी और आन्दोलन से मैं अस्पर्शित हूँ। तथापि अपने कवि के जैसे स्वभाव के साथ मैं इन उद्देश्यों को अन्तिम स्वीकार करने में असमर्थ हूँ। हम पर वे आवश्यकता से अधिक दायित्व जताते हैं। एक विशेष सीमा पर पहुँचने के बाद मैं अपने को उन स्वजनों से पृथक होने को बाध्य अनुभव करता हूँ जिनके साथ मैं काम करता रहा हूँ और और मेरी आत्मा पुकार उठती है : "पूर्ण मनुष्य

का देशभक्त मनुष्य के लिये यहाँ तक कि नैतिक मनुष्य के लिये भी बलिदान नहीं करना चाहिये।"

मेरे लिये मानवता धर्म है, विस्तृत है और बहुरंगी है। इसी कारण मुझे गहरी चोट पहुंचती है, जब मैं देखता हूं कि पश्चिम में कुछ पार्थिव लाभ के लिये मनुष्य का व्यक्तित्व कुचल दिया जाता है और उसको केवल एक यंत्र समझा जाता है।

देशभक्ति के नाम पर हमारे देश में बहुधा मानवता के कुचलने या संकुचित करने की प्रक्रिया का समर्थन किया जाता है। अपनी प्रकृति का ऐसा इरादतन दरिद्रीकरण मुझे एक अपराध मालूम देता है। यह उस जड़ता का पोषण है जो एक प्रकार का पाप है। कारण ईश्वर का उद्देश्य मनुष्य को विकास की पूर्णता में ले जाना है। यह है--अनैक्य के अन्तर्गत ऐक्य की प्राप्ति। पर जब मैं देखता हूं कि अपने किसी उद्देश्य के लिये, अपने समाज पर एक मनोच्छेद, संस्कृति की कृपणता और एक ऐसा साधुवाद जो आध्यात्मिक दारिद्र्य है, लादा जाता है तो मुझे अवर्णनीय दुःख होता है।

इधर जापान पर एक फ्रांसीसी लेखक की पुस्तक पढ़ता रहा हूँ। सौन्दर्य के आदर्श के प्रति सजग-चेतनता जो जापान में अनिवार्य बना दी गई है, उसकी शक्ति का ही स्रोत नहीं, वरन् वह उसके त्याग और बलिदान की साहसी भावना का भी स्रोत है। कारण, सच्चा त्याग, सौन्दर्य और आनन्द की उपजाऊ भूमि पर ही फलता-फूलता है—ऐसी भूमि पर जो हमारी आत्माओं को निश्चित सत्तामय भोजन देती है।

किन्तु भूमि को नकारात्मक ढंग से निर्धन बनाने से जो अशोभनीय त्याग उत्पन्न होता है, उसका अर्थ है—जीवन का परित्याग। मानव प्रकृति का विकास भारत में बहुत समय से हो रहा है। उसको वेग देने के लिये हमको आत्म-परित्याग का पागलपन नहीं बढ़ाना चाहिये। आज हमारे जीवन की सर्वांगीण क्षुधित प्रक्रियाओं के लिये, अधिकाधिक सौन्दर्य-प्रसार एवं पोषण की आवश्यकता है। अन्य देशों के बारे में चाहे जो कुछ सच हो किन्तु भारत में आज जीवन की अधिकाधिक पूर्णता की आवश्यकता है--जीवन-परित्याग की नहीं।

किसी भी रूप में जीवन की निर्बलता के द्वारा, तर्क के दुर्बल होने से, दृष्टि के संकुचित होने से और उससे उत्पन्न अस्वाभाविक धाराओं में मनः शक्ति के बलात उपयोग के कारण रूढ़िवादी कट्टरपन से सड़न पैदा होती है। जीवन का पवित्रीकरण तो स्वयं ही होता रहता है जब कि उसके जीवन-रस को, शाखा प्रशाखाओं में फैलने को निर्बाध मार्ग मिलता रहता है।

न्यूयार्क, २३ जनवरी, १९२१

मैं अभी ग्रीनिच से वापिस आया हूँ। यह स्थान न्यूयार्क का ही उपग्राम है और यहाँ पिछली रात मेरा स्वागत, भाषण, प्रतिभोज एवं विवाद हुआ था। उसके लम्बे कार्यक्रम में, मैं अपने आपको उस फटे गुब्बारे की भाँति जिसमें कोई हवा बाकी नहीं बची, रीता अनुभव करने लगा।

ऐसी परीक्षाओं में, निर्जनता के सुदूर सिरे पर मैं क्या देखता हूँ? पर उससे क्या होता है। हमारे प्रयत्नों के परिणाम धोखा देते हैं—इस तरह प्रकट होकर मानो वह अन्तिम हों। वे सफलता की आशा जगाते हैं और खींच ले चलते हैं। किन्तु वे अन्तिम नहीं होते।

वे तो सड़क के सहारे की सरायें हैं, जहाँ हम अपनी लम्बी यात्रा के लिये घोड़े बदलते हैं। एक आदर्श की बात दूसरी है, उसकी अपनी प्रगति अपने साथ चलती है। हर स्थिति उद्देश्य के प्रति केवल एक पहुँच ही नहीं है परन्तु उसके साथ ही साथ एक लक्ष्य और अर्थ है। वृक्ष अपनी वृद्धि पाते हैं किन्तु इंजीनियरों द्वारा निर्मित रेल के मार्ग में नहीं। हमको, जो सामाजिक सेवा की रेल की पटरियाँ निर्माण करने के स्वप्न देखा करते हैं, कुलियों को नौकर नहीं रखना चाहिये। हमको केवल सजीव विचारों से व्यवहार करना चाहिये और जीवन में विश्वास रखना चाहिये। अन्यथा हमको दंड मिलता है; यह अनिवार्य नहीं कि वह दंड दिवालियापन के रूप में हो—वह सफलता के रूप में भी हो सकता है—जिसके पीछे सांसारिकता का मेफ़िस्टोफेलिस * बैठा रहता है और समृद्धिवान के रथ के द्वारा किसी आदर्शवादी को धूल में घसीटा जाता देख कर वह मन ही मन मुस्कराता रहता है।

---

* मेफ़िस्टोफेलिस; गेटे के 'फ़ॉस्ट' में एक कुटिल, अत्याचारी चरित्र।

जिस चीज़ से शान्तिनिकेतन हमें इतना प्रिय हो गया है वह पूर्णत्व का आदर्श है जिसका स्वाद हम उसके विकास के द्वारा लेते रहे हैं। वह धन द्वारा नहीं वरन हमारे प्रेम और जीवन द्वारा बनाया गया है। उसके स्पथ हमको किसी परिणाम के लिये बल-प्रयोग की आवश्यकता नहीं। उस जीवन में, जो उसके चारों ओर रूप लेता है और उस सेवा में जो हम नित्य अर्पण करते हैं, स्वयं पूर्णता की दिशा में एक गति है। आज मैं अधिकाधिक अनुभव करता हूँ कि हमारे आश्रय की सरलता कितनी सुन्दर और मूल्यवान है। वह अपने आपको भौतिक अभाव और निर्धनता की पृष्ठ-भूमि में और भी अधिक-प्रकाशमय रूप में प्रकट कर सकती है।

न्यूयार्क,
२ फरवरी, १९२१

तीन सप्ताह के क्रम-भंग और साथ ही उत्सुक एवं क्लान्तकर प्रतीक्षा के बाद तुम्हारे पत्रों का ताँता आया है और मैं सम्भवतः तुम्हें बता नहीं सकता कि उन्होंने मुझे पुनः कितना अनुप्राणित किया है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं मरुस्थल में यात्रा कर रहा हूँ और तुम्हारे पत्र उस साप्ताहिक सम्बल की भाँति हैं जो आकाश से वायुयानों द्वारा छोड़ दिया जाता है। वे प्रत्याशित हैं फिर भी उनमें आश्चर्य का अंश निहित है। मैं क्षुधित प्राणी की भाँति उन पर टूट पड़ता हूँ और तुम्हारे अन्य व्यक्तियों के लिये लिखे भागों पर दौड़ पड़ता हूँ।

तुम्हारे पत्र बड़े सरल होते हैं, कारण, तुम उन छोटी-छोटी बातों में अपनी अभिरुचि दिखाते हो जिनकी प्रायः अवहेलना करदी जाती है। संसार तुच्छ छोटी-छोटी चीज़ों से ही सुन्दर बना है। वह वस्तुएं, इस महान जगत के बहुरंगे चित्र का निर्माण करती है। महत्वपूर्ण वस्तुएं धूप की भाँति हैं, वे एक महास्रोत से आती हैं। छोटी-छोटी चीज़ों से हमारा वायुमंडल बना है। वे सूर्य रश्मियों को बिखेरती है और वायु-मन्डल को रंगों में बाँटती है और कोमलता को कोमल रूप से प्रसारित करती हैं।

तुमने अपने स्कूल से मेट्रिकुलेशन क्लास मिटा देने की अनुमति माँगी है। उसे लुप्त होने दो। मेरी उसके प्रति कोई करुणा नहीं है हमारे सनातन साहित्य

में यह कठोर नियम था कि प्रत्येक नाटक सुखान्त हो। हमारी मैट्रिक्युलेशन क्लास सदा ही हमारे आश्रय में नाटक का पाँचवाँ अंक रहा है जो दुखान्त हुआ है। हमको, इसके पूर्व कि सकट बल-संचय कर सके, पर्दा गिरा देने दो।

मैं इसके साथ एक अनुवाद भेज रहा हूँ।

न्यूयार्क,
५ फरवरी, १९२१

पश्चिम में सभ्यता, अनुवीक्षण-यंत्र की भाँति है। वह सामान्य चीजों को भी बहुत बड़ा बना देती है, उसकी इमारतें, व्यापार, मनोरंजन, अतिरंजन हैं। पश्चिमी सभ्यता ऊंची ऐड़ी के जूते चाहती है। जिनकी एड़ियाँ उनसे भी अधिक बड़ी होती हैं।

जब से मैं इस महाद्वीप में आया हूँ। मेरा गणित हास्यास्पद रूप से बढ़ गया है और अब वह उचित सीमाओं में घटाये जाने को तैयार नहीं हैं किन्तु मैं तुमको विश्वास दिला सकता हूँ कि ऐसे बोझ को कल्पना में भी ले चलना क्लान्तकर है।

कल कुछ शान्तिनिकेतन के चित्र मेरे हाथ लगे। मुझे अचानक ऐसा मालूम पड़ा कि मैं ब्रौबडिंगनैग * के दुस्वप्न से जगा दिया गया। मैंने अपने आप से कहा यह हमारा शान्तिनिकेतन है। यह हमारा है क्योंकि यह किसी यंत्र द्वारा तैयार नहीं होता है। सत्य हमारे देश की सुन्दरियों की भाँति सुन्दर है। वह अपने आपको ऊँचा दिखाने को किसी कृत्रिम आधार का बोझा नहीं ढोता। प्रसन्नता, सफलता या बड़प्पन में नहीं है, वह सत्य में है।

इस देश में मुझे यह अनुभव करके कि यहाँ लोग यह नहीं जानते कि वे प्रसन्न नहीं हैं, दुःख होता है। वे अभिमान युक्त हैं उनका अभिमान उस रेतीले मरुस्थल की भाँति है जो अपनी चमक पर गर्व करता है। सहारा मरुस्थल बहुत बड़ा है किन्तु मेरा मन उसकी ओर पीठ फेर लेता है।

* ब्रौबडिंगनैग (Brobdingnag)—स्विफ़्ट के गुलीवर्स ट्रैविल्स के एक प्रदेश का नाम, जहाँ के निवासी अत्यन्त वृहत आकार के होते थे। यहाँ भाव, असाधारण से है।

वर्तमान युग में यातायात की सुविधाओं के साथ इन्निसफ्री * की पहुँच कठिन हो गई है। मध्य-अफ्रीका जिज्ञासु पुरुष के लिये रहस्य खोलता है। उसी तरह उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव भी रहस्य खोलते हैं। किन्तु इन्निसफ्री के मार्ग शाश्वत रहस्य में छिपे हुए हैं।

तथापि मैं "इन्निसफ्री' द्वीप का हूँ; उसका असली नाम है शान्तिनिकेतन। किन्तु जब मैं उसे छोड़ता हूँ और पश्चिमी तटों पर आता हूँ, तो मैं प्रायः भयभीत हो जाता हूँ कि कहीं वापिसी में मार्ग न भूल जाऊँ।

आह ! हमारी साल-कुंज कितनी मधुर है—हमारी शिऊली कुंजों में हेमन्ती पवन से दीनू के छोटे हास्यास्पद कमरे में संगीत से गूंजती हुई पावस संध्या !

* इन्निस फ्री—मुक्त, स्वच्छन्द विचरण का प्रदेश।

प्रकरण : ७ :

१६२० फ़रवरी-मार्च महीनों में, भारत में असहयोग आन्दोलन अपने वेग के शिखर पर था। सरकारी स्कूल और कालेजों का बहिष्कार करने की अपील ने कलकत्ते के विद्यार्थियों के हृदय पर प्रभाव डाला और सहस्रों ने उन्हें त्याग दिया। सारे वायुमंडल में बिजली-सी भरी थी यहाँ तक कि मानों सांस की हवा में भी बलिदान की भावना भरी थी। महाकवि को मेरे पत्र इसी चीज़ से भरे थे और उस क्षण के उत्साह में मैं भी बह गया था। यह समझना आवश्यक है कि इस समय के कवि के पत्र, कुछ अंशों में मुझसे पहुँचने वाले साप्ताहिक समाचारों की प्रतिक्रिया रूप में थे। क्रमशः जैसा उनका स्वास्थ-सुधार, उनका अमेरिका-प्रवास और सुखद होगया और उन्होंने प्रफुल्लित होकर लिखा। वे दक्षिणी रियासतों के पर्यटन से विशेष रूप से प्रसन्न थे। उन प्रदेशों के प्रत्येक श्रेणी के पुरुषों के हृदय में उत्साह की उन्होंने सराहना की। इस संक्षिप्त परिचय के साथ अगले पत्र अपनी कहानी स्वयं बताते हैं और सरलता से समझे जा सकते हैं।

यूरोप की समुद्र-यात्रा में महाकवि ने प्रतिदिन एक पृथक् पत्र लिखा। यही उन्होंने बाद में यूरोप से भारत की यात्रा में किया और शान्तिनिकेतन आने पर मनोरंजन के साथ अपने संकलन से यह पत्र क्रम मुझे दिया। यही बात इस पुस्तक में उद्धरित बहुत से पत्रों के लिये है जो जहाज से लिखे गये थे।

न्यूयार्क,

८ फ़रवरी, १६२१

'प्रवासी' में प्रकाशित एक आश्रमवासी का पत्र मैंने अभी-अभी पढ़ा है और उसने मुझे गहरी चोट पहुँचाई है। यह देश-प्रेम का सबसे भद्दा पक्ष है। क्षुद्र मस्तिष्कों में देश-प्रेम, मानवता के महत्तर आदर्शों से अपने को विलग कर लेता है। यह अपनेपन का बहुत बड़े पैमाने पर बृहतीकरण है जिसमें हमारी सामान्यता, लोभवृत्ति और क्रूरता, ईश्वर को सिंहासन च्युत कर उसके स्थान पर इस हवा से फूले हुए अपनेपन को आरूढ़ कराने के लिये बृहताकार होती है।

इस वर्तमान युग में सारा संसार इस आसुरी पूजा से पीड़ित है और मैं बता नहीं सकता कि इस देश में इस भयंकर घृणास्पद, अपवित्र मतवाद के रीति-रिवाजों से घिरा होने पर मैं कितना दुखी हूँ। सर्वत्र एशिया के विरुद्ध घृणा भरी हुई है जिसका आभास मिथ्या दोषारोपण के आन्दोलन में मिलता है। नीग्रो जीवित जला दिये जाते हैं कभी-कभी केवल इसलिये कि क़ानून से मिले वोट या मत देने के अधिकार का उन्होंने उपयोग किया। जर्मनों की निन्दा की जाती है। रूस की दशा का जान-बूझकर ग़लत चित्रण किया जाता है। सामूहिक मनोवृत्ति की दलदल पर, झूठ की पपड़ी डाल कर वे राजनैतिक सभ्यता की ऊँची मीनारें निर्माण करने में मुख्यतः संलग्न हैं। उनका अस्तित्व घृणा, ईर्ष्या, निन्दा और झूठ की निरन्तर भरमार पर निभर है।

मुझे भय है कि भा त लौटने पर अपने ही आदमियों द्वारा मैं अस्वीकार किया जाऊँगा। मेरी मातृभूमि में मेरी एकान्त कोठरी मेरी प्रतीक्षा कर रही है। अपनी वर्तमान मनोदशा में मेरे देशवासियों का मेरे साथ निबाह कठिन है। कारण, मेरा विश्वास है, कि ईश्वर देश से बड़ा है।

मैं जानता हूँ कि ऐसा आध्यात्मिक विश्वास शायद राजनैतिक सफलता न प्राप्त कर सके। किन्तु मैं अपने आप से, उसी ढंग से जिससे भारत ने सदा कहा है, कहता हूँ : 'तब......................उससे क्या ?', इस देश में जितना अधिक मैं रहता हूँ उतना ही अधिक मैं मुक्ति का अर्थ समझता हूँ।

यह तो भारत के लिये ही है कि वह अपने वक्ष को ज्ञानामृत से भरा रखे जिससे नवजात-युग का पोषण करके उसे शक्तिशाली भविष्य बनादे।

जिन विचारों में राजनीतिज्ञ अब भी चिपटे हैं, वे उस विगत काल के हैं जिसकी अब कोई गति नहीं है। वह तो सर्वनाश की ओर दौड़ना है। पश्चिम को अपने रक्षागृह की सामर्थ में सन्देह होने लगा है किन्तु उसकी आदत, पुराने रक्षागृह को नये के लिये त्यागने से, रोक रही है। किन्तु हम हतभाग्य प्राणी तैयार हो रहे हैं, जल-प्रवाह में कूदने को, और तैरते हुए एक डूबते जलपोत तक जाने को, और उसके किसी कोने में अपना स्थान पाने को और आवश्यकता पड़ने पर उस स्थान के लिये लड़ने को। तथापि मैं जानता हूँ कि विनाशोन्मुख बहे चले जाने वाले महाकाय से हमारी झोंपड़ियाँ अधिक सुरक्षित हैं।

शान्ति के अन्तरतम में रहने की मेरी लालसा है। मैंने अपना कार्य कर लिया है और मैं आशा करता हूँ कि मेरा 'स्वामी' मुझे अवकाश ग्रहण करने की अनुमति देगा ताकि मैं उसके पास बैठ सकूँ, उससे वार्तालाप के लिये नहीं, वरन उसके महत् मौन को सुनने के लिये।

हाउस्टन, टैक्सराज,
२३ फ़रवरी, १९२१

कर्म के [illegible]-चक्र से बंधकर हम एक जन्म से दूसरे जन्म की ओर दौड़ते हैं। उसका एक आत्मा के लिये क्या महत्व होता है, यह मुझे पिछले कुछ दिनों में अनुभव करना पड़ा है। यह मेरा अत्याचारी कर्म है जो मुझे एक होटल से दूसरे होटल तक घसीट रहा है। अपने एक होटल छोड़ दूसरे, दूसरे में जन्म लेने के बीच में मैं प्रायः पुलमैन-कार में सोता हूँ। उस वाहन का नाम ही मृत्यु-दूत का संकेत करता है। मैं सदा उस दिवस का स्वप्न देख रहा हूँ जब मैं निर्वाण प्राप्त करूँगा। होटल जीवन की शृंखलाओं से मुक्त होकर, उत्तरायण में नितान्त शान्ति को पहुँच सकूँगा।

कुछ समय से मैंने तुमको लिखा नहीं है, कारण मेरे व्यक्ति का एक-एक अणु क्लान्त है।

तथापि टैक्साज आने के समय से मैंने अनुभव किया है मानो शिशिर-हिम-दुर्ग की दरार में से मेरे जीवन में अकस्मात वसंत आ गया है। यह तो मुझे हाल ही में पता लगा है कि इस सारे समय में मेरी आत्मा इस अनन्त स्थान के पात्र से उड़ेली धूल के एक घूँट के लिये तृषित थी। आकाश ने मेरा आलिंगन किया है और उसका हार्दिक सुस्पर्श मुझे आनन्द से पुलकित कर देता है।

शिकागो,
२४ फ़रवरी, १९२१

हमने यात्रा के लिये एक हॉलैंड के स्टीमर पर स्थान रिज़र्व करा लिया है और वह न्यूयार्क से १९ मार्च को प्रस्थान करेगा। इस देश मे व्यतीत किये दिने मेरे लिये सुखद नही हुए हैं और मेरे लिये सरल मार्ग यह होता कि मैं घर वापिस लौट जाता।

ऐसा मैंने क्यों नहीं किया ? कोई मूर्ख यह नहीं बता सकता कि वह मूर्ख क्यों बन रहा है। मैंने बहुधा इस सत्य का स्वप्न देखा जब मुझे पथहीन मैदान, पश्चिम के बालू के मैदान में एकान्त में ले जाता था और मैं चमकते ध्रुवतारे के नीचे जंगली बतखों के पास घूमा करता। निश्चय ही वह विवेकपूर्ण जीवन नहीं था। किन्तु, मेरे ऊपर वह मूर्ख की टोपी थी जिसमें अस्तर, स्वप्नों से बना था।

वह मूर्ख जो अकर्मण्यता से संतुष्ट है, वह और चाहे जो हो, चिन्ता मुक्त है; किन्तु वह जो संसार का स्वरूप बदलना चाहता है तनिक भी चैन नहीं पाता। अपनी बतखों में जाने की लालसा होते हुए भी मैं इन औद्योगिक नगरों के चारों ओर पागल की भाँति चक्कर काट रहा हूं, ठीक उसी तरह जैसे वकील के दफ़्तर में दस्तावेज़ों को दक्षिणी वन्य हवाओं के झोंके उड़ाते हों। क्या वह, नहीं जानता कि इन कागज़ के पत्रों में वे फूल सुरक्षित नहीं हैं जो इसके प्रणय-सन्देश की प्रतीक्षा में हैं ? मैं, कवि के अतिरिक्त, और कुछ क्यों होऊं ? क्या मैं संगीत निर्माता नहीं जन्मा ?

शिकागो,

२. फ़रवरी, १९२१,

मैंने बहुधा अपने मन में आश्चर्य किया है कि क्या मेरा मार्ग भलाई का मार्ग है। जब मैं इस संसार में आया था तो मुझे केवल एक रीड (वाद्य-यंत्रों में ध्वनि उत्पन्न करने वाले, एक भाग का नाम) दिया गया था जिसका एक मात्र महत्व संगीत उत्पन्न करने में था। मैंने अपनी पाठशाला छोड़ी, मैंने अपने काम की अवहेलना की किन्तु अपनी रीड मैंने पास रखी और केवल खेल में ही उसे बजाया। बराबर मेरा एक साथी रहा है, जो स्वयं खेल-खेल में संगीत उत्पन्न करता है—पत्तियों में, कलकल कर दौड़ते हुए जल में, तारागणों में, अश्रु-बिन्दुओं में, अट्टहास में—मानव-जीवन प्रवाह के प्रकाश और छाया में हिल्लोरित होते हुए। जब मेरा साथी यह शाश्वत बंसी-बजैया था, इस खेल की आत्मा था—तो मैं संसार के हृदय के निकटतम था। मैं उसकी मातृभाषा जानता था और जो कुछ मैं गाता था वह जल, पवन और जीवन के

नर्तनाध्यक्ष द्वारा ग्रहण किया जाता था। किन्तु मेरे स्वप्न-जगत के बीच अध्यापक स्वरूप आया और मैं इतना पर्याप्त मूर्ख था कि मैंने उसकी सलाह मानी और अपनी रीड उठा कर रख दी; अपना क्रीड़ास्थल छोड़ दिया जहाँ वह निस्सीम बालक केवल खेल में ही अपना सनातनत्व व्यतीत कर रहा था। एक क्षण में ही मैं वृद्ध हो गया। मैंने ज्ञान-भार को अपनी पीठ पर लादा और सत्य को द्वार-द्वार पर बेचा।

इस कोलाहल भरी दुनिया में जहाँ हर एक अपने सामान के लिये चीख रहा है मैं अपने से बार-बार पूछता हूँ कि मुझे क्यों यह बोझ लादना पड़ा है और गला फाड़ कर चिल्लाना पड़ा है। एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप तक प्रचार करना--क्या यही कवि के जीवन का चरमबिन्दु होगा ? यह मुझे एक दुःस्वप्न प्रतीत होता है जिसमें बीच-बीच में रात में उठ बैठता हूँ और बिस्तर के चारों तरफ टटोलता हूँ और भयभीत हो अपने आप से प्रश्न करता हूँ, "मेरा संगीत कहाँ है ?"

वह खोगया है, पर मुझे उसको खोने का कोई अधिकार नहीं था क्योंकि वह मेरे गाढ़े पसीने की कमाई नहीं थी। वह तो एक उपहार था और यदि मैं प्यार करना जानता तो उसके योग्य मैं होता। तुम्हें विदित है कि मैंने कहीं कहा है : "ईश्वर मेरी प्रशंसा करता है जब मैं भलाई करता हूँ; किन्तु जब मैं गाता हूँ ईश्वर मुझसे प्रेम करता है।" प्रशंसा पारितोषिक है; उसे काम करने वाले के काम के साथ नापा जा सकता है; किन्तु प्रेम सभी पारितोषिकों के ऊपर है; वह नापा नहीं जा सकता।

वह कवि जो अपने उद्देश्य के प्रति सच्चा है, प्रेम की फ़सल काटता है; किन्तु वह कवि जो भलाई के मार्ग में भटकता है, केवल प्रशंसा से टाल दिया जाता है। मैंने अपने अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना की—एक महान् कृति। किन्तु इससे मेरा अपना छोटा-सा गाना खो जाता है और इस गाने की कमी भी पूर्ति नहीं हो सकती। मैं कितना इच्छुक हूँ फिर से उस रीड को पाने को, चाहे कार्य-व्यस्त और बुद्धिमान व्यक्ति घृणापूर्वक अवहेलना ही करें कि यह बेचारा कभी भी सफल नहीं हो सकता।

जब मैं निश्चित रूप से यह जानता हूँ कि मैं कभी भी उस मधुर आवरण में नहीं जा सकता जो पुष्पों और गीतों का जन्मस्थान है तो मुझे घर का स्मरण

हो आता है। यह ऐसा संसार है जो निकट भी है और दूर भी; जो सुगम भी है और अत्यन्त कठिन भी; अपने जीवन में हम आनन्द खोते रहते हैं क्योंकि यह इतना सरल है।

शिकागो,
२ मार्च, १९२१

तुम्हारे पिछले पत्र से हमारे कलकत्ते के विद्यार्थियों * के विषय में आश्चर्य-जनक समाचार मिलता है। मैं आशा करता हूँ कि बलिदान की भावना और कष्ट सहने की तत्परता दृढ़तर होगी; क्योंकि इसको प्राप्त कर लेना स्वयं एक लक्ष्य है। यह सच्ची स्वतंत्रता है और इससे महत्तर मूल्य की और कोई वस्तु नहीं है—चाहे वह राष्ट्रीय सम्पत्ति हो या स्वतन्त्रता हो—कि आदर्शों में और साथ ही मनुष्य की नैतिक महानता में निस्वार्थ निष्ठा हो।

पश्चिम का, भौतिक शक्ति और समृद्धि में अचल विश्वास है; अत: क्रोध से दाँत पीसते हुए और बेचैनी से हाथ पैर पटकते हुए, शान्ति और निशस्त्रीकरण की पुकार कितनी ही तीव्र क्यों न होती हो, उसकी भयंकरता तीव्रतर होती जाती हैं। यह एक मछली की भाँति है जो बाढ़ के दबाव से चोट खाये है और हवा में उड़ने का विचार कर रही है। सचमुच विचार तो बहुत सुन्दर है, किन्तु एक मछली के लिये ऐसा सोचना संभव नहीं है। हम भारतवासियों को संसार को दिखाना है, कि वह कौन सा सत्य है, जो निशस्त्रीकरण संभव ही नहीं बनाता, वरन उसको शक्ति में परिणित कर देता है।

यह सत्य है कि पाशविक बल की अपेक्षा नैतिक बल उच्चतर है, केवल उन्हीं से सिद्ध होगा जो निशस्त्र हैं। जीवन ने अपने उच्चतर विकास में कवच के भारी बोझ को और मांस के वृहत परिमाण को फेंक दिया है और अन्त में मनुष्य ने पाशविक जगत पर विजय पाई है। वह दिन निश्चय ही आवेगा जब भावनाओं का कोमल मनुष्य, वायुयान समूह से अविचलित रह कर यह सिद्ध कर देगा कि इस पृथ्वी पर रहने का अधिकार विनम्र को ही है।

---

* कलकत्ते में स्कूलों के बहिष्कार की ओर संकेत है।

यह उचित ही है कि महात्मागांधी—स्वयं शरीर से दुर्बल और भौतिक साधनों से हीन—विनम्र की उस वृहत शक्ति को पुकारें जो आश्रय-हीन और भारत की अपमानित मानवता के हृदय में प्रतीक्षा करती रही है। भारत के भविष्य और भाग्य ने अपना साथी आत्मा की शक्ति को चुना है न कि माँस-पेशियों की शक्ति को। और वह मनुष्य के इतिहास को भौतिक संघर्ष के गदलेस्तर से उच्चतर नैतिक दृष्टिकोण के लिये उठा ले जायगा।

स्वराज्य क्या है? वह माया है; यह उस अंधेरे की भाँति है जो लुप्त हो जायगा और शाश्वत ज्योति में उसकी कोई छाया अवशिष्ट नहीं रहेगी। जो भी हो, पश्चिम से सीखी हुई शब्दावलियों से हम अपने को धोखा दे सकते हैं। स्वराज्य हमारा लक्ष्य नहीं है। हमारा संघर्ष आध्यात्मिक है—वह मानव के निमित्ति है। हमको मनुष्य को मनुष्य कहना है उन राष्ट्रीय अहंकार की संस्थाओं के जालों से जो उसने अपने चारों ओर बुन लिये हैं। तितली को यह विश्वास दिलाना होगा कि अपनी लार के रेशमी खोल की स्वतन्त्रता से नभ-विचरण की स्वतंत्रता अधिक मूल्य की है। यदि हम बली, सशस्त्र और धनी की अवहेलना—संसार को अमर आत्मा की शक्ति प्रदर्शित करते हुए—कर सकते हैं तो माँस-दैत्य का सारा गढ़ शून्य में विलीन हो जायगा। और तब मानव अपना स्वराज्य पा लेगा।

हम क्षुधित, चिथड़ों से ढके, हीन व्यक्ति ही मानव मात्र के लिये स्वतंत्रता लायेंगे। हमारी भाषा में राष्ट्र के लिये कोई शब्द नहीं है और जब हम इस शब्द को दूसरों से लेते हैं तो वह हमारे अनुरूप नहीं होता। कारण, हम नारायण से अपनी संधि करने को हैं। और हमारी सफलता विजय स्वयं होगी—ईश्वरीय संसार के लिये विजय। मैंने पश्चिम को देखा है; मैं उस पाप-भोज के लिये चिन्तित हूँ जिसमें वह प्रतिक्षण स्वाद ले रहा है, अधिकाधिक फूलता जाता है, लाल पड़ता जाता है और भयङ्कर रूप से विवेक शून्य होता जाता है। यह अर्धरात्रि का कृत्रिम प्रकाश, आमोद-प्रमोद हमारे लिये नहीं है। हमारे लिये तो है वह जागृति जो सुप्रभात के गंभीर प्रकाश में है।

शिकागो,
५ मार्च, १९२१

इधर मैं भारतवर्ष से अधिकाधिक समाचार और समाचार-पत्रों की कतरनें पा रहा हूँ जो मेरे मन में दुखद संघर्ष उत्पन्न करती है और जो पूर्वाभास हैं उस कष्ट का जो मेरे लिये भविष्य में संगृहीत है। अपनी सारी शक्ति से मैं अपनी मनोदशा का सुर उस उत्तेजना से मिलाने को, जो इस समय मेरे देश पर छाई हुई है, प्रयत्न कर रहा हूँ। किन्तु मेरे व्यक्तित्व की गहराई में प्रतिरोध की भावना अपना स्थान बनाये हुए हैं, जब कि मेरी बलवती इच्छा उसे दूर करने की है। मैं स्पष्ट उत्तर पाने में असफल हूँ। निरुत्साह की अंधेरी में से एक मुस्कराहट फूट पड़ती है और एक आवाज़ कहती है : "संसार के सिंधु-तट पर बच्चों के साथ तुम्हारा स्थान है, वही तुम्हारी शान्ति है और वहाँ मैं तुम्हारे साथ हूँ।"

यही कारण है कि इधर मैं नये नये छन्द आविष्कार कर उसके साथ खेल रहा हूँ। वह तो बिलकुल नगण्य हैं, जो धूप में नाचते और विलीन होते समय, हँसते हुए, समय के प्रवाह में बहाये ले जाने में सन्तुष्ट हैं। किन्तु जब में खेलता हूँ, सारी सृष्टि का मनोरंजन होता है, कारण, क्या फूल-पत्तियाँ 'मात्राओं' के कभी समाप्त न होने वाले प्रयोग नहीं हैं? क्या मेरा ईश्वर समय का शाश्वत नष्ट करने वाला नहीं है? परिवर्तन के बवंडर में तारे और ग्रहों को फेंकता है; वह युगों की कागजी नाव को जिसमें उसकी धुन भरी है, आकृति की वेगवती धारा में तैरता है। जब मैं उसे खिजाता हूँ और याचना करता हूँ कि वह मुझे अपना एक छोटा-सा अनुगामी बना रहने की अनुमति दे और मेरे छोटे-छोटे खेलों को अपनी क्रीड़ा-नौका के भार की भाँति स्वीकार करे तो वह हंस देता है और मैं उसके पीछे फुदक कर उसकी पोशाक की किनारी पकड़ कर चलता हूँ।

परन्तु भीड़ कहाँ है, जो मुझे पीछे से धकेला जाता है और चारों ओर से दबाया जाता है? मेरे चारों ओर यह कोलाहल क्या है? यदि यह गाना है तो मेरा सितार लययुक्त हो सकता है और मैं संयुक्त गायन में सम्मिलित हो सकता हूँ क्योंकि मैं एक गायन हूँ। किन्तु यदि यह एक होहल्ला है तो मेरा स्वर

बेमेल हो जाता है और मैं उलझनों में खोजता हूं। मैं इस बीच बराबर प्रयत्नशील रहा हूं कि उसमें संगीत पा सकूं और मेरा कान उधर ही लगा रहा है। किन्तु उसकी भारी गूंज की ध्वनि के साथ असहयोग का विचार मुझको नहीं रुचता; वह नकारात्मक स्वरों का संयुक्त संकट है और मैं अपने आप से कहता हूं : "यदि अपने देश-वासियों के इतिहास के इस महान क्षण में तुम उनसे कदम नहीं मिला सकते तो तुम यह कभी न कहो कि तुम सही हो और शेष सब गलत हैं; केवल यह कहो कि तुम सैनिक का काम छोड़ दो और अपने कोने में कवि की भाँति चले जाओ और लोकमत से उपहासित और अपमानित होने को प्रस्तुत रहो।"

र..............ने वर्तमान आन्दोलन के समर्थन में मुझसे बहुधा कहा कि आरम्भ में आदर्श अंगीकार करने की अपेक्षा, अस्वीकार करने की तीव्र इच्छा अधिक बलवती शक्ति होती है। यद्यपि मैं इस तथ्य को जानता हूं किन्तु इसे मैं सत्य नहीं मान सकता। हमको एक बारगी अपने साथी चुन लेने चाहिये; क्योंकि वे हमसे चिपटते हैं—और उस समय भी, जब हम उनसे छुटकारा पाने से प्रसन्न होते हों। यदि हम एक बार नशे से शक्ति लें तो प्रतिक्रिया के क्षणों में हमारी सामान्य शक्ति दिवालिया हो जाती है और हम बार-बार उस पिशाच के पास जाते हैं जो हमको ऐसा बरतन देता है जिसका तला उसने निकाल लिया है।

अनन्त सत्ता ब्रह्म के मत, ब्रह्म-विद्या का लक्ष्य है—मुक्ति। जब कि बौद्ध-धर्म का है निर्वाण—शून्य। यह तर्क किया जा सकता है कि विभिन्न नामों में दोनों के एक ही आदर्श हैं। किन्तु नाम मस्तिष्क के दृष्टिकोण को प्रकट करते हैं और सत्य के किसी विशेष पक्ष पर महत्व देते हैं। मुक्ति हमारा ध्यान निश्चित सत्तामय, सत्य के पक्ष की ओर आकर्षित करती है और निर्वाण नकारात्मक पक्ष की ओर। अपने उपदेशों में ॐ के सत्य के प्रति बुद्ध मौन रहे—वह ॐ जो शाश्वत हाँ है। उसमें उनका अन्तर्निहित तात्पर्य यह था कि अहम को नष्ट करने के नकारात्मक मार्ग से हम संभवतः सत्य तक पहुँच जाते हैं। अतः उन्होंने दुख के तथ्य पर जिसकी निवृत्ति करनी थी महत्व दिया। किन्तु ब्रह्मविद्या ने आनन्द के तथ्य पर महत्व दिया जिसको उपलब्ध करना था। इस दूसरे मत में भी अपनी

पूर्ति के लिये 'अहम उपेक्षा' के अनुशासन की आवश्यकता होती है; किन्तु उसकी दृष्टि के समक्ष ब्रह्म का विचार रहता है केवल लक्ष्य में ही नहीं वरन् अनुभूति की पूरी प्रक्रिया में ही।

इसी कारण जीवन-शिक्षण का विचार वैदिक युग में बौद्ध युग से भिन्न था। पहले में जीवन-आनन्द को स्पष्टतर एवं स्वच्छतर करना था और दूसरे में उसको मिटा देना था। वह बेडौल ढंग का सन्यासवाद जो बौद्ध धर्म से भारत में जन्मा, ब्रह्मचर्य में, जीवन के और सभी स्वरूपों को अपंगु बनाने में स्वाद लेता। ब्राह्मण का जगल का जीवन मनुष्य के सामाजिक जीवन का विरोधी नहीं था वरन् उससे एक स्वर था। वह हमारे वाद्ययंत्र तानपूरे की भाँति है जिसका कर्त्तव्य वह मौलिक संगीत-स्वर उत्पन्न करना है, जो गाने की, कनसुरेपन में बहकने से रक्षा करे। वह आत्म-संगीत में विश्वास करता था और उसकी निजी सरलता उसका हनन करने के लिये नहीं वरन् उसका निर्देश करने के लिये थी।

असहयोग का विचार राजनैतिक संन्यासवाद है। हमारे विद्यार्थी अपने बलिदान की भेंट को किस परिणाम पर ला रहे हैं। पूर्णतर शिक्षा की ओर नहीं—अशिक्षा की ओर। उसके पीछे संहार का भयावना आनन्द है जो अपने सर्वोत्तम स्वरूप में संन्यासवाद है और अपने हीनतम स्वरूप में वह भयंकरता का ताण्डव है, जिसमें मानव-प्रकृति, सामान्य-जीवन की मौलिक वास्तविकता में विश्वास खोकर, निरर्थक संहार में एक निस्वार्थ सुख पाती है, जैसा कि गत महायुद्ध में व अन्य अवसरों पर जो निकट आये, दिखाया गया है। अपने निष्क्रिय नैतिक स्वरूप में 'न' संन्यासवाद है और अपने सक्रिय नैतिक रूप में वह हिंसा है। मरुस्थल भी उतनी ही हिंसा का स्वरूप है जितना तूफ़ान से क्षुब्ध समुद्र; दोनों ही जीवन के विरुद्ध हैं।

मुझे उस दिन का स्मरण है जब बगाल में स्वदेशी-आन्दोलन के समय अपने विचित्रा-भवन की पहली मंजिल में तरुण विद्यार्थियों का झुंड मुझसे मिलने आया। उन्होंने मुझसे कहा कि यदि मैं उन्हें स्कूल और कॉलेज छोड़ने की आज्ञा दूँ तो वे तत्क्षण आज्ञा-पालन करेंगे। मैं ऐसा करने की असहमति में दृढ़ था और अपनी मातृभूमि के प्रति मेरे प्रेम की सचाई में सन्देह करते हुए वे क्रुद्ध होकर वापिस चले गये।

तथापि इस व्यापक उफ़ान के बहुत पहले जब कि अपने कहे जाने वाले मेरे पास पाँच रुपये भी नहीं थे, मैंने एक हज़ार रुपये एक स्वदेशी भंडार खोलने को दिये और उपहास और दिवालियापन का स्वागत किया।

उन विद्यार्थियों को स्कूल छोड़ने का आदेश न देने का कारण यह था कि कोरे खोखलेपन का विद्रोह मुझे कभी नहीं लुभाता, चाहे उसका अवलम्बन अस्थायी ही क्यों न हो। मैं ऐसे अशरीरी भाव से भयभीत हो जाता हूँ जो सजीव वास्तविकता की अवहेलना करे। ये विद्यार्थी मेरे लिये केवल छाया ही नहीं थे। उनका जीवन उनके लिये और सबके लिये एक तथ्य था। मैं एक ऐसे केवल नकारात्मक कार्यक्रम के भारी उत्तरदायित्व को अपने ऊपर नहीं ले सकता था, जो उनके जीवन का उसके आधार से मूलच्छेद कर देता, चाहे वह आधार कितना ही पतला और कमज़ोर क्यों न हो। वे भारी आघात और अन्याय जो उन लड़कों पर हुए, जो बिना किसी समुचित प्रबन्ध के अपनी जीवन-धारा से लुभा कर हटाये गये, उनकी कभी भी क्षतिपूर्ति नहीं हो सकती। हाँ उस अशरीरी भावना के दृष्टिकोण से यह कुछ नहीं है, जो अनन्त मूल्य की अवहेलना कर सकता है, चाहे वह वास्तविकता का लघुतम अंश ही क्यों न हो। मैं सोचता हूँ क्या ही अच्छा होता यदि मैं वह छोटा सा प्राणी जैक होता जिसका एकमात्र उद्देश्य उस अशरीरी भावना के राक्षस को मारना था जो संसार में सर्वत्र एक बनावटी रंगे चेहरे के धोखे में मनुष्यों से बलिदान करा रहा है।

मैं बार-बार कहता हूँ कि मैं एक कवि हूँ; मैं स्वभावतः लड़ाकू नहीं हूँ। अपने वातावरण से एक रूप होने को मैं सर्वस्व निछावर करना चाहूँगा।

मैं अपने मानव बंधुओं से प्रेम करता हूँ और उनके प्रेम को अत्यन्त मूल्यवान समझता हूँ। किन्तु भाग्य ने मुझे एक ऐसे स्थान पर नौका खेने को छाँटा है जहाँ प्रवाह मेरे विरुद्ध है। क्या दुर्भाग्य है कि मैं प्राच्य और पाश्चात्य की संस्कृतियों के सहयोग के लिये महासागर के इस पार उपदेश दूँ, ठीक उसी क्षण में जब उस पार असहयोग के सिद्धान्त का प्रचार किया जा रहा है।

तुम्हें विदित है कि मैं पश्चिम की भौतिक सभ्यता में उसी तरह विश्वास नहीं करता जिस तरह मैं यह नहीं मानता कि मनुष्य में सर्वोच्च सत्य यह भौतिक शरीर है। किन्तु उससे भी कम विश्वास मेरा भौतिक शरीर के नाश में है और

जीवन की भौतिक आवश्यकताओं की अवहेलाना में है। मनुष्य की भौतिक और आध्यात्मिक प्रकृति में सामंजस्य स्थापित करने के लिये जिसकी आवश्यकता है, वह है आधार और ऊर्ध्वभाग में संतुलन को बनाये रखना। मैं पूर्व और पश्चिम के सच्चे मिलन में विश्वास करता हूं। प्रेम, आत्मा का चरम सत्य है। उस सत्य को क्षुब्ध न होने देने के लिये हमें शक्ति भर प्रयत्न करना चाहिये और हर प्रकार के प्रतिरोध के विरुद्ध उसकी पताका को ले चलना चाहिये। असहयोग का विचार सत्य को अनावश्यक चोट पहुँचाता है। यह हमारे चूल्हे की अग्नि नहीं है वरन वह आग है जो हमारे घर और चूल्हे सभी को भस्मसात कर देगी।

न्यूयार्क,
१३ मार्च, १९२१

उन वस्तुओं का जो स्थावर हैं कोई उत्तरदायित्व नहीं है और न उन्हें नियम या विधान की आवश्यकता है। मृत्यु के लिये मक़बरे का पत्थर भी एक निरर्थक अपव्यय है। किन्तु संसार में जो एक गतिशील समूह है और जो एक विचार की ओर प्रगति कर रहा है उसके नियम और विधानों में सामंजस्य का एक सिद्धान्त रहना चाहिये। यह सृष्टि का नियम है।

मनुष्य महान् हुआ जब उसने अपने लिये इस सिद्धान्त को—सहयोग के सिद्धान्त को खोज निकाला। इसने उसे साथ-साथ बढ़ने में और संसार-प्रगति के वेग और सधी चाल का उपयोग करने में सहायता दी। उसने तुरन्त अनुभव किया कि यह साथ-साथ यात्रा, यंत्रवत नहीं थी—किसी सुविधा के लिये बाह्य निमंत्रण नहीं था। यह तो कविता में छन्द की मात्रा की तरह था—विचारों को बेतरतीब होने से रोकने के लिये केवल बांधने का सिद्धान्त ही नहीं वरन उन्हें सुदृढ़ करने के लिये, सृष्टि के ऐक्य में अविभाज्य बनाने के लिये।

अब तक इस सहयोग के विचार ने पृथक्-पृथक् जातियों में ही वृद्धि पाई है, जिसकी सीमाओं के अन्तर्गत शान्ति बनी रही है और अनेक प्रकार की जीवन की सम्पत्ति उत्पन्न की गई है। किन्तु इन सीमाओं के बाहर अभी यह सहयोग का नियम नहीं अपनाया गया। इसी कारण मनुष्य का वृहत् जगत, अनवरत

बेसुरेपन से ढका हुआ है। हम इस बात को अब क्रमशः जान रहे हैं कि हमारी समस्या संसारव्यापी है और पृथ्वी पर केवल एक समाज अपने को दूसरों से प्रथक् कर अपनी मुक्ति नहीं पा सकता। या तो हम सब की साथ-साथ रक्षा होगी या हम सब साथ-साथ नाश को प्राप्त होंगे।

संसार के सभी महापुरुषों द्वारा सदा यह सत्य स्वीकार किया गया है। उनमें स्वयं मनुष्य की अविभाज्य आत्मा की पूर्ण चेतनता थी। उनकी शिक्षा जातीय अपने-तेरे के विरुद्ध थी और इसी कारण हम देखते हैं कि गौतम बुद्ध का भारत, भौगोलिक भारत की सीमाओं को पार कर फैला और ईसा मसीह का धर्म यहूदी धर्म के बंधनों को तोड़ आगे बढ़ा।

आज संसार इतिहास के अत्यन्त महत्वपूर्ण क्षण में क्या भारत अपनी कमियों के ऊपर नहीं उठ सकता और संसार को वह महान आदर्श नहीं दे सकता, जिससे पृथ्वी के विभिन्न समाजों में सहयोग और सामंजस्य की वृद्धि हो? क्षीण विश्वास के पुरुष कहेंगे कि इसके पूर्व कि भारत समस्त संसार के लिये अपना सिर उठाये, उसको शक्तिशाली और धनी होने की आवश्यकता है। किन्तु मैं यह मानने को तैयार नहीं हूँ। मनुष्य की महानता का माप उसके भौतिक साधनों में है, यह एक बहुत बड़ा धोखा है जो वर्तमान जगत पर अपना आवरण डाले हुए है—यह मनन का अपमान है। भौतिक रूप से दुर्बल मनुष्य की ही सामर्थ्य है कि इस धोखे से संसार की रक्षा कर सके; और भारतवर्ष साधन हीन और तिरस्कृत होने पर भी मानवता की रक्षा के लिये समर्थ है।

व्यक्ति में अनियंत्रित अहंकार की स्वतंत्रता, उच्छृंखलता है—न कि वास्तविक स्वतन्त्रता। कारण उसका सत्य तो उसमें है जो उसके अन्दर निहित सर्व व्यापी है। मानव जातियाँ अपने जातीय अहंकार के स्थान पर, मनुष्य को पूर्ण विकास की स्वतंत्रता देकर, अपनी स्वतन्त्रता अकेले भी प्राप्त कर लेती हैं। स्वतन्त्रता का विचार जो वर्तमान सभ्यता में प्रचलित है वह केवल ऊपरी है, भौतिक है। हमारी भारतीय क्रान्ति उस दशा में लगेगी।

प्रेम की धूप में वह स्वतंत्रता है जो अमर जीवन के ज्ञान को पकाती है; किन्तु तीव्र कामना की आग हमारे लिये केवल बेड़ियाँ ही बना सकती है। आध्यात्मिक मनुष्य अपने पूर्णत्व में पहुँचने के निमित्त संघर्ष करता रहा है और

स्वतंत्रता के नाम पर, प्रत्येक सच्चा स्वर, इसी मुक्ति के लिये है। राष्ट्रीय आवश्यकताओं के नाम पर भयंकर भेदभाव की दीवारों को खड़ा करना उसके लिये बाधा उपस्थित करना है। अतः कालान्तर में यह तो उस राष्ट्र के लिये कारागार निर्माण करना है, क्योंकि राष्ट्रों की मुक्ति का एकमात्र मार्ग, अखिल मानव जगत के आदर्श में है।

ईश्वरीय स्वतन्त्रता का अनन्त कृत्य, सृजन है; यह स्वयं एक ध्येय है। स्वतन्त्रता उस समय सच्ची होती है जब वह सत्य का प्रकटीकारण ही होता है मानवीय सत्य के प्रकटीकरण के लिये ही मानवीय स्वतन्त्रता है लेकिन हमने उसे पूरी तरह अनुभव नहीं किया। किन्तु वे व्यक्ति जिनका उसकी महानता में विश्वास है जो उसके अधिपत्य को मानते हैं और जिनके हृदय में बाधाओं को हटाने की स्वतः प्रेरणा है, वे उसके आगमन के लिये मार्ग बना रहे हैं।

भारत ने सदा ही आध्यात्मिक पुरुष के सत्य में अपनी निष्ठा रखी है और उसकी अनुभूति के लिये उसने विगतकाल में असंख्य प्रयोग, बलिदान और तपस्यायें की हैं, जिनमें से कुछ जीव-जन्तुओं में सम्बन्ध रखने वाले और बड़े अनोखे थे। तथापि सच यह है कि उसको प्राप्त करने के प्रयत्न में भारत बराबर लगा रहा। हाँ यह सब उसने किया एक बहुत बड़ा मूल्य देकर—भौतिक सफलता को खोकर। इसी कारण मुझे ऐसा लगता है कि सच्चा भारतवर्ष एक विचार है न कि केवल एक भौगोलिक तथ्य। यूरोप के सुदूर स्थानों में मैं इस विचार के सम्पर्क में आया हूँ और उसमें मेरी निष्ठा बढ़ी है उन पुरुषों के सम्पर्क से जो अन्य देशों के निवासी थे। भारत उस समय विजेता होगा जब यह विचार जय भला करेगा।

—"पुरुषंत, महान्तम, आदित्य वर्णम तमसाः परस्ता'——

वह अनन्त व्यक्तित्व जिसका प्रकाश अन्धकार की बाधाओं में होकर भी प्रस्फुटित होता है। हमारा संग्राम इस अन्धकार के विरुद्ध है, हमारा लक्ष्य, इस मनुष्य के अनन्त व्यक्तित्व के प्रकाश का प्रकटीकरण है। एक व्यक्ति में ही यह प्राप्त नहीं होना, वरन् वह होना चाहिये समस्त मानव-जातियों के एक महान् सामंजस्य में। अहंकार के जिस अन्धकार का विनाश करना होगा- वह राष्ट्र का अहंकार है। भारत का विचार, एक समाज का दूसरे समाज से भेद-भाव की

इस तीव्र चेतनता के विरुद्ध है जो निश्चय ही अनवरत संघर्ष की ओर ले जाता है। अतः मेरी अपनी प्रार्थना है कि भारत संसार के सभी समाजों और जातियों के सहयोग का समर्थन करे।

अस्वीकार करने की भावना का अवलम्बन भेदभाव की चेतनता में है; स्वीकार करने की भावना उसे ऐक्य की चेतनता में पाती है। भारत ने सदा ही यह घोषणा की है कि ऐक्य, सत्य है और भेदभाव माया है। यह ऐक्य शून्य नहीं है। यह ऐक्य शून्य नहीं है; यह वह है जिसमें समस्त का समावेश है और इसी कारण जो नकारात्मक मार्ग से प्राप्त नहीं किया जा सकता।

पश्चिम से अपना हृदय और मस्तिष्क हटा लेने का हमारा वर्तमान संघर्ष, आध्यात्मिक आत्महत्या है। यदि राष्ट्रीय अभिमान की भावना से हम अपनी छतों से यह हल्ला मचायें कि पश्चिम ने मनुष्य के लिये अनन्त मूल्य की कोई भी वस्तु उत्पन्न नहीं की तब प्राच्य मस्तिष्क की देन की मूल्य के सम्बन्ध में हम एक गम्भीर सन्देह पैदा करते हैं। कारण, यह तो पूर्व और पश्चिम में मानव मस्तिष्क ही है जो विभिन्न दृष्टिकोणों से सत्य के विभिन्न पक्षों की ओर बढ़ रहा है। यदि यह सच हो सकता है कि पश्चिम के दृष्टिकोण ने चूक की है और उसे बिलकुल गलत दिशा में ले गया है, तब हम पूर्व के दृष्टिकोण के बारे में भी कभी असंशय नहीं हो सकते। हम सारे झूठे अभिमान से छुटकारा पायें और संसार के किसी कोने में भी दीपक जलता देखकर प्रसन्न हों—यह जानकर, कि इससे अपने घर में सभी जगह प्रकाश करने का कार्यक्रम ही पूरा हो रहा है।

कुछ दिन हुए, अमेरिका के एक प्रमुख कला-आलोचक के घर मुझे निमंत्रित किया गया और वे प्राचीन इटली की कला के बड़े प्रशंसक हैं। मैंने उनसे पूछा कि क्या वे भारतीय चित्रकला के बारे में कुछ जानते हैं तो उन्होंने एकदम कहा कि वे संभवतः उससे घृणा करेंगे। मुझे सन्देह है यदि उन्होंने कुछ चित्र देखे हों और उनसे घृणा की हो। प्रत्युत्तर में, मैं भी पश्चिमी कला के विषय में कुछ वैसी ही बात कह सकता था। पर मुझे यह कहते हुए अभिमान है कि मेरे लिये ऐसा करना संभव नहीं था। कारण, मैं सदा ही पश्चिमी कला को समझने का प्रयत्न करता हूँ, उसको घृणा करने का नहीं।

मानव-कृतियों में जो कुछ भी हम समझते हैं और उसका स्वाद लेते हैं, वह तत्क्षण हमारा हो जाता है चाहे उसका जन्म-स्थान कहीं भी हो। मुझे अपनी मानवता पर अभिमान है कि मैं अपने ही देश की भाँति दूसरे देश के कवियों और कलाकारों को स्वीकार कर सकता हूँ। मनुष्य की महती उपलब्धि और प्रतिभा पर मुझे ऐसा निश्छल हर्ष होता है मानो वह मेरी अपनी ही हो। इसी कारण मुझे इससे गहरी चोट पहुँचती है जब मेरे देश में पश्चिम के प्रति बहिष्कार का स्वर तीव्र हो उठता है और वह भी इस घोषणा के साथ की पश्चिमी शिक्षा हमारे लिये, केवल घातक ही हो सकती है।

यह सच नहीं हो सकता। जिस कारण यह गलती हुई है वह यह है कि एक लम्बे समय से हम अपनी संस्कृति के सम्पर्क में नहीं रहे हैं और इसी कारण पश्चिमी संस्कृति ने हमारे जीवन में समुचित स्थान नहीं पाया। बहुधा उसका दृष्टिकोण गलत होता है और उससे हमारे मनः चक्षुओं को दृष्टि-दोष होता है। जब हमारे पास अपनी बौद्धिक पूंजी होती है तो बाह्य जगत से हमारा विचार-व्यापार स्वाभाविक होता है और पूरी तरह लाभदायी होता है। किन्तु यह कहना कि ऐसा व्यापार मूलतः गलत है, निकृष्टतम ढंग की प्रान्तीयता को बढ़ावा देना है जिससे बौद्धिक अभाव और हीनता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं मिलता।

पश्चिम ने पूर्व को गलत समझा है। यह उन दोनों के बीच असामंजस्य का मूल है। परन्तु क्या इससे स्थिति ठीक हो जायगी यदि बदले में पूर्व भी पश्चिम को गलत समझने लगे? वर्तमान युग पर पश्चिम का दृढ़ अधिपत्य है: यह उसके लिये इसी कारण संभव है कि मनुष्य के हित में उसे कोई महान दैवी कार्य सौंपा गया है। हम पूर्व से उसके पास वह सब कुछ सीखने आये हैं जो वह हमें सिखा सकता है; कारण ऐसा करने से हम इस युग की परिपूर्ण होने की गति को तीव्रतर कर सकते हैं। हम जानते हैं कि पूर्व पर भी कुछ पाठ पढ़ाने को है और उसका अपना उत्तरदायित्व है कि उसका प्रकाश लुप्त न होने दे। एक समय आयेगा जब पश्चिम को यह अनुभव करने का अवकाश मिलेगा कि उसका एक घर पूर्व में है जहाँ उसे भोजन और विश्राम मिलेगा।

न्यूयॉर्क,
१८ मार्च, १९२१

क्या ही अच्छा होता यदि मैं इस दैवी कार्य से छोड़ा जा सकता हूँ। क्योंकि ये दैवी कार्य उस अंधकार की तरह हैं जो हमारी आत्मा को ढक लेता है--वे हमारा ईश्वरीय जगत से सीधा सम्पर्क रोकते हुए प्रतीत होते हैं। तथापि मेरे अन्दर इस सम्पर्क के लिये बहुत बड़ी भूख है। वसंत आ गया है--आकाश मे धूप छलछला रही है। मैं पक्षियों, वृक्षों एवं हरित वसन पृथ्वी से एक रूप होने को लालायित हूँ। पवन मुझे गाने के लिये पुकारता है किन्तु दुर्भाग्यशाली प्राणी होने से मैं व्याख्यान देता हूँ और ऐसा करने से मैं संगीत के उस महत जगत से अपना बहिष्कार करता हूँ, जिसके लिये मैंने जन्म लिया था। भारतीय नीतिकार का आदेश है, समुद्र न पार करने का। किन्तु मैंने ऐसा किया है, अपने को सहज जगत से दूषित होकर हटा लिया है--उससे जो प्रातःकालीन कुन्द कलियों का जन्म स्थान है, जहाँ संन्यासी का कमल-सरोवर मेरे बचपन में ही, मेरी माँ के करस्पर्श की भाँति मेरा स्वागतालिंगन करता था अब जब कभी मैं उनमें वापिस आता हूँ तो मुझे यह भान कराया जाता है कि मैंने अपनी जाति खो दी है और यद्यपि वे मेरा नाम लेकर मुझे पुकारते हैं, मुझसे बोलते हैं, तथापि वे मुझसे दूर रहते हैं।

मैं जानता हूँ कि जब मैं उनके पास जाऊँगा, मेरी अपनी नदी पद्मा भी जिसने इतनी बार मेरे संगीत का प्रत्युत्तर अपने चेहरे में कोमल सहिष्णुता की की मधुर चितवन से दिया है, अपने को मुझसे दूर हटाकर एक अदृश्य आवरण के पीछे चली जायगी। वह मुझसे दुःखी स्वर में कहेगी "तूने समुद्र पार किया है।"

आदम, ईव (पाश्चात्य प्राचीन साहित्य में प्रथम पुरुष और स्त्री) के के बच्चों ने स्वर्ग खोने का खेल बार-बार खेला है। हम अपनी आत्मा को सन्देशों, सिद्धान्तों की पोशाक पहना देते हैं और प्रकृति के नग्न वक्ष में निहित महान जीवन का स्पर्श खो देते हैं। मेरा यह पत्र जिसमें एक निर्वासित आत्मा की पुकार है, आज के भारत में तुमको अत्यंत विचित्र प्रतीत होगा।

हम शान्तिनिकेतन में माधवी कुंजों में अपने विद्यार्थियों को पढ़ाते हैं। क्या यह विद्यार्थियों के लिये अच्छा नहीं है कि उनके पाठ के व्यवस्ततम समय में भी इनके ऊपर की शाखायें भूमिति की विवेचनायें बन कर बरस नहीं पड़तीं? क्या यह संसार के हित में नहीं है कि विशाल सभाओं के प्रस्तावों को कविगण पूरी तरह भूल जायें? क्या यह उचित नहीं है कि ईश्वर की अपनी पलटन जो निरर्थक आदमियों से बनी है उसकी, सार्थक पुरुषों की सैन्य आवश्यकताओं के लिये कभी भरती न की जाय?

जब वसंती स्पर्श वायुमंडल में व्याप्त है, मैं अकस्मात अपने "सन्देह" देने के दुःस्वप्न से उठ पड़ता हूँ और मुझे स्मरण हो आता है कि मेरी गणना तो उस जत्थे में है जिसके सदस्य शाश्वत रूप से निरर्थक हैं। मैं इन घुमक्कड़ों के संयुक्त गान में स्वर मिलाने की शीघ्रता करता हूँ। किन्तु अपने चारों ओर यहाँ कानाफूसी सुनता हूँ: "इस मनुष्य ने समुद्र पार किया है" और मेरा स्वर अवरूद्ध हो जाता है।

हम कल यूरोप छोड़ रहे हैं और मेरा निर्वासन-काल समाप्त होने को है। सम्भवतः मेरे पत्र अब संख्या में बहुत कम होंगे, परन्तु जब मैं तुमसे स्वयं, जुलाई के बादलों की छाया में भेंट करूँगा, मैं इसकी क्षतिपूर्ति कर दूँगा।

पिअर्सन स्वास्थ्य और आनन्द प्राप्त करने में संलग्न है और अपने को उस समय के लिये तैयार करने को प्रयत्नशील हैं जब वह शीत काल में भारत में हमसे मिलेंगे।

एस० एस० रहाइन डैम

केवल यही बात कि हमने अपनी आखें पूर्व की ओर घुमा ली हैं, मेरे हृदय को आनन्द से भर देती हैं। मेरे लिये पूर्व एक कवि का पूर्व है न कि राजनीतिज्ञ या विद्वान् का। यह उदार आकाश और अपार धूप का पूर्व है जहाँ एक बार, एक बालक ने स्वप्नों की बस्ती की बाल-चेतनता के धुँधले प्रकाश में अपने को भटकता पाया था। वह बालक बड़ा हुआ है किन्तु अपने बचपन के बाहर नहीं बढ़ा। मैं इसको और भी दृढ़ता के साथ अनुभव करता हूँ जब कोई राजनैतिक या दूसरी समस्या मुझसे उत्तर पाने को अधिकाधिक आवश्यक हो जाती है।

में अपने आपको उठाता हूँ, मैं शक्ति भर अपनी बुद्धि लगाता हूँ और दैवी वाणी के लिये अपना मुँह खोलता हूँ और समयानुरूप होने का यथासम्भव प्रयत्न करता हूँ, किन्तु अपने अन्तस्तल में मैं अपने को बहुत क्षुद्र अनुभव करता हूँ और आश्चर्य के साथ मुझे यह विदित होता है कि न तो मैं नेता हूँ, न मैं शिक्षक हूँ और एक दैवी संदेशवाहक के पद से तो मैं अधिकाधिक दूरी पर हूँ।

यह बात मुझे पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है कि मैं बढ़ना भूल गया था। यह एक ऐसे भूलेपन से आता है जिसका कोई सुधार नहीं है। मेरा मस्तिष्क उन वस्तुओं से हमेशा दूर भागा है जिससे व्यक्ति का ज्ञान पकता है और वह वृद्ध होता है। मैंने अपने पाठों की उपेक्षा की है और शिक्षा के इस नितान्त आभास से मैं दैनिक, व्यवहार्य प्रश्नों से संबंधित, पत्र-पत्रिकाओं का बहुत बुरा पाठक हूँ। मुझे भय है कि बच्चे के लिये, कवि के लिये भारत का वर्तमान अत्यन्त कठिन है। यह शिकायत करना बेकार है कि वह समझदारी में कम है—कि वह जन्मतः आवश्यक और गंभीर प्रश्नों पर ध्यान देने में असमर्थ है। नहीं, उसे सभाओं में सम्मिलित होना चाहिये, या सम्पादकीय लेख लिखने चाहिये; कपास की खेती करनी चाहिये या कोई ऐसा उत्तरदायित्व ले लेना चाहिये जिसका व्यापक या राष्ट्रीय महत्व हो ताकि वह अपने आपको उपहास्य बना सके।

तथापि मेरा हृदय पीड़ित है और लालायित है, वर्षा ऋतु के प्रथम दिन से उपयुक्त ढंग से मिलने को अथवा अपने मस्तिष्क के अणु-अणु में आम के बौर की गंध भर लेने को। क्या वर्तमान समय में यह स्वतंत्रता होगी? क्या हमारी दक्षिणी समुद्री पवन में अब भी बसंती मादकता है? क्या हमारी सूर्यास्त की घड़ियों ने अपनी मेहिल पगड़ियों से सारे रंग निकाल फेंकने की प्रतिज्ञा करली है?

किन्तु, शिकायत का लाभ ही क्या? इस युग के लिये कवि तो अत्यन्त गये बीते हैं। यदि विकास के सिद्धान्त के द्वारा घृणा के साथ बहुत पहले ही वह छोड़ दिये होते तो बहुत पहले ही वह अपने जीवन में विकसित होकर राज-नीतिज्ञ बन गये होते। पर गलती यह है—कि वह ऐसी दुनियाँ में छोड़े गये जसने बढ़ना बन्द कर दिया है, जहाँ अब भी वे वस्तुएँ महत्व की हैं जिनका

कोई उपयोग नहीं और जिनका बाजार में कोई मूल्य नहीं है। समुद्र पार सक्रियता के लिये पुकार जितनी ही तीव्र होती जाती है उतना ही अधिक मैं अपने अन्दर किसी वस्तु के प्रति चैतन्य होता हूँ, जो कहती है : "मैं किसी लाभ का नहीं हूँ—मुझे अपनी नितान्त निरर्थकता में अकेला छोड़ दो।"

किन्तु मैं जानता हूँ कि जब भारतवर्ष पहुँचूँगा, महाकवि परास्त हो जायगा और मैं बड़ी श्रद्धा से समाचार पत्र पढ़ूँगा—यहाँ तक कि उनका एक-एक पैराग्राफ।

किन्तु इस समय काव्य भी कोई लाभ नहीं उठा सकता। कारण, समुद्र उद्विग्न है, मेरा मस्तिष्क तैर रहा है और उछलते हुए जहाज में अंग्रेजी भाषा पर नियंत्रण करना अत्यन्त कठिन है।

एस० एस० रहाइनडैम

कभी-कभी अपने अन्दर के विभिन्न पुरुषों के आधिपत्य पाने के संघर्ष को देखकर मेरा मनोरंजन होता है। भारत की वर्तमान स्थिति में जब राजनैतिक मामलों में किसी न किसी रूप में भाग लेने की पुकार आना निश्चित है तो मेरे अन्दर का कवि यह सोचकर कि उसके अधिकारों की अवहेलना होने की संभावना है, केवल इसी कारण कि मेरे व्यक्तित्व के संगठन में वह सबसे निरर्थक सदस्य है तो वह घबड़ा जाता है। अपने विरुद्ध होने वाले तर्क की उसे प्रत्यशा है और अपनी कमियों में प्रतिभा दिखाने का विशेष प्रयत्न कर रहा है, यद्यपि इस संबंध में अभी किसी के द्वारा कोई शिकायत नहीं की गई है। उसने साभिमान इस पर ध्यान आकर्षित किया है : मैं अत्यन्त निरर्थकों के महान् भाईचारे का एक सदस्य हूँ। मैं ईश्वर के प्याले का संभालने वाला हूँ। सभी दिव्य विभूतियों की भाँति यह मेरा भी सौभाग्य है कि गलत समझा जाऊँ। अमर की सन्तति को निरर्थकता जताना ही मेरा लक्ष्य है। मुझे सभा-समितियों से कोई मतलब नहीं है और न मुझे विशाल भवनों का शिलान्यास करना है, जो कालान्तर में धूल में मिल जायेंगे। मुझे तो उस छोटी नौका को खेना है जिसमें इस समुद्रतट और स्वर्ग के उस समुद्रतट के बीच यातायात की स्वतन्त्रता है यह हमारे राजाधिराज की डाक की नाव सन्देश वितरण के लिये है, न कि बाजार के लिये माल लाद कर ले जाने को।"

मैं उससे कहता हूं: 'मैं तुमसे पूरी तरह सहमत हूँ; किन्तु मैं साथ ही उसे चेतावनी देता हूँ कि "तुम्हारी डाक की नाव पर तुम्हारे दैवी डाक-विभाग से बिलकुल असम्बन्धित और आवश्यक कामों के लिये अनुशासन किया जा सकता है।" उसका चेहरा पीला पड़ जाता है; उसकी आँखों के आगे अन्धेरा छा जाता है; उसका दुर्बल शरीर, शिशिर-समीर से मोरपङ्खी की भाँति काँप उठता है और वह मुझसे कहता है: "क्या मैं इस योग्य हूँ कि मुझसे ऐसा व्यवहार किया जाय? क्या तुम्हारा मेरे प्रति सारा प्रेम विलीन हो गया जो तुम मुझे सैन्य शासन मे रखने की बात कर सकते हो? क्या तुमने अमृत का सबसे पहला प्याला मेरे हाथों नहीं पिया? क्या संगीत क्षेत्र की नागरिकता का सम्मान मेरे ही प्रयत्नों से तुमको नहीं दिया गया?"

मैं मूक होकर बैठता हूँ, चिन्ता करता हूँ और आह भरता हूँ और समाचार पत्र की कतरनें मेरी मेज पर डाली जाती हैं और जब "व्यावहारिक पुरुष" के चेहरे पर चपल चितवन डाली जाती है; वह "देशभक्त पुरुष" को आँख से संकेत करता है जो बराबर ही गम्भीर मुद्रा में बैठता है। वह कवि का विरोध करना अपना दुखद कर्त्तव्य समझता है और उस कवि को उचित सीमाओं मे कुछ उदारता से बरतने को तैयार है।

जहाँ तक मेरा प्रश्न है, जो कि इस पञ्चायत का सरपंच हूँ मेरी कोमलतम भावनायें इस कवि के लिये हैं, संभवत इस कारण कि वह बिलकुल निरर्थक है और आवश्यकता के समय सबसे पहले उसका ध्यान छूट सकता है। वह "दुर्बल कवि", काव्य 'व्यवहारिक और भले पुरुष' की आँख बचाकर, मेरे पास आता है और चुपके से कहता है, "श्रीमान् आप वह पुरुष नहीं जो आवश्यकताओं के के समय के लिये बनाये गये हैं; वरन् उस समय के लिये जो उनको सब ओर पार कर जाता है।"

वह बदमाश चापलूसी करना भली प्रकार जानता है और प्राय: अपनी बात मनवा लेता है—विशेषकर जब दूसरे अपनी प्रार्थना के परिणाम के बारे में बेहद निश्चिन्त होते हैं; और मैं अपने सिंहासन से कूद पड़ता हूँ और कवि का हाथ पकड़ कर नाचते हुए गाता हूँ: "दोस्त मै तुम्हारा साथ दूँगा, सुरापान करूँगा और साभिमान निरर्थक बनूँगा।" आह मेरा दुर्भाग्य! मैं जानता हूँ कि सभाओं

के अध्यक्ष मुझसे क्यों घृणा करते हैं, पत्र-सम्पादक मुझे क्यों भर्त्सना देते हैं और पुरुष मुझे पुंसत्वहीन कहते हैं। बस मैं बच्चों में अपना आश्रय लेता हूँ जिनमें उन वस्तुओं और मनुष्यों पर, जिनका कोई मूल्य नहीं है प्रसन्न होने की देन है।

एस० एस० रहाइनहैम

मेरी कठिनाई यह है कि जब मेरे वातावरण में अभिमान या क्षोभ की तीव्र भावना किसी सीमित क्षेत्र में अपने अरुण प्रकाश को केन्द्रित करते हैं तो मैं जीवन और संसार के प्रति समुचित दृष्टिकोण खो बैठता हूं और इससे मेरे स्वभाव को गहरी चोट पहुँचती है। यह सच नहीं है कि मेरा अपने देश से कोई विशेष प्रेम नहीं है किन्तु जब वह अपनी सहज दशा में होता है तो वह किसी बाह्य वास्तविकता का प्रतिरोध नहीं करता; वरन् उसके स्थान पर वह मुझे एक दृष्टिबिन्दु देता है और दूसरों के साथ स्वाभाविक सबंध में मुझे सहायता करता है। किन्तु जब वह दृष्टि बिन्दु स्वयं एक दीवार बन जाता है तो मेरे अन्दर कोई वस्तु इस बात पर जोर देती है कि मेरा स्थान कहीं और है।

मैं अभी इस आध्यात्मिक ऊँचाई पर नहीं पहुँचा हूं कि पूरे भरोसे के साथ यह कह सकूँ कि ऐसी दीवार बनाना गलत है अथवा अनावश्यक है; पर अन्दर कोई प्रेरक शक्ति कहती है कि इसमें बहुत कुछ असत्य है, जैसा कि सभी तीव्र कामनाओं में होता है जो संकुचित चेतनता या सत्य के अधिकांश के त्याग से पैदा होती है।

मुझे तुम्हारे आश्चर्य का स्मरण है कि ईसा ने अपनी देशभक्ति का कोई परिचय क्यों नहीं दिया, जो यहूदियों में अत्यन्त व्यापक थी। यह इस कारण था कि मनुष्य का महान् सत्य जिसको उन्होंने अपने ईश्वर प्रेम के द्वारा अनुभव किया, उस घेरे के अन्दर सिकुड़ जाता और कुम्हला जाता। मेरे अन्दर उस देशभक्त और राजनीतिज्ञ का बहुत बड़ा अंश है और इस कारण मैं उससे भयभीत हूँ; और उनके प्रवाह में बह जाने के विरुद्ध मुझमें एक अन्तर्संघर्ष हो रहा है।

परन्तु मैं नहीं चाहता कि मैं गलत समझा जाऊँ। एक ऐसी भी चीज है जिसको हम न्याय की नैतिक कसौटी कहते हैं। जब भारत के प्रति अन्याय होता है तो यह सही ही है कि हम उसके विरोध में खड़े हों; और उस गलती को

ठीक करने का उत्तरदायित्व हमारा ही है—भारतीय के नाते नहीं, मानव प्राणी के नाते से। उस स्थल पर तुम्हारा स्थान तुम्हारे अन्य देशवासियों से उच्चतर है। तुमने मानवता के लिये भारत के काम को अपनाया है किन्तु मैं जानता हूँ कि हमारे यहाँ के बहुत से आदमी तुम्हारी सहायता को साधारण रूप में लेंगे और उससे शिक्षा नहीं लेंगे। तुम उस देशभक्ति के विरुद्ध लड़ रहे हो जिससे पश्चिम ने पूर्व को अपमानित किया है---वह देश भक्ति,जो राष्ट्रीय अहंकार है। यूरोपीय इतिहास म यह तो अपेक्षाकृत एक नई उपज है और प्रारंभिक मानव-इतिहास की रक्त-शोषक भयंकरता, बर्बरता की अपेक्षा, मानव समुदाय के लिये, दुःख और अन्याय का कहीं अधिक बड़ा कारण है। भारत में पठान और मुगल आये और अपनी निर्बुद्धिता से कुकर्म किये; पर देशभक्ति की छाप न होने से उन्होंने भारत के आत्म-मूल पर, अपने आपको अहंकार वश दूर रखते हुए, कोई चोट नहीं की। क्रमशः वे हममें घुल मिल रहे थे और जिस तरह से (इंगलैंड में) नार्मन और सैक्सन मिलकर एक समुदाय हो गये, हमारे मुसलमान आक्रमणकारी भी अन्त में अपनी भिन्नता खोकर, भारतीय सभ्यता को दृढ़ और घनी बनाने में हाथ बँटाते।

हमको यह स्मरण रखना चाहिये कि यह हिन्दूधर्म, मौलिक आर्य धर्म नहीं है, सच तो यह है कि उसका अधिकांश अनार्य है। एक और महान् सम्मिश्रण होने वाला था—मुसलमानों के साथ सम्मिश्रण। मुझे विदित है कि उसके मार्ग में बाधायें थीं। किन्तु सबसे बड़ी कठिनाई थी, भौगोलिक स्वरूप के प्रति प्रेम का अभाव। देखो न, विदेश देशभक्ति के द्वारा क्या जघन्य कर्म आयर्लैंड में किये जारहे हैं। यह उस तक्षक की भाँति है जो इन जीवित प्राणियों को छोड़ने को तैयार नहीं है जो पृथक संघर्ष कर रहे हैं। क्योंकि देशभक्ति को अपने फैलाव का गुमान है और निश्चित सत्तामय इकाइयों को एक सूत्र में बाँधने के लिये, वह ऐसे साधनों का उपयोग कर सकता है जो अमानवीय हैं। अवसर आने पर हमारे देशभक्त भी ठीक यही करेंगे। जब हमारी आबादी के एक अल्पांश ने अंतर्जातीय विवाह का अधिकार सामने रखा, तो अधिकांश ने उनको वह स्वतंत्रता देना निर्दयता पूर्वक स्वीकार नहीं किया। वह भिन्न विचार मानने को तैयार नहीं था, जो स्वाभाविक था और सच्चा था, किन्तु एक नैतिक अत्या

चार को जो भौतिक अत्याचार की अपेक्षा कहीं अधिक दोषयुक्त था, बनाये रखने को तैयार था। क्यों? इस कारण कि शक्ति, संख्या और फैलाव में निहित है। शक्ति चाहे वह देश-भक्त के रूप में हो चाहे और किसी रूप में वह स्वतंत्रता से प्रेम नहीं करती। वह ऐक्य की चर्चा करती है, परन्तु यह भूल जाती है कि सच्चा ऐक्य स्वतंत्रता का है। एकसाधन बन्धनैक्य है।

मान लो हमारे स्वराज्य में ब्राह्मण विरोधी जाति हमसे सहयोग को तैयार नहीं है; मान लो अपने आत्म सम्मान के लिये और अपने आत्म-विकास के लिये वह पूर्ण स्वतंत्रता चाहती है—देश-भक्ति उसको एक अपवित्र ऐक्य के लिये बाध्य करेगी। देशभक्ति में शक्ति के लिये तीव्र कामना है और शक्ति अपना दुर्ग गणित पर बनाती है। मैं भारत को प्रेम करता हूं, पर मेरा भारतवर्ष एक विचार है न कि एक भौगोलिक स्वरूप। इसी कारण मैं देशभक्त नहीं हूँ—मैं अपने सह देशभक्त समस्त पृथ्वी पर सर्वदा खोजूँगा। तुम उनमें से एक हो और मुझे विश्वास है कि ऐसे और भी व्यक्ति होंगे।

एस० एस० रहाइन डैम

प्लेटो ने प्रजातंत्र से सारे कवियों को निर्वासित करने की धमकी दी थी। पता नहीं कि वह दया के कारण थी या क्रोध के कारण। क्या हमारा भारतीय स्वराज्य स्थायी रूप के आने के बाद, ऐसे बेकार प्राणियों के लिये, जो छायाओं का अनुगमन करते हैं, और स्वप्नसृजन करते हैं, जो न जोतते हैं न बोते हैं, जो न पकाते हैं न खिलाते हैं: जो न कातते हैं, न बुनते हैं, जो न प्रस्ताव बनाते हैं न समर्थन करते हैं, निर्वासन की आज्ञा देगा?

मैंने अक्सर ऐसे निर्वासित कवियों के समूहों की कल्पना की है जो प्लेटो द्वारा निर्वासित कवियों के पड़ोस में अपना निजी प्रजातंत्र स्थापित करें। स्पष्ट है, प्रत्युत्तर में 'कवि-प्रजातंत्र-सभापति', कवि प्रजातंत्र से सारे दार्शनिकों और राजनीतिज्ञों को निश्चय ही निर्वासित कर देंगे। इन प्रतिद्वन्द्वी प्रजातन्त्रों के पारस्परिक झगड़ों और संधियों की उन अनन्त संभावनाओं के बारे में तनिक सोचो—शान्ति-सम्मेलन, प्रतिनिधि-शिष्ट-मंडल, कार्यव्यस्त मंत्रियों सहित संस्थायें और वे स्थायी कोष जिनका लक्ष्य इन दोनों के बीच के भेद-भाव को मिटाना है।

तब उस छोटी सी घटना को सोचो कि एक दुखी नवयुवक और एक म्लानमना कुमारी, दो भिन्न प्रदेशों से आकर सीमा पर मिलते हैं और अपने-अपने ग्रह-नक्षत्रों के प्रभाव से परस्पर प्रणय-लीला में पड़ जाते हैं।

मान लो ऐसा हो कि वह तरुण युवक, "दार्शनिक प्रजातंत्र" के सभापति का पुत्र है और वह कुमारी "कवि प्रजातंत्र" के सभापति की आत्मजा है। उसका तत्कालिक परिणाम यह है कि वह आतुर युवक, दो दार्शनिक सिद्धान्तों की आलोचना और विवादों के बीच उन वर्जित प्रणय-संगीतों को चुपके से ले जायगा। इनमें से एक दार्शनिक सिद्धान्त पीली पगड़ी वालों का है जो यह कहते हैं कि 'एक' सत्य है और 'दो' मिथ्या है। दूसरा उन हरी पगड़ी वालों का सिद्धान्त है जो इस बात पर ध्यान दिलाता है कि दो सत्य है और एक मिथ्या है।

तब उस महा सम्मेलन का दिन आया जिसमें दार्शनिक सभापति ने अध्यक्ष-पद ग्रहण किया और तब दोनों ओर के पंडित, सत्य-निर्णयार्थ, तर्क-शास्त्रार्थ करने को एकत्रित हुए। विवाद का स्वर बढ़ते-बढ़ते बढ़ा कोलाहल हो गया; दोनों दलों के समर्थकों ने हिंसा की धमकी दी। सत्य के सिंहासन पर कोलाहल ने अधिकार कर लिया। जब यह हल्ला मुक्केबाजी में परिणित होने वाला था तो उस सभास्थल में वह प्रेमियों का जोड़ा आ निकला जो मधुमासीय पूर्णिमा की रात्रि को विवाहित हो चुका था। ऐसा अन्तर्विवाह, राज्य-नियम के विरुद्ध था। किन्तु जब वे दोनों-दलों के बीच खुले में खड़े हुए तो सभा में एकदम निस्तब्धता छा गई।

किस प्रकार इस अप्रत्याशित साथ ही प्रत्याशित घटना ने उक्त प्रणय-संगीत के उद्धरणों की सहायता से अन्त में इस तर्क-द्वन्द्व में मेल करने में सहायता दी, यह एक लम्बी कहानी है। यह उनको भली भाँति ज्ञात है जिनको न्यायाध्यक्षों के निर्णय का अनुसरण करने का सौभाग्य हुआ कि दोनों सिद्धान्त निस्सन्देह रूप से सच माने जाते हैं; कि एक दो में है और इस कारण दो अपने आपको एक में प्राप्त करेगा। इस सिद्धान्त की मान्यता ने उस अन्तर्विवाह को मान्य बनाया और उस समय से दोनों प्रजातन्त्रों ने अपना निशस्त्रीकरण सफलता पूर्वक किया है और इस बात को पहली बार अनुभव किया कि उनके बीच की खाई केवल काल्पनिक है।

इस नाटक के ऐसे सुखद और सरल अन्त से बहुत बेकारी फैली है और इस कारण स्थायी कोष से संचालित संस्थाओं के सदस्यों और उपदेशकों की बहुत बड़ी संख्या में जो ऐक्य प्रचार करती थी, एक भारी असन्तोष की भावना फैली है। ये संस्थायें अपने संगठन में इतनी श्रमपूर्वक पूर्ण थीं कि इतनी छोटी सी बात कि उनके प्रयत्न फलप्रद नहीं होंगे, उनके ध्यान में भी नहीं आना संभव था। इन व्यक्तियों में से अधिकांश जिनमें भला करने की अमित, उत्कट इच्छा की दैवी देन थी, अब विरोधी संस्थाओं में सम्मिलित हो रहे हैं। इन संस्थाओं के स्थायी कोष हैं, यह सिद्ध करने में सहायता देने को और प्रचार करने को कि दो आखिर दो ही हैं और वे कभी भी मिलकर एक नहीं हो सकते।

मेरा विश्वास है कि स्वयं प्लेटो की श्रद्धेय आत्मा भी, इस बात की साक्षी होगी कि उपर्युक्त कहानी सच्ची है। आँख-मिचौनी खेल का यह अङ्क, दो में एक, किसी कवि द्वारा लयबद्ध किया जाना चाहिये; और इसी कारण मैं तुम से निवेदन करता हूँ कि मेरे आशीर्वाद के साथ तुम इस प्रसंग को सत्येन्द्र नाथ दत्त * को दे दो ताकि वह अपने अनुपम छन्दों में जिनमें वह दक्ष है, इसको स्थायी बना दें और अपनी प्रसन्नवदना आत्मजा के संगीत से लयमय कर दें।

एस० एस० रहाइनलैंड

इधर समुद्र विशेषतः अशान्त रहा है। जंगली पूर्वी हवा ने अपने सँपेरे जैसे बीन को बजाकर असंख्य साँय-साँय करती लहरें उठा दी हैं जो अपने फेनों को आकाश की ओर फेंक रही हैं। समुद्र के दुर्व्यवहार का मेरे ऊपर कोई विशेष प्रभाव नहीं है किन्तु वह अंधकार, अशान्ति और लहरों का भयङ्कर चढ़ाव, उतार—मानो निराशा में एक दैत्य अपनी छाती पीट रहा हो—मेरे मन को उदास बना देता है।

एक काल्पनिक अनुमान के साथ यह दुखद विचार कभी-कभी आता है कि मैं संभवतः कभी भी भारतीय तट तक न पहुँच पाऊँ; और मेरा हृदय पीड़ित होता है क्योंकि मैं हवा में फड़फड़ करते ताड़पत्तों के साथ अपनी मातृभूमि के छोरों

---

* एक तरुण बंगाली कवि, जिनकी महाकवि बहुत प्रशंसा करते थे। अब उनका देहावसान हो गया है।

को समुद्र में देखने को लालायित हूँ। यह वह प्रदेश है जहाँ मैंने अपनी प्रथम महाप्रेयसि से नेत्र मिलाये थे—मेरा चिन्तन जिसने शान्त हेमन्तीय प्रातः काल में एक पीले आवरण को बींधकर, नारियल-वृक्षों की कतारों का शिखर स्पर्श करती धूप से, और उन झंझावत-गर्भित बादलों से जो क्षितिज पर किसी घाटी से उमड़ रहे थे और जो अपने अँधेरे अङ्क में, उन्मत्त जल-फुहार की रोमाँचकारी आशा लिये थे, मेरा प्रेम कराया था।

किन्तु मेरी वह प्रेयसि कहाँ है, जो बाल्यावस्था में मेरी एकमात्र सहचरी थी और जिसके साथ मैंने अपने यौवन के प्रमाद-दिवस, स्वप्नदेश के रहस्य को खोज निकालने में व्यतीत किये थे ? वह मेरी रानी मर चुकी है और मेरे संसार ने उस सुषुमा के अन्तरंग कक्ष के द्वारपट बन्द कर दिये जो मुझे स्वतन्त्रता का सच्चा स्वाद देते थे। मेरी दशा शाहजहाँ की भाँति है जब उसकी प्रेयसि मुमताज मर चुकी थी। अब मैंने अपनी सन्तति को—एक अन्तर्राष्ट्रीय विश्व-विद्यालय की सुन्दर योजना—छोड़ दी है किन्तु वह औरंगज़ेब की भाँति होगी जो मुझे कारा-वास में डाल कर मेरी जीवन-समाप्ति तक मेरे ऊपर आधिपत्य रखेगी। प्रतिदिन उसके विरुद्ध मेरा भय और अविश्वास दृढ़तर होता जा रहा है। क्योंकि वह भौतिक शक्ति के साधनों से पनपती रही है और इन साधनों के मैं सदा विरुद्ध रहा हूँ।

शान्तिनिकेतन मेरी आत्मा का क्रीड़ास्थल रहा है। जो मैंने उसकी भूमि पर उत्पन्न किया वह मेरे स्वप्न पदार्थ से निर्मित था। उसके पार्थिव पदार्थ थोड़े हैं; उसके नियम लचीले हैं, उसकी स्वतन्त्रता में सौन्दर्य का आन्तरिक विरोध है। किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय अपरिचित भार होगा और उसकी बनावट कठोर होगी; यदि हम उसको हटाना चाहेंगे तो वह चटख जायगा। उसकी दशा उस दुष्ट भाई की भाँति होगी जो अपनी मधुर, जेठी बहन को आँख दिखा कर और धमका कर दास बना लेते थे। मेरे मित्र ! संस्थाओं से सावधान होओ। कहते हैं किसी वस्तु को स्थायी बनाने के लिये संस्था आवश्यक है किन्तु वह तो उसके मक़बरे को ही स्थायी बनाना होगा।

मेरा यह पत्र तुमको निराशावादिता से भरा प्रतीत होगा। कारण यह है कि मैं अस्वस्थ हूँ और मुझे बेहद घर की याद सता रही है। मेरे घर का वह

मानस चित्र जो मुझे रात दिन घेरे रहता है वह है 'आमादेर शान्तिनिकेतन *'। किन्तु उस अन्तर्राष्ट्रीय विश्व-विद्यालय की बड़ी मीनारें, उसके स्वरूप को छिपाती हैं। इन पिछले महीनों में किसी उद्देश्य के लिये प्रयत्न करते हुए और ऐसी दशा में काम करते हुए, जिसका स्वाभाविक प्रवाह मेरे अन्तर्व्यक्ति के विरुद्ध है, मेरी अस्थियों का एक-एक अंश क्लान्त हो गया है।

एस० एस० रहाइनडैम

तुमको अपने दैनिक जीवन की समस्याओं को सुलझाने के लिये एक स्थिर और ठोस सतह मिला है। तुम पूरी तरह अनुमान नहीं कर सकते कि इन पिछले दो दिनों में मेरे अस्तित्व को, प्रत्येक क्षण, बर्बर समुद्र पर उछाले जाने में किस परीक्षा का सामना करना पड़ा है। मैं समुद्र रोग से पीड़ित नहीं हूं। किन्तु हमारे लिये यह महान तथ्य है कि हम पृथ्वी के प्राणी हैं। यह एक अचल तथ्य है तथापि जब यह बात बदलती हैं तो यह हमारे लिये केवल दुख ही नहीं वरन एक अपमान की बात है। सारा समुद्र हमारे ऊपर जोरों से हंसता हुआ प्रतीत हो रहा है कि हम ऐसे भुलावे में पड़े हैं कि अपने को बड़ा प्राणी समझते हैं किन्तु हमारे केवल एक जोड़ा लड़खड़ाते पैर हैं और हमारे पास तैरने का एक भी अंग नहीं है।

प्रत्येक क्षण आदमी की शान पर चोट की जाती है जब उसे अनेक ढंग से बेबसी से लुढ़कना पड़ता है। उसको एक बड़े स्वांग में बलात भाग लेना पड़ता है और उसके लिये इससे अधिक उपहासजनक और कुछ बात नहीं हो सकती कि वह अपने दुःखों में उपहास्य रूप में सामने आये। यह ठीक उसी तरह जैसे बेवकूफी और बेबसी में मनसुखा को लात खाते देख कर दर्शकगण हँसते-हँसते लोट-पोट हो जायें।

बैठते, घूमते, खाते-पीते हम ऐसे अप्रत्याशित स्वरूप में डाल दिये जाते हैं कि जो लज्जापूर्वक असुविधाजनक है।

---

* आश्रम में गाये जाने वाले एक गायन की ओर संकेत है जिसके शीर्षक का अर्थ है हमारा शान्तिनिकेतन।

जब अपने हँसी के परिष्कृत ढंग से देवतागण उपहास्य बनने का प्रयत्न करते हैं तो हम मर्त्यलोक के प्राणी बड़ी बुरी स्थिति में होते हैं; कारण, करोड़ों, फेनिल, गरजती हुई लहरों द्वारा वितरित उनकी जोर की हँसी में दैवी शान यथावत बनी रहती है। किन्तु उस समय हमारा आत्म-सम्मान टुकड़े टुकड़े हो जाता है। इस जहाज में मैं ही एक ऐसा व्यक्ति हूँ जो अपने दुःख को हँसी के शब्दों में ढाल कर और स्पष्ट बेवकूफी का निष्क्रिय यंत्र न बनकर, देवताओं से होड़ कर रहा हूँ। अत्याचार की हँसी का उत्तर विद्रोह की हँसी है और मेरी इस पत्र में विरोध, और सिर न झुकने की हँसी है। आज प्रातःकाल तुम्हें पत्र लिखने मे मेरा और कोई उद्देश्य नहीं था। मुझे तुमसे कोई विशेष बात नहीं कहनी थी; और ऐसे समय में जब जहाज पागलों की तरह लुढ़क रहा है, विचार करने का प्रयत्न करना, शराब पीकर एक जलपूर्ण पात्र को ले जाने के समान है जिसका अधिकांश छलक जाता है। तथापि मुझे यह पत्र लिखना है केवल यही दिखाने को कि यद्यपि इस जगत में अपने पैरों पर सीधा खड़ा भी नहीं हो सकता, तथापि मैं लिख सकता हूं। यह तो शक्तिशाली अटलांटिक महासागर की व्यंगभरी करतल ध्वनि के विरुद्ध यह प्रमाणित कर देना है कि उसके भाषा जगत मे मेरा मस्तिष्क केवल सीधा खड़ा ही नहीं हो सकता वरन दौड़ सकता है, यहाँ तक कि नाच सकता है।

आज मंगलवार है। गुरुवार प्रातःकाल, प्लीमथ पहुँचने की आशा है। मेरे बनोवास के इन कठिन एवं परीक्षापूर्ण महीनों में और किसी चीज की अपेक्षा, तुम्हारे पत्रों ने मुझे अधिक सहायता दी है। वे एक घातक और क्लान्त सैनिक को जो अपने को डेरे पर वापिस लाने के लिये कठिन और अनिश्चित सड़क पर अपने अवयवों को, हर क़दम को गिनते हुए, घसीट रहा हो, भोजन और वस्त्र की भाँति सिद्ध हुए हैं। जो भी हो, मेरी यात्रा का अब अन्त होने वाला है और घर पहुँच कर तुमसे मिलने की बलवती आशा है। मैने जो कष्ट पाया है वह केवल ईश्वर ही जानता है—मैं विश्राम के लिये लालयित हूं।

प्रकरण : ८ :

महाकवि के अमेरिका से लौटने के बाद इंगलैंड में व्यतीत किये यह दिन पिछले वर्ष की अपेक्षा जब लाट-सभा में डायर डिबेट ने वायुमंडल विषाक्त कर दिया था, अधिक सुख और उल्लास भरे थे। किन्तु वे इतने पर्याप्त समय तक वहाँ नहीं ठहरे कि उन सभी व्यक्तियों से जो उनसे मिलने को उत्सुक थे, वे मिल सकते। उन्हें महाद्वीप के हर भाग से निमन्त्रण प्राप्त हुये थे और उनके पास समय बहुत थोड़ा था क्योंकि उन्होंने यथासम्भव शीघ्र समय में भारत लौटने का निश्चय कर लिया था। इस प्रकरण में दिये महाद्वीप से लिखे पत्रों में उसका एक बहुत छोटा-सा अंश कहा गया है। उनके विशेष अनुनय के कारण, बहुत से पत्र प्रकाशित नहीं किये गये हैं। कारण, बाद में वे अपने आत्म-दौर्बल्य से लज्जित थे कि सर्वत्र जिस उल्लास और उत्साह के साथ उनका स्वागत किया गया था उसको छापकर स्थायी कर दिया जाय इतिहास में कदाचित ही किसी कवि को ऐसा स्वागत मिला होगा।

जिस चीज ने सबसे अधिक उनका अन्तर स्पर्श किया वह थी वह आध्यात्मिक लालसा जो इस सबके पीछे थी—यह सच्ची आशा, विशेष कर यूरोप के गत युद्ध के भग्न प्रदेशों की यह आशा कि अन्धकार में आलोक लाने के लिये, प्राच्य से कोई ज्योति आएगी। विश्वभारती का आदर्श जो पहले, कुछ अस्पष्ट और धुंधला हो गया था अब अधिक निश्चित और स्पष्ट स्वरूप में आया। साथ ही उनको दुःख हुआ कि असहयोग की पुकार के कारण जो भारत में जोरों पर थी उनके प्रत्यागमन पर उनके ही देशवासियों द्वारा उनका बहिष्कार होगा।

ऐसा बहिष्कार नहीं हुआ क्योंकि गांधीजी के नेतृत्व में इस राष्ट्रीय आन्दोलन के बीच, गांधीजी को मान्य—अहिंसा के सार्वभौम सिद्धान्त में—एक सर्व-सम्मत केन्द्र-बिन्दु था। महात्मा गांधी की पराबल के विरोध में आध्यात्मिक अपील और दीन जनों की सेवा की उनकी लगन और बलवती इच्छा की महाकवि ने सबसे अधिक सराहना की।

लन्दन
१० अप्रैल १९२१

मुझे इंगलैंड आकर हर्ष हुआ है। इन सार्वप्रथम व्यक्तियों में जिनसे मैं यहाँ मिला हूँ एक एच० डबल्यू० नेविन्सन हैं: मुझे ऐसा लगा कि उस देश में जिसने ऐसा प्राणी उत्पन्न किया, मानव-आत्मा अभी जीवित है।

किसी देश का निर्णय उसकी सर्वोत्तम होन से होना चाहिये और यह कहने में मुझे तनिक भी संकोच नहीं है कि सर्वोत्तम अंगरेज मानवता के सर्वोत्तम नमूने हैं।

अङ्गरेज-राष्ट्र के विरुद्ध अपनी सारी शिकायतों के होते हुए भी मैं तुम्हारे देश से प्रेम नहीं छोड़ सकता—उस देश से जो मेरे कुछ घनिष्ठतम मित्रों का जन्म स्थान है। मुझे इस बात से बेहद प्रसन्नता है क्योंकि घृणा करना घृणास्पद है। जिस तरह उनका संहार करने के लिये, एक पूरी फ़ौज को, एक सेनापति एक अन्धी-गली में घेरना चाहता है उसी तरह हमारे क्रोध की भावना मानसिक रूप से बहुत बड़े पैमाने पर उन्हें कुचल डालने के लिये एक देश के सारे निवासियों को लपेटे में ले लेती है।

जो कुछ आयर्लेंड में हो रहा है वह भद्दा है। उसके साथ बहुत राजनैतिक झूठ मिला हुआ है और प्रत्युत्तर में हमारा क्रोध काफ़ी बड़ी चोट की सोचता है और हम तुरन्त ही इंगलैण्ड के सारे आदमियों पर, यह जानते हुये भी कि बहुत से अंग्रेज उस पाशविकता के कारण उतने ही दुःखी और लज्जित होते हैं. जितने कि अन्य देशों के निर्लिप्त मनुष्य, दोषारोपण करते हैं।

यह बात कि इतना बड़ा सामुदाय—जिसका आयर्लेंड को ब्रिटिश साम्राज्य-वाद से बाँधे रखने में भारी हित है—आयर्लेंड निवासियों के प्रति किये गये अत्याचारों से इतना व्यथित होता है, इस बात को प्रमाणित कर देता है कि सारी विकृतियों के होते हुए भी इस देश के हृदय में न्याय के प्रति सहज प्रेम है। किसी राष्ट्र की सुरक्षा उन पवित्र आत्माओं पर निर्भर होती है जो इस देश में जब तब आने वाली अनौचित्य की बाढ़ के बीच भी नैतिक परिपाटियों को ऊपर उठाये रखते हैं।

वारन हेस्टिंग्स के होते हुये भी एडमण्ड बर्क, ग्रेट ब्रिटेन की महानता का प्रमाण है; और हम महात्मा गांधी के कृतज्ञ हैं कि उन्होंने भारत को यह सिद्ध करने का अवसर दिया है कि मनुष्य की दैवी आत्मा में उसका विश्वास अब भी सजीव है—यद्यपि जिस ढङ्ग से हमारे यहाँ धर्म पालन किया जाता है, उसमें बहुत-सा भौतिकवाद है और हमारे सामाजिक ढाँचे में भेदभाव की भावना है।

सच यह है कि सभी देशों के सर्वोत्तम पुरुषों में एक पारस्परिक घनिष्ठता होती है। ईंधन में भिन्नता हो सकती है, किन्तु आग एक ही है। जब मेरे सामने इस देश की आग आती है तो मैं उसे पहचान लेता हूँ कि वही चीज है जो भारत में हमारे मार्ग को, हमारे घर को प्रकाशित करती है। हमको उस आग की खोज करनी चाहिये और यह जान लेना चाहिये कि जहाँ कहीं भिन्नता की भावना सर्वोपरि है वहाँ अन्धकार का राज्य है और ऐक्य अनुभूति के साथ ही प्रकाश और सत्य आता है। जब हम अपना दीपक जलाते हैं तो हम तुरंत ही स्वर्ग की शाश्वत ज्योति को प्रत्युत्तर भेजते हैं। तुम स्वयं अपने देश का एक दीपक लिये हुए हो और उसके जवाब में, तुम्हारे अन्दर प्रदर्शित मानवता के प्रेम के लिये मैं अपना दीपक जलाना चाहता हूँ।

[आगे दिया हुआ पत्र (जिसकी एक प्रति उन्होंने मेरे पास स्वयं ही भेजी थी) एक महिला को लिखा गया था। महिला ने अपने पत्र में लिखा था कि अपने एक व्याख्यान में महाकवि ने ब्रिटिश पुरुषों के विरुद्ध क्रोध का भाव प्रकट किया था।]

लन्दन,
२१ अप्रैल, १९२१

प्रिय देवी,

तुम्हारा पत्र उस प्रातःकाल देर से मिला। मुझे यह जानकर दुःख हुआ कि तुम इस होटल में ऐसे समय पर आईं जब कि मैं दूसरे कामों के लिये वचनबद्ध था।

यह असंभव नहीं है कि जातीय चेतनता के किसी असंदिग्ध अनशिष्ट ने तुमसे यह कल्पना कराई कि मैंने अपने व्याख्यान में ब्रिटिश लोगों के विरुद्ध

क्रोध का भाव प्रकट किया। पश्चिम या पूर्व के शक्तिशाली राष्ट्रों के बर्बर शोषण द्वारा अपमानित या आपद सभी जातियों के लिये मेरी गहरी सहानुभूति है। मुझे उतनी ही सहानुभूति अमेरिका के नीग्रो लोगों के साथ है जिनका बर्बरता से यों ही प्राण हरण कर लिया जाता है और जिसका कारण प्रायः आर्थिक होता है। मेरी उन कोरिया वासियों से भी उतनी ही सहानुभूति है, जो जापानी साम्राज्यवाद के सबसे ताजी शिकार हैं जितनी कि अपने देश के बेबस वृहत समुदाय के प्रति अत्याचारों के कारण है।

मुझे विश्वास है कि ईसामसीह यदि आज जीवित होते, तो उन जातियों से क्रुद्ध होते जो दूसरी दुर्बल जातियों के जीवन-रस पर पलने-फूलने का प्रयत्न करते हैं, ठीक उसी तरह जैसे वे उन लोगों पर नराज हुए जिन्होंने अपनी अपवित्र उपस्थिति और आचरण से देव-मंदिर को कलुषित किया। निश्चय ही उन लोगों को फटकारने का काम उन्होंने अपने ऊपर ले लिया होता जो कि अपराधी हैं और विशेषकर उन लोगों को जो उनके मतानुयायी होने की घोषणा करते हैं। ये व्यक्ति प्रकटतः तो शान्ति और मानव भाई-चारे की बातें करते हैं किन्तु जब मानव-इतिहास में किसी न्याय-निर्णय की आवश्यकता हुई तो या तो यह चुप बने रहे या दुर्बल और कुचले हुए व्यक्तियों के विरुद्ध विष उगलते रहे और इस व्यवहार में तो इन्होंने उन लोगों को भी मात दे दी, कि जिनका व्यापार आंख बंद कर मनुष्य के प्राण ले लेना था।

दूसरी ओर यद्यपि मैं कभी-कभी अपने को बधाई देता हूं कि मैं जातीय भेद-भाव से मुक्त हूं किन्तु यह संभव है कि वह काफी परिमाण में उपचेतन मन में बनी हुई हो और वह बाहर वालों को मेरे लेखों में प्रकट होती है। जब कि मैं अपने देश पर होने वाले किसी भी अन्याय, अपमान या कष्ट पर विशेष महत्व देता हूं। मैं आशा करता हूं कि इस दुर्बलता के लिये मैं क्षम्य हूं, यदि यह बात ध्यान में रखी जाय कि अपने देशवासियों द्वारा अन्य देशवासियों पर होने वाले किसी भी अत्याचार को मैं क्षमा करने का विचार नहीं करता।

आॅट्रर द्र मो-डे
पेरिस, १८ अप्रैल १६२१

मैं अपने संक्षिप्त हवाई जीवन से पुनः धूलि-प्रदेश में आ गया हूँ जब कि नभ-मंडल में मेरे नाम राशी रवि ने अपनी मनोरंजक कोमलता की मुस्कराहट मेरे ऊपर बरसाई और अप्रैल के आकाश के कुछ घुमक्कड़ बादलों को आश्चर्य हुआ कि क्या मैं उनके दल में सम्मिलित होने जा रहा हूँ।

जब कभी मुझे समय मिलता है और मैं खिड़की के सामने अकेला बैठता हूँ, मैं गंभीरता से अपना सिर झुकाता हूँ और दुःखपूर्ण स्वर में अपने से कहता हूँ : "वे जो बेवकूफ़ जन्मे हैं, केवल उस समय ईश्वर के हृदय को प्रसन्न कर सकते हैं जब उन्हें एकान्त की स्वतंत्रता हो और जब वे अपने काहिल परों को हवा में फैला सकें और योंही फड़फड़ायें और भन-भन करें। तुम—कवि एक ऐसे प्राणी हो—अपनी प्रकृति को विकसित होने देने के लिये तुम्हें अकेले रहना चाहिये। यह सब क्या है जिसकी तुम योजना बना रहे हो? क्या तुमको समुदाय का संचालन करना है और उनके साथ एक संस्था का निर्माण करना है?"

सारे जीवन भर मैंने सदा अकेले काम किया है। किन्तु एक अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के लिये आधार की आवश्यकता है, जड़ों की नहीं। उसको दृढ़ बनाने का आधार है अन्तर्राष्ट्रीय समिति और संचालक-दल और धन-कोष। और यह सब उन लोगों से आता हो जिनमें बुद्धि भी हो और दूर दृष्टि भी। दूर दर्शिता एक देन है और उसका मुझमें नितान्त अभाव है। मुझमें कुछ अन्तर्दृष्टि भले ही हो किन्तु दूर दृष्टि बिलकुल भी नहीं है। दूर दृष्टि में हिसाब लगाने की शक्ति होती है किन्तु अन्तर्दृष्टि में मानस-चित्र की। जिसमें अन्तर्दृष्टि हो उसका उसमें विश्वास हो सकता है; इसी कारण न तो उसे ग़लती कर बैठने का डर होता है और न प्रकटतः जो असफलता प्रतीत होती है, उसका ही डर होता है। परन्तु दूरदृष्टि कमियों को सहन नहीं कर सकती। वह बराबर ग़लती की संभावनाओं पर मँडराती रहती है, केवल इसी कारण कि उसे पूर्ण का चित्र नहीं दीखा। इसी कारण उसकी योजनायें अधिकतर ठोस होती हैं और उनमें लचीलापन नहीं होता।

अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना में अनुभव की दूर दृष्टि बनी रहेगी; वह सीधे जाकर पतवार को अपने हाथ में ले लेगी; और उसी समय वे बुद्धिमान जो रुपया देते हैं, और वे ज्ञानवान जो सलाह देते हैं, सन्तुष्ट होंगे। किन्तु बेवकूफ और उत्तरदायित्व विहीन के लिये कहाँ जगह रहेगी ?

सारी चीज़ की स्थापना स्थायी आधार पर करनी होगी; किन्तु ऐसा, कहा जाने वाले स्थायित्व, जीवन और स्वतंत्रता का मूल्य देकर मिलेगा।

पिंजड़ा स्थायी होता है, घोंसला नहीं। किन्तु वह जो सचमुच स्थायी है उसे असंख्य अस्थायी क्रमों को पार करना होता है। वसन्ती पुष्प स्थायी हैं क्योंकि वह मरना जानते हैं। पत्थर से बना मन्दिर मृत्यु के साथ, उसे स्वीकार कर, संधि नहीं कर सकता। अपने ईंट-गारे के गुमान में वह बराबर मृत्यु का विरोध करता है यहाँ तक कि अन्त में वह परास्त हो जाता है। हमारे शान्ति-निकेतन का स्थायित्व, जीवन पर निर्भर है; किन्तु एक अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय अपना स्थायित्व नियम उपनियमों की सहायता से बनाना चाहता है ! किन्तु—

कुछ चिन्ता नहीं ! मुझे क्षण भर के लिये यह भूल जाने दो। संभवतः मैं अत्युक्ति कर रहा हूँ। बरफ़ पड़ रही है और मेह बरस रहा है; सड़क दलदल से भरी है; और मुझे घर की याद सता रही है।

मुझे एक संस्था ने अपने सम्मेलन के अवसर पर एक निबंध पढ़ने की प्रार्थना की है। उन्होंने मुझसे उसका सारांश माँगा है जिसको वह अपने सदस्यों को दिखायेंगे। उसकी एक प्रति मैं तुम्हें भेज रहा हूँ।

व्याख्यान का सारांश

इतिहास के आरम्भ से ही पश्चिमी जातियों को प्रकृति के साथ प्रतिरोधी की तरह बरतना पड़ा है। इस बात ने उनके मस्तिष्क में सत्य के द्वन्द्वात्मक पक्ष पर ज़ोर दिया है—भलाई और बुराई में शाश्वत संघर्ष। इस प्रकार उनकी सभ्यता के अन्तस्तल में संघर्ष की भावना बराबर बनी रही है। वे विजय की खोज में हैं और बराबर संघर्ष करते हैं।

वह वातावरण जिसमें आर्य-आगतों ने अपने आपको भारतवर्ष में पाया वह जंगल का था। समुद्र और मरुस्थल से जंगल में एक उलटी बात है—वह यह कि

जंगल सजीव है; वह जीवन को आश्रय और पोषण देता है। ऐसे वातावरण में भारत-वासियों ने विश्व के साथ सामंजस्य की भावना को अनुभव किया और अपने मन में सत्य के अद्वैतात्मक पक्ष पर जोर दिया। उन्होंने सब के साथ ऐक्य में आत्मज्ञान की खोज की।

संघर्ष की भावना और सामंजस्य की भावना दोनों का ही अपने-अपने स्थान पर महत्व है। वाद्ययंत्र बनाने के लिये पदार्थों की कड़ाई को यंत्र-निर्माता के उद्देश्य के अनुसार वश में लाया जाता है। किन्तु, संगीत स्वयं सौन्दर्य का प्रकटीकरण है; वह संघर्ष का परिणाम नहीं है; उसका झरना सामंजस्य की अनुभूति से फूट पड़ता है। वाद्य-यंत्र और संगीत दोनों का ही मानवता के लिये अपना-अपना महत्व है।

वह सभ्यता जो मनुष्य के लिये संघर्ष कर रही है और विजय लाभ करती है और वह सभ्यता जो अस्तित्व की गहराई में मौलिक ऐक्य का अनुभव करती है; परस्पर पूरक हैं। जब वे आपस में मिल जाती हैं तो मानव स्वभाव का संतुलन होता है; और ऊबड़-खाबड़ मार्ग में होकर उसकी अभिरुचियाँ, पूर्णत्व के आदर्श में चरम सत्य प्राप्त करती हैं।

आँद्रे डि मोन्वे,
पैरिस,
२१ अप्रैल, १९२१

जब मैंने पश्चिमीय लोगों के पास एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का निवेदन भेजा तो मैंने सुविधा के विचार से विश्वविद्यालय शब्द का प्रयोग किया। किन्तु उस शब्द का एक आन्तरिक अर्थ ही नहीं है वरन् साथ ही जो पुरुष उसको प्रयोग में लाते हैं उनके मस्तिष्क में उसका एक प्रचलित अर्थ भी है और इस कारण मेरा विचार भी उस लचीले ढाँचे में ढाल दिया जाता है। यह बड़े दुर्भाग्य का विषय है। एक मृत तितली की तरह किसी विदेशी अजायबघर के लिये मैं अपने विचार को किसी शब्द से बंध नहीं जाने दूँगा। उसका परिचय किसी परिभाषा से नहीं वरन् उसकी जीवन-वृद्धि से मिलना चाहिये।

भूत काल में अपने शिक्षा-विभाग के समतल करने वाले एंजिन द्वारा, इकसार होकर कुचला जाने से, मैंने शान्तिनिकेतन स्कूल की रक्षा की है। हमारे स्कूल में

साधनों का अभाव है और सामान की कमी है किन्तु उसमें वह सत्य सम्पत्ति है जिसको धन से क्रय नहीं किया जा सकता; और मुझे इस बात का अभिमान है कि वह किसी कारखाने में ढले यंत्र-निर्मित पदार्थ की भाँति नहीं है—वह बिलकुल स्वाभाविक ही है।

यदि हमको एक विश्वविद्यालय बनाना ही है तो वह हमारे अपने जीवन से ही उत्पन्न होना चाहिये और हमारे जीवन से ही उसका पोषण होना चाहिये। कोई यह कह सकता है कि ऐसी स्वतन्त्रता भयावह है और एक संचालक मन्त्र हमारे व्यक्तिगत उत्तरदायित्व को कम करने और चीजों को सरल बनाने में सहायता देगा। हाँ, जीवन में अपने संकट हैं और स्वतन्त्रता में अपने उत्तरदायित्व; तथापि अपने बहुत बड़े मूल्य के कारण—किसी दूर के परिणाम के कारण नहीं—वह अपेक्षाकृत अधिक ग्राह्य है।

अब तक मैं अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता और आत्मसम्मान को बनाये रख सका हूँ, कारण, मेरा अपने साधनों में विश्वास था और उनकी स्वतन्त्र सीमाओं के अन्तर्गत मैंने साभिमान काम किया। अपनी चिड़िया के पंखों की स्वतन्त्रता मुझे अब भी बनाए रखनी चाहिये। अपनी सजीव काया से बाहर किसी नियंत्रक शक्ति से पाले जाकर उसे धनी किन्तु निष्प्राण नहीं बनाना। मैं जानता हूँ कि अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय का विचार जटिल है किन्तु अपने ही ढंग से मुझे उसे सरल बनाना है। यदि उसकी ओर ऐसे व्यक्ति आकर्षित हों जिनका न यश है न नाम और न जिन पर संसारी साधन हैं किन्तु जिनमें मनःशक्ति है और विश्वास है और जो अपने स्वप्नों से महान् भविष्य का निर्माण करने वाले हैं, तो मुझको सन्तोष होगा।

संभवतः ऐसी संरक्षक समिति के साथ मैं कभी भी काम नहीं कर सकूँगा जिसके सदस्य अत्यन्त प्रभावशाली और प्रतिष्ठावान हैं—कारण, मैं हृदय से आवारा हूँ। किन्तु संसार के शक्तिशाली पुरुष, पृथ्वी के अधिपति मेरे लिये, अपना कार्य-संचालन कठिन बना देते हैं। मैं इसे जानता हूँ और शान्तिनिकेतन के सम्बन्ध में मुझे इसका अनुभव है। किन्तु मुझे असफलता का भय नहीं है। मुझे केवल यह भय है कि सफलता की खोज में प्रलोभन वश मैं कहीं सत्य से दूर न हट जाऊँ। कभीकभी प्रलोभन मुझे आ घेरता है; किन्तु वह बाहरी

वातावरण से आता है। मेरा अपना दृढ़ विश्वास जीवन, प्रकाश और स्वतंत्रता में है और मेरी प्रार्थना है :—

असतो मा सद्गमय

मेरा यह पत्र तुमको यह जताने के लिये है कि मैं अपने आपको सहायता के बंधन से मुक्त करता हूँ और ताकि पुन: वापिस आकर उस विशाल 'आवाराओं के भाईचारे में मैं सम्मिलित हो जाऊँ, जो असहाय प्रतीत होते हैं किन्तु जिनको ईश्वर अपनी सेना में भरती करता है।'

स्ट्रैसवर्ग,
२६ अप्रैल, १६२१

मैं स्ट्रैसवर्ग से लिख रहा हूँ जहाँ आज सायंकाल विश्वविद्यालय में मुझे निबन्ध पढ़ना है।

इस समय मुझे तुम्हारा अभाव बहुत खला है, कारण, मुझे विश्वास है कि यदि इस समय तुम मेरे साथ होते तो यूरोप के जिन देशों में मैं गया हूँ, वहाँ पर मेरे लिये प्रेम की बाढ़ देखकर तुम अत्यन्त प्रसन्न होते। मैंने उसे न कभी माँगा न उसके लिये प्रयत्न किया और न मैं कभी इसका विश्वास कर सकता हूँ कि मैं उसके योग्य हूँ। जो भी हो यदि यह आवश्यकता से अधिक हुआ है तो इस भूल में मेरा कोई उत्तरदायित्व नहीं है। कारण, मैं अपने जीवन के अन्तिम दिनों तक गंगा तट पर निर्जन बालू-द्वीपों पर एकमात्र जंगली बतखों के साथ अपनी ख्यातिहीनता में अत्यन्त प्रसन्न रहता।

जीवन के अधिकांश में, "मैंने अपने स्वप्न केवल हवा में बोये हैं" और मैंने कभी भी यह घूम कर नहीं देखा कि उसमें कोई फ़सल हुई या नहीं। किन्तु अब मैं फ़सल देख कर चकित होता हूँ; वह मेरा मार्ग अवरुद्ध करती है और मैं यह निश्चय नहीं कर पाया कि यह कुल मेरी ही है। जो भी हो यह एक बहुत बड़ा सौभाग्य है—मानवबंधुओं द्वारा भूगोल, इतिहास, भाषा की दूरी चीरते हुए सम्मान पाना; और इस बात के द्वारा हम यह अनुभव करते हैं कि सचमुच 'मानव' का मान 'एक' है और जो कुछ विकृत दीखती है वह घृणा का संघर्ष है या स्वार्थ की होड़ है।

हम कल स्विट्ज़रलैंड जा रहे हैं और हमारा अगला गन्तव्य स्थान जर्मनी होगा। मैं अपना जन्म-दिवस ज़ूरिच में बिताऊँगा। मेरा परिवार में दूसरा जन्म हुआ है और मुझे उस पर हर्ष है। किन्तु स्वभाव से प्रत्येक मनुष्य द्विज है—पहली बार उनका घर में जन्म होता है, दूसरी बार पूर्ण विकास के लिये उनका वृहत्तर संसार में जन्म होता है। क्या तुम यह अनुभव नहीं करते कि तुम्हारा दूसरा जन्म हमारे बीच हुआ है? इस दूसरे जन्म के साथ ही मानवता के हृदय में तुमने अपना उचित स्थान पाया है।

स्ट्रैसबर्ग एक सुन्दर नगर है और आज प्रातःकालीन प्रकाश सुन्दर है। धूप मेरे रक्त में मिश्रित हो गई है और उसने अपनी छाप से मेरे विचार सुनहले कर दिये है और मैं गाना चाहता हूँ। इस गाने का भाव है "आओ, बन्धुओ, निरर्थक गानों से हम इस प्रातःकाल को नष्ट कर दें।"

जिस कमरे में मैं बैठा हूँ वह बहुत सुन्दर है। उसकी खिड़कियों से ब्लैक फ़ॉरेस्ट (जंगल) की किनारी दिखाई देती है। जिसके यहाँ हम ठहरे हैं वह एक परिष्कृत महिला है जिसके एक मोहक बच्ची है। उसकी मोटी अंगुलियाँ मेरे चश्मे के शीशों का रहस्य खोजने में बहुत स्वाद लेती हैं।

इस स्थान में कितने ही भारतीय विद्यार्थी हैं जिनमें से एक लाला हर किशन लाल का पुत्र है। उसने मुझसे तुम्हें सादर नमन के लिये कहा है। वह एक सुन्दर युवक है—प्रसन्नवदन और निष्कपट और अपने अध्यापकों का प्रिय।

इस सप्ताह के पत्रों को हमने खो दिया है जिनको प्रकटतः अब पाना संभव नहीं है। इस कुसेवा के लिये भूमध्य सागर को क्षमा करना, मेरे लिये कठिन है। वर्तमान सप्ताह की डाक का समय हो गया है और यदि टॉमस कुक एन्ड सन्स इसमें देरी न करें तो अपने पत्र हमको आज मिल जायेंगे।

जेनेवा,
६ मई, १९२१

आज मेरा जन्म-दिवस है। किन्तु मुझे उसका भान नहीं होता; वास्तव में यह दिन मेरे लिये नहीं है किन्तु उनके लिये है जो मुझे प्रेम करते हैं और तुमसे दूर यह दिन केवल कैलेण्डर की एक तारीख की तरह है। मैं चाहता था कि

आज कुछ समय मेरा बिलकुल अपना होता किन्तु यह संभव नहीं हुआ। सारे दिन मिलने-जुलने आते रहे हैं और बराबर बात होती रही हैं। बात-चीत का कुछ अंश दुर्भाग्य से राजनीति से संबधित था और उससे मन जगत का वह तापक्रम बढ़ा जिसका मुझे सदा पछतावा होता है।

राजनैतिक विवाद अक्सर मुझे ज्वर की भाँति बिना किसी पूर्वाभास के अकस्मात घेर लेता है और फिर वह अकस्मात ही मुझे छोड़ जाता है और बाद में बच रहती है, बेचैनी। राजनीति मेरे स्वभाव के बिलकुल विपरीत है तथापि एक ऐसे हतभाग्य देश की असाधारण स्थिति में जन्म लेने के कारण, उनके जब-तब के उभार को हम नहीं बचा सकते। अब-जब मैं बिलकुल अकेला हूँ, मैं मना रहा हूँ कि मैं अपने मन को उस अनन्त-शान्ति की गहराई में स्थिर कर लूँ जहाँ दुनियाँ की सारी गलतियाँ क्रमशः अपने बेमुरेपन से पुष्प और तारों की शाश्वत लय में मिल जातीं हैं।

परन्तु संसार भर में मनुष्य पीड़ित हैं और मेरा हृदय रुग्ण है। मैं चाहता हूँ कि इस पीड़ा को संगीत से बेधने की मुझमें क्षमता होती। मैं जगत-आत्मा के अन्तरंग प्रदेशों से स्थायी आनन्द का सन्देश ला सकता और उसको क्रुद्ध पुरुषों और लज्जा से नतमस्तक पुरुषों के सामने दुहरा सकता : सभी चीजों की उत्पत्ति आनन्द से होती है, आनन्द से ही सभी प्रतिपालित हैं और आनन्द की ओर प्रवाहित हैं और उसी में उसका अन्त हो जाता है।"

मैं वह क्यों होऊँ जो अपनी शिकायतों को दबा दे और क्षोभ की भावनाओं को एक चीत्कारपूर्ण स्वरूप दे। मैं सत्य की उस महान् शान्तता के लिये प्रार्थना करता हूँ कि जिसमें वे अमर शब्द निकले हैं जो संसार के घावों को अच्छा करेंगे और घृणा की लपकती आग को सहिष्णुता में परिणित कर शान्ति देंगे।

पूर्व और पश्चिम मिले हैं—इतिहास की इस बड़ी बात ने अभी तक हमारी दयनीय राजनीति ही पैदा की है, कारण, यह अभी सत्य में परिणित नहीं की गई। सत्य-हीन बात, दोनों दलों के लिये भार है। कारण, लाभ का भार भी हानि के भार से कुछ कम नहीं है—यह बेहद मोटाई का भार है। पूर्व और पश्चिम के मिलन की बात अब भी सतह पर है, वह बाहरी है। परिणाम यह

है—हमारा सारा ध्यान इस सतह पर खिंच आता है जहाँ कि हमको चोट लगती है या हम केवल भौतिक लाभ की ही सोच सकते हैं।

इस मिलन की गहराई में, भविष्य के महामिलन का बीज निश्चय ही पनप रहा है। जब हम यह अनुभव करते है तो बिलकुल वर्तमान के दुःखद खिंचाव से हमारा मन अपनी अनासक्ति पाता है और उसका शाश्वतः मे निश्वास होता है—आत्मन्तिक निराशा के दौरों से उसे छुटकारा मिलता है। हमने पूर्वजों से यह जाना है कि सभी होने वाली घटनाओं का शाश्वत अर्थ अद्वैतवाद है—जो द्वैत के बीच ऐक्य का सिद्धान्त है। पूर्व और पश्चिम के द्वैत मे; वह ऐक्य है। अतः उसका एकीकरण मे अन्त निश्चय है।

उस महा सत्य को तुमने अपने जीवन में प्रदर्शित किया है। तुम्हारे भारत के प्रति प्रेम में, अनन्त का सन्देश है। तुमने, पूर्व और पश्चिम के प्रकटतः संघर्ष मे, उनकी अन्तर्संधि के महान् सौंदर्य को उघाड़ा है। हमने, जो प्रतिकार के लिये हल्ला मचा रहे हैं; जो केवल भिन्नता के प्रति सजग हैं और इस कारण बिलकुल प्रथक्करण की आशा करते हैं, अपने इतिहास के महान् उद्देश्य को ठीक ठीक नहीं पढ़ा हैं।

तीव्र कामना अंधकार है। वह बिखरी बातों को अतिरंजित करती है और पग-पग पर हमारे मन को उनसे टकरा देता है। प्रेम ही वह प्रकाश है जो ऐक्य की पूर्णता को प्रकट करता है और जो अनासक्ति के निरन्तर दबाव से रक्षा कर सकता है।

इस कारण मैं तुम्हारा आलिंगन करता हूं और तुम्हारे प्रेम से प्रेरणा लेता हूं और तुमको अपने जन्म-दिन का नमस्कार भेजता हूं।

ज्यूरिच के निकट १० मई १९२१

अभी-अभी मैंने जर्मनी से एक समिति द्वारा जिसके यूकेन हार्नाक, हाप्टमैन आदि सदस्य है, जन्म-दिवस शुभकामनायें प्राप्त की हैं और उसके साथ ही एक ४५० मूल्यवान जर्मन पुस्तकों का अत्यन्त उदार उपहार मिला है। उसने मेरे अन्तस्तल का स्पर्श किया है और मुझे, विश्वास है कि मेरे देशवासियों के हृदय में उसका प्रत्युत्तर होगा।

कल ज्यूरिच में मेरा निमंत्रण है और इस मास की १३ को मैं स्विट्ज़रलैण्ड से जर्मनी को प्रस्थान करूँगा क्या अपने किसी पत्र में मैंने यह नहीं बताया कि मेरा जीवन-प्रवाह अपने दैवी नामराशी रवि की भाँति रहा है और मेरी अन्तिम घड़ियों पर पश्चिम का अधिकार है ? और उसका यह अधिकार कितना सच्चा था इसको मैंने यूरोप-भ्रमण से पहले कभी अनुभव नहीं किया। इस सुअवसर के लिये मैं हृदय से कृतज्ञ हूं, केवल इस कारण नहीं कि अपने बन्धुओं से आदर पाना कितना मधुर है वरन् उसने मुझे यह अनुभव करने में सहायता दी है कि जो प्रकटतः हमसे इतने भिन्न प्रकट होते हैं उन पुरुषों के हम कितने निकट हैं।

हमारे लिये भारत में ऐसा बिरला ही अवसर होता है कारण, हम शेष जगत से अलहदा हो गये हैं। हमारे लोगों के मन में इसकी दो ढंग से प्रतिक्रिया हुई है। इसने हमारे अन्दर दृष्टि की उस प्रान्तीयता को उत्पन्न किया है जो या तो बेहद शेख़ीख़ोर बना देती है कि भारत हर ढङ्ग से अनुपम और असधारण है— अन्य देशों से बिलकुल भिन्न—या उस आत्म'दैन्य की ओर ले जाती है जिसमें आत्म-हत्या की म्लान दशा होती है । यदि बौद्धिक सहयोग के निस्वार्थ माध्यम द्वारा हम पश्चिम के सच्चे सम्पर्क में आ सकें तो हम मानव-जगत का सच्चा चित्र पा सकेंगे और उससे अपने सम्बन्ध को गहरा और विस्तृत करने की संभावना में विश्वास होगा। हमको यह विश्वास होना चाहिये कि जीवन और संस्कृति की पूरी अलहदगी कोई ऐसी चीज़ नहीं है जिसका किसी जाति को अभिमान हो। अंधेरे तारे अलहदा पड़े रहते हैं किन्तु चमकते हुए तारे शाश्वतः सामूहिक प्रकाश के सदस्य बने रहते हैं।

जब वह अपनी प्रतिभा से पूरी तरह ज्योतिर्मय थे तो यूनान और भारतवर्ष अपनी संस्कृति के एकान्त में बन्द नहीं थे संस्कृति की एक कहावत का भाव है" जो दिया नहीं जाता वह खो जाता है। अपने को पाने के लिये भारतवर्ष को देना चाहिये किन्तु देने की यह शक्ति तभी पूर्ण हो सकती है जब यह ग्रहण करने की शक्ति के साथ हो। जो दे नहीं सकती और केवल बहिष्कार करती है, वह मृत है। पश्चिमी सस्कृति के बहिष्कार की पुकार के एक मात्र माने हैं—पश्चिम को कुछ देने की क्षमता को कुचल देना । कारण, मानव

जगत में जैसा कि मैंने कहा देने का अर्थ है विनिमय। यह एकांगी नहीं है। हमारी शिक्षा की पूर्णता पश्चिम के पाठों को स्वीकार न करने में नहीं होगी अपनी परम्परागत देन को पूरी तरह समझने में। इससे हमको वह साधन मिलेंगे कि हम अपने पाठों का मूल्य दे सकें। हमारी बौद्धिक एवं भौतिक सम्पत्ति बाहरी प्राप्ति में नहीं है वरन् अपने निजी, स्वतंत्र विकास में है।

अब तक हमारी बौद्धिक उपलब्धि बाहरी दान पर निर्भर थी--हम बाहर से लेते रहे हैं, उपजाते नहीं रहे। इस कारण यह उपलब्धियाँ अधिकतर उत्पादन शून्य रही हैं जिनकी मैंने अपनी 'शिक्षा' पुस्तिका में विवेचना की है। किन्तु ऐसी निरर्थकता के लिये पश्चिमीय संस्कृति को दोष देना गलत होगा। उसका दोष है हम में कि हमने इस संस्कृति के लिये अपने पात्र का उपयोग नहीं किया। बौद्धिक देशभक्त से मन के बौद्धिक अवयवों का अधःपतन होता है। जिससे बचना है वह भोजन नहीं है—वह है टुकड़े खोरी।

साथ ही वर्तमान भारत के ऐसे महापुरुषों को जैसे राम मोहन राय हैं, हीन बताने की महात्मा गाँधी की बात का मैं तीव्र शब्दों में विरोध करता हूं *। यह उन्होंने देश को वर्तमान शिक्षा के चंगुल से मुक्त करने के जोश में कहा है।

प्रत्येक भारतीय को अभिमान होना चाहिये कि भारी कठिनाइयों के होते हुए भी, भारत अपने बच्चों में अब भी ऐसा महान व्यक्तित्व पैदा कर सकता है जैसा कि हमको राम मोहन रॉय में मिलता है। महात्मा गाँधी ने मध्य कालीन भारत के सन्त नानक, कबीर आदि का उदाहरण दिया है। वे महान् थे कि अपने जीवन और उपदेशों में उन्होंने हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों को घुला मिला दिया। रूप की भिन्नता के होते हुए इस प्रकार के आध्यात्मिक ऐक्य की अनुभूति भारत के अनुरूप है।

वर्तमान युग में राम मोहन रॉय में वह मन की विशालता थी कि वे हिन्दू और मुस्लिम एवं ईसाई संस्कृतियों के मौलिक आध्यात्मिक ऐक्य को अनुभव कर सके। इसी कारण उन्होंने सत्य के पूर्ण स्वरूप में भारत का प्रतिनिधित्व किया और इस सत्य का आधार बहिष्कार नहीं, पूर्ण रूप से अङ्गीकार करना है।

* गांधीजी ने किसी स्थल पर जो कहा था और उसका भाव यह है :— नानक कबीर आदि के सामने राममोहन रॉय बच्चे हैं।

राममोहन रॉय पश्चिम को अपनाने में बिलकुल स्वाभाविक हो सकते हैं और इसी कारण उनका यह गौरव था कि वे पश्चिम के मित्र थे । यदि वर्तमान भारत द्वारा वह नहीं समझे जाते तो उससे तो केवल यही प्रकट होता है कि उसके अपने सत्य का उज्ज्वल प्रकाश इस समय तीव्र आवेश के तूफ़ानी बादलों से ढक गया है ।

———

हेमबर्ग
१७ मई १६२१

इस देश में मेरे भ्रमण में मेरे ऊपर कृपा की एक अनोखी धूप छाई रही है । जहाँ मुझे इससे हर्ष होता है, वहाँ मैं हैरान भी हो जाता हूं । मेरे पास इन व्यक्तियों के लिये क्या है ? किन्तु बात यह है कि रात्रि के आमोद-प्रमोद के बाद वे दिवसारंभ की प्रतीक्षा में हैं और वे पूर्व से प्रकाश की आशा लगाये हुए हैं ।

क्या हम भारत की आत्मा में उस प्रातःकाल की हलचल को अनुभव करते हैं जो सारे संसार के लिये है ? क्या मनुष्य के महान् भविष्य के संगीत के लिये उसके इकतारा का तार मिलाया जा रहा है ? वह स्वर एक-एक कोने से प्रत्युत्तर पाकर पुलकित हो उठेगा । मध्यकालीन भारत के संतों के हृदय में—जैसे कबीर और नानक मु—ईश्वर प्रेम, मानव प्रेम की तरह बरस पड़ा और उसने हिन्दू-मुस्लिम के बीच की भिन्नता की सीमाओं को डुबा दिया ।

वे लोग महाकाय थे, बौने नहीं थे क्योंकि उनको आध्यात्मिक दर्शन था जिसका फैलाव शाश्वत में था—उस समय की सारी सीमाओं को पार कर रहा था । उनके समय की अपेक्षा आज मानव जगत बहुत बढ़ गया है; राष्ट्रीय हितों और जातीय परम्पराओं के संघर्ष आज दृढ़तर और जटिलतर हैं; राजनैतिक आँधियाँ अंधा करने वाली हैं; जातीय विरोध के बवंडर बराबर बने रहना चाहते हैं; उनसे होने वाली पीड़ा संसार व्यापी और गहरी है । वर्तमान युग दैवी वाणी की प्रतीक्षा में है, जो महान हो पर साथ ही सरल हो और जो घावों को भर सके और नये पदार्थों का सृजन कर सके । जिस चीज ने मेरा हृदय हिला दिया है, वह यह बात है, कि इस महाद्वीप का पीड़ित 'मानव' पूर्व की ओर आशा से देख रहा है ।

यह कोई राजनैतिक पुरुष नहीं है, कोई विद्वान नहीं है वरन् यह वह साधारण मनुष्य है जिसका विश्वास सजीव है। हमको उसकी सहज खोज में विश्वास करना चाहिये और उसकी आशा हमारे लिये अपनी सम्पति पाने में प्रेरक हो।

विक्षेप-बाहुल्य के होते हुए भी जिसमें इधर अधःपतन हुआ है, वह भारत अपने हृदय में अब भी उस अमर मंत्र का—शान्ति, भलाई और ऐक्य का—पोषण करता रहता है।

'सत्यम्, शिवम्, अद्वैतम्'

'सर्वत्र एक' का सन्देश जो भारत के एकान्त वनों की छाया में घोषित हुआ था, वह, भाईचारे को भूले हुई, अंधकार में लड़ने वाले मनुष्यों में मिलाप के लिये प्रतीक्षा कर रहा है।

वर्तमान भारत के सब मनुष्यों में राम मोहन रॉय सर्वप्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने इस सत्य को अनुभव किया। उन्होंने उपनिषद् की उस पवित्र ज्योति को ऊँचा रखा जिसके द्वारा अहम पर विजय प्राप्त करने वाले सबके हृदय में प्रवेश पाते हैं—वह प्रकाश जो बहिष्कार के लिये नहीं आलिंगन के लिये है।

मुसलमान भारत में एक ऐसी संस्कृति लेकर आये जो उसकी अपनी संस्कृति से आक्रामक रूप से विरोधी थी। किन्तु उसके सन्तों में उपनिषदों की भावना काम कर रही थी जिसके द्वारा प्रकृतः न मिल सकने वाली चीज़ों में मौलिक सामंजस्य प्राप्त किया जा सके। राम मोहन रॉय के समय पश्चिम, पूर्व में ऐसा आघात लाया था कि जिसके कारण भारत के हृदय में खलबली मच गई। किन्तु यह आवाज़ थी भय की, दुर्बलता की और एक बौने की। राम मोहन रॉय के महान् मस्तिष्क द्वारा भारत की सच्ची आत्मा ने अपने को प्रकट किया और पश्चिम को अपनाया--भारत की आत्मा को त्याग कर नहीं वरन् पश्चिम की आत्मा का आलिंगन करके।

वह मंत्र जो सब वस्तुओं के अन्तर में प्रवेश पाने के लिये आध्यात्मिक दृष्टि देता है, वह भारत का मंत्र है—शान्ति, भलाई और ऐक्य का मंत्र--शान्तम्, शिवम्, अद्वैतम्। पश्चिम का भटका हुआ मन भारत के द्वार पर इसी के लिये खटखटा रहा है। क्या उसका उत्तर दूर रहने का कर्कश स्वर होगा?

हैमबर्ग
२० मई १९२ १

मैं विश्वास करता हूँ कि मेरी लम्बी यात्रा अब समाप्त होने वाली है। प्रतिक्षण में समुद्रतट की पुकार सुन रहा हूँ और क्लान्त यात्री के पुनरागमन को निहारते हुए सायंकालीन दीपक का चित्र भी मुझको दिखाई पड़ रहा है। किन्तु एक विचार बराबर मेरे मस्तिष्क में चक्कर काट रहा है। वह यह है--कि समुद्रपार यात्रोपरान्त जर्जरित नौका का शायद दैनिक यातायात के अनेक प्रकार के काम-काजों में उपयोग किया जाय।

आज संसार में जीवन कहीं भी अपने उचित स्वरूप में नहीं है। सारे वायुमंडल में समस्याएँ छा रही हैं। गायक गा नहीं सकते; उनको सन्देश सुनाने होते हैं। परन्तु मेरे प्रिय मित्र, क्या मेरा जीवन ध्रुव प्रदेश के ग्रीष्म के बराबर बने रहने वाले प्रकाशमय दिन की भाँति होगा जिसमें लगातार कर्त्तव्य बने रहेंगे? और क्या कभी भी वह तारों भरी रात मेरे सामने नहीं आयगी जो अनन्त के लिये अपने द्वारपट खोले? क्या यह हमको अपने उस अधिकार को नहीं जताती कि हम उस प्रदेश में प्रवेश करें जो देशभक्ति की सीमाओं के परे है? कब मैं अपने जीवन की अन्तिम व्यवस्था करने और आत्म-जगत के निमंत्रण के लिये तैयार होने जा रहा हूँ।

हमारे पश्चिमी स्कूलाध्यपकों द्वारा यह पढ़ाया जाता है कि ऐसी महत्व की कोई चीज नहीं है जो हमारे स्कूल के राष्ट्रीय नक्शे में न दिखाई गई हो; कि केवल मेरा ही देश, मेरा स्वर्ग है मेरा भूमंडल है; केवल इसी देश में अमरत्व और जीवन मिले हैं। और जब हम भारतीय, देशाभिमान में पश्चिम को तजना चाहते हैं, तो हम अधकचरे चोर की तरह उसी पश्चिम की जेब कतरते हैं और केवल बहिष्कार की भावना को हथियाते हैं।

किन्तु हमारे पूर्वजों को सत्य और स्वतंत्रता की जिसके पंख नहीं कटे थे और जो भौगोलिक पिंजड़े में बन्द नहीं थी, अधिक सही चेतनता थी। मैं समझता हूँ कि उस सत्य को अनुभव करने का मेरा समय आ गया है; और मैं प्रार्थना करता हूँ कि मैं कभी भी देशभक्त या राजनीतिज्ञ की भाँति न मरूँ बल्कि मेरी मृत्यु एक स्वतंत्र आत्मा की भाँति हो; वह एक सम्पादक की भाँति न होकर एक कवि की भाँति हो।

स्टॉक हॉम
२६ मई, १६२१

स्विट्ज़रलैंड से डेनमार्क और वहाँ से स्वेडन के मार्ग को मैं देखता आया हूँ और सर्वत्र मैंने फूलों को विचित्र रंगों के साथ फूलते देखा। और यह मुझे पृथ्वी का विजयघोष-सा मालूम देता है जो अपनी रंगीन टोपी को आकाश में उछाल रही है। पश्चिम में, मेरे मार्ग में भी स्वागत-बाहुल्य इसी भाँति छलका है।

आरंभ में तो ऐसा मन हुआ कि तुमको सविस्तार लिखूँ; क्योंकि मुझे निश्चय था कि इससे तुमको बहुत हर्ष होगा। किन्तु अब ऐसा करने से मैं सकुचता हूँ। क्योंकि किसी कारण से इससे मुझे इससे मनोल्लास नहीं होता, वरन उदासी आती है। जो कुछ मुझे भेंट किया गया है उसे बिलकुल अपना कहना मुझे अनुचित मालूम देता है। बात यह है कि पश्चिम के हृदय में एक ज्वार आया है और वह आकर्षण के किसी रहस्यपूर्ण नियम के साथ पूर्व की ओर दौड़ रहा है। यूरोपिय पुरुषों के अति अभिमान को अचानक रुकावट मिली है और उनका मन उन धाराओं में से जो उसने अपने लिये तैयार की थी, हट आना चाहता है।

दैत्य थका होने के कारण शान्ति चाहता है और क्योंकि शान्ति-स्रोत सदैव पूर्व से बहा है, पीड़ित यूरोप का मुँह अज्ञात अन्तर्प्रेरणा से पूर्व की ओर देख रहा है। यूरोप उस बच्चे की तरह है जिसको खेल के बीच में ही बन्द कर दिया गया है। वह भीड़ से बचना चाहता है और माँ की खोज में है। और क्या आध्यात्मिक मानव-जगत का पूर्व ने लालन-पालन नहीं किया और अपने जीवन में से उसे जीवन नहीं दिया?

यह कितना दयनीय है कि यूरोप से हमारे द्वार पर आने वाले इस सहायता के निवेदन से हम अनभिज्ञ हों; कि हम उसकी आवश्यकता की घड़ियों में मानव-सेवा की पुकार जैसे महत् सम्मान को अनुभव करने में असमर्थ हों।

इन देशों में अपने सम्मान में इन भारी प्रदर्शनों से मैं हृदय में हैरान हूँ और मैंने जब तब उनका वास्तविक कारण जानने का प्रयत्न किया है। मुझे बताया गया है कि उसका कारण है कि मैंने मानवता को प्रेम किया है। मैं

आशा करता हूँ कि यह सच है; और मेरे सारे लेखों में मेरा मानव-प्रेम प्रकट हुआ है और उसने सारी सीमाओं को पार करके मानव-हृदय स्पर्श किया है। यदि यह सच है तो अब मेरे लेखों का वह शुद्ध सत्य मेरा जीवन निर्देश करे।

कुछ दिन हुए जब मैं हेमबर्ग के होटल में अपने कमरे में अकेला आराम कर रहा था, उस समय मेरी भेंट के लिये पुष्पांजलि लिये हुए, दो शरनी ली प्रिय जर्मन बच्चियाँ चुपके से मेरे कमरे में आईं। उनमें से एक ने टूटी फूटी अंगरेजी में मुझसे कहा, "मैं भारत से प्रेम करती हूँ।" मैंने उससे पूछा, "तुम भारत से क्यों प्रेम करती हो?" उसने उत्तर दिया, "क्योंकि तुम ईश्वर से प्रेम करते हो।"

यह इतनी बड़ी प्रशंसा थी कि विनम्रता पूर्वक उसको स्वीकार करना कठिन था। किन्तु मैं समझता हूँ उसका अर्थ उस आशा से था जो मेरे प्रति थी और इसी कारण वह आशीर्वाद थी। या संभवतः उसका आशय यह था कि मेरा देश ईश्वर से प्रेम करता है इस कारण वह भारत से प्रेम करती है वह भी एक आशा थी जिसका आदर करने और समझने का हमको प्रयत्न करना चाहिये।

राष्ट्र अपने देश से प्रेम करते हैं; और उस राष्ट्रीय प्रेम ने एक दूसरे के प्रति घृणा और सन्देह पैदा किये हैं। संसार एक ऐसे देश की प्रतीक्षा में है जो अपने को नहीं ईश्वर को प्रेम करता है। केवल उसी देश को सारे देश और सभी मनुष्य प्यार करेंगे।

जब हम अपने घरों से बन्दे मातरम् सुनते हैं तो हम अपने पड़ोसियों से कहते हैं, "तुम हमारे भाई नहीं हो।" किन्तु यह सच नहीं है और क्योंकि यह सच नहीं है इस कारण यह वायुमंडल को दूषित करता है और आकाश में अंधेरा छा जाता है। वर्तमान में उसका चाहे जो उपयोग हो यह तो गोश्त भूजने के लिये मकान में आग लगाने की भाँति है। अपने का प्रेम, चाहे वह व्यक्तिगत हो चाहे राष्ट्रीय उसका एक ही परिणाम है—आत्म-हत्या। हमारा पूर्ण विकास केवल ईश्वर प्रेम है। उसमें सारी समस्याओं और कठिनाइयों का अन्तिम हल है।

परसों हम स्वेडन से बर्लिन को प्रस्थान करेंगे। जेकोस्लोविक सरकार ने

बर्लिन से प्राग और वहाँ से म्यूनिख तक हवाई यात्रा के लिये हमसे वादा किया है। म्यूनिख के बाद हमारी डार्म्सडैट पहुँचने की आशा है जहाँ जर्मनी के कुछ प्रतिष्ठित पुरुष हमसे मिलने को एकत्रित होंगे। यह कार्यक्रम १५ जून तक या उसी के लगभग समाप्त हो जायगा तब फ्राँस और स्पेन में होकर, यदि और जल्दी संभव नहीं हुआ तो कम से कम जुलाई आरम्भ में हम अपने जहाज पर पहुँच सकेंगे।

बर्लिन
२८ मई १९२१

आज रात जर्मनी से वियना के लिये प्रस्थान कर रहा हूँ। वहाँ से मैं ज़ैको-स्लोवेकिया जाऊँगा और तब पैरिस को—और तब भूमध्य सागर को। हमारा स्टीमर २ जुलाई को रवाना होगा और ऐसी हालत में संभवतः यह अन्तिम पत्र होगा।

तुम अनुमान नहीं कर सकते कि स्कैंडिनेविया और जर्मनी में जहाँ-जहाँ मैं गया हूँ, सर्वत्र कितना प्रेम मेरे चारों ओर उमड़ता रहा है। तथापि मेरी इच्छा अपने ही बन्धुओं में फिर पहुँचने की है। मैं जीवन भर वहाँ रहा हूँ, मैंने अपना काम-काज वहाँ किया है और अपना प्रेम भी वहीं दिया है और मुझे बुरा नहीं मानना चाहिये कि मेरे जीवन की फ़सल ने वहाँ पूरा-पूरा भुगतान नहीं किया है। फ़सल का पक जाना स्वयं मेरे लिये एक पारितोषिक है। इसी कारण मुझे उस क्षेत्र से पुकार आती है जहाँ धूप प्रतीक्षा में है; जहाँ ऋतुएँ बारी-बारी से मेरे गृहागमन की पूछताछ कर रही है। वे मुझ से जिसने जीवन भर अपने स्वप्नों के बीज बोये हैं, परिचित हैं। किन्तु मेरे मार्ग पर सायंकालीन छायाएँ गहरी होती जा रही हैं और मैं थका हुआ हूँ। अपने देश वासियों से मैं प्रशंसा और निन्दा कुछ नहीं चाहता। मैं तारों के नीचे विश्राम करना चाहता हूँ।

बर्लिन
४ जून १९२१

आज मेरा बर्लिन घूमना समाप्त हो गया है। आज रात हम म्यूनिख के लिये प्रस्थान करेंगे। इस देश में मुझे आश्चर्य जनक अनुभव हुआ है। जैसी

प्रशंसा मुझे मिली है उसे मैं गम्भीरता पूर्वक स्वीकार नहीं कर सकता। यह बिना सोच विचार के उतावलेपन से दी गई है। उसमें सोच विचार के समय का दृष्टिकोण नहीं है। यही कारण है कि मैं उससे परेशान हूँ और डरा हूं—यही नहीं उदास भी हूँ।

मैं गृह-दीपक की भाँति हूं जिसका स्थान एक कोने में है और जिसका संबंध प्रेम की घनिष्टता से है किन्तु जब मेरे जीवन को बलात आतिशबाजी के खेल में सम्मिलित होना पड़ता है तो मैं तारों से क्षमा प्रार्थना करता हूँ और कुछ छोटा जैसा अनुभव करता हूँ।

मैंने एक बर्लिन नाट्यशाला में 'पोस्ट ऑफिस' का अभिनय देखा। जिस लड़की ने अमल का स्वरूप लिया उसने सुन्दर अभिनय किया और कुल मिलाकर खेल सफल रहा। किन्तु 'विचित्रा' के अभिनय में हमारे आशय से इनके उस नाटक का अर्थ भिन्न था। उस भिन्नता को अपने मन में मैं स्पष्ट कर ही रहा था कि मार्बर्ग विश्वविद्यालय के डा० औटो ने जो दर्शकों में से थे उस चीज को छेड़ा। उन्होंने कहा कि जर्मन ढंग उसे परियों की कहानी बना रहा था जिसमें मनोरंजक सौन्दर्य था किन्तु वस्तुतः उस खेल का आध्यात्मिक उद्देश्य था।

मुझे उस समय की भावना का स्मरण है जिसकी प्रेरणा में मैंने इसे लिखा। अमल उस व्यक्ति का प्रतीक है जिसको मुक्ति मार्ग पर आने की पुकार मिल चुकी है—वह बुद्धिमानों द्वारा स्वीकृत, आदत के सुखद घरों और सम्माननीय व्यक्तियों द्वारा उसके लिए बनायी कठोर समितियों की दीवारों से छुटकारा पाना चाहता है। किन्तु माधव जो संसारी दृष्टिकोण से बुद्धिमान है अपनी बेचैनी को घातक रोग का चिन्ह समझता है और उसका सलाहकार चिकित्सक जो परम्परागत रूढ़ियों का समर्थक है—अपनी पुस्तकों में से कहावतों की सहायता से—सिर हिलाकर कहता है कि स्वतंत्रता भयंकर है और रोगी को दीवारों के अन्दर रखा जाय इसी कारण सावधानी रखी जाती है।

किन्तु उसकी खिड़की के सामने डाकखाना है और अमल राजा के पत्र की प्रतीक्षा में है जो स्वयं राजा से आवेगा और जिसमें मुक्ति का सन्देश होगा। अंत में स्वयं राजा के चिकित्सक द्वारा, बन्द द्वार खोला जाता है और परम्परागत धन

एवं मत मतान्तरों के संसार की दृष्टि में जो मृत्यु है, वही उसे आध्यात्मिक स्वतंत्रता के जगत में चेतना लाती है।

इस जागरण में जो चीज़ साथ बनी रहती है वह सुधा द्वारा छिपा प्रेम-पुष्प है।

मैं इस प्रेम का मूल्य जानता हूँ और इसी कारण रानी को मेरी प्रार्थना थी:

"मुझे अपने उपवन का माली बनने दो"—वह माली जिसका एक मात्र पारितोषिक नित्य ही रानी को पुष्पहार अर्पण करना है। क्या तुम समझते हो कि इस समय मेरे देश के लिये 'पोस्ट ऑफिस' का कोई अर्थ है—इस सम्बन्ध में कितनी स्वतन्त्रता सीधे राजा के सन्देश वाहक से आनी चाहिये न कि ब्रिटिश पार्लियामेन्ट से, और जब उसकी आत्मा जगेगी तब कोई चीज़ उसे दीवारों में बन्द करके रख न सकेगी? क्या उसे अभी तक राजा का वह पत्र मिला है?

आज ५ जून है और हमारा स्टीमर ५ जुलाई को रवाना होगा।

डार्म्सडैट
२१ जून १९२१

यहाँ जर्मनी के सभी भागों का समुदाय मुझसे मिलने को एकत्रित हुआ है। हमारी भेंट ग्रैंड ड्यूक के उपवन में होती है जहाँ उपस्थित व्यक्ति मुझसे प्रश्न करते हैं। मैं एक-एक करके उत्तर देता हूँ। और काउण्ट कैसरलिंग उनका अनुवाद जर्मनी में उन लोगों के लिये करते है जो अंगरेज़ी समझ नहीं पाते।

कल मैं यहाँ आया था और तीसरे पहर हमारी पहली सभा हुई थी।

पहला प्रश्न जो मुझसे एक कनाडा निवासी जर्मन ने किया वह यह था: "हमारी वैज्ञानिक सभ्यता का भविष्य क्या है?"

जब मैंने उसका उत्तर दे दिया तो उसने फिर पूछा, "जनवृद्धि की समस्या कैसे हल होगी?"

अपने उत्तर के बाद मुझसे बौद्ध धर्म के सच्चे स्वरूप का आभास देने को कहा गया।

इन तीनों विषयों में पूरे तीन घण्टे लगे। इन लोगों की उत्सुकता देख कर हर्ष होता है। उनमें जीवन की बड़ी समस्याओं को सोचने की मनोवृत्ति है। वे

विचारों पर गंभीरता पूर्वक ध्यान देते हैं। भारतवर्ष में अपने आजकल के स्कूलों में हम परीक्षा पास करने के लिये पाठ्य-पुस्तकों से विचार लेते हैं; इसके अतिरिक्त हमारे स्कूल अध्यापक अंगरेज हैं; और सारी पश्चिमीय जातियों में ये विचारों से सबसे अधिक अछूते हैं। वे ईमानदार हैं, विश्वसनीय किन्तु उनमें पशुवृत्तियों का इतना बाहुल्य है कि घुड़दौड़, शिकार मुक्केबाजी आदि में लगे रहते हैं और विचारों के संक्रमण का घोर विरोध करते हैं।

इस कारण हमारे आंग्ल-अध्यापक हमारे मन को कोई प्रेरणा नहीं देते। हम यह अनुभव नहीं करते कि सच्चा जीवन रहने योग्य होने के लिये विचार आवश्यक हैं। हमारे अन्दर वह सच्चा उत्साह नहीं है जो कि आत्मा का उपहार है। हमारा मुख्य काम और व्यापार राजनैतिक शक्तिक्षय हो गया है जिसका उद्देश्य है सफलता—जिसका मार्ग टेढ़ा और सिद्धान्तों के साथ समझौते का है—वह राजनीति जिसने हर देश के नैतिक मापदण्ड को गिरा दिया है और जिसके कारण निरन्तर झूठ, धोखेबाजी क्रूरता और पाखंड पैदा हो गये हैं और निरर्थक अहङ्कार की राष्ट्रीय आदतें बेहद बढ़ गई हैं।

एस० एस० योरिया,

५ जुलाई, १९२१

अपने आतिथ्य के प्रत्युत्तर में पृथ्वी का मनुष्य पर अधिकार होता है, किंतु समुद्र का कुछ नहीं; वह शानदार उपेक्षा से मानवता को एक ओर रख देता है: उसका जल आकाश के साथ एक शाश्वत संवाद में लगा हुआ है—ये दो अभिन्न साथी अपने जन्म के प्रथम दिन के उत्तरदायित्व-विहीन बचपन को बनाये हुए हैं।

पृथ्वी हमारे ऊपर उपयोगिता का आदेश लादती है और हमको व्याख्यानों और पाठ्य-पुस्तकों में लगा रहना होता है और हमारे संरक्षकों को हमें फटकारने का अधिकार है जब हम अच्छे कागजों को साहित्यिक कागजी नाव बनाने में नष्ट करते हैं। किन्तु हमारे लिये नैतिक कृतज्ञता के लिये समुद्र की कोई प्रेरणा नहीं है; व्यवस्थित जीवन के लिये उसके पास कोई आधार नहीं है; उसकी लहरें संकेत करती हैं और उनके पास एक ही संदेश है; 'चले चलो'।

मैंने स्टीमर पर देखा है कि किस भाँति नर और नारी मनसिज के खिलवाड़ों में बह जाते हैं क्योंकि पानी में हमारी उत्तरदायित्व की भावना को बहाले जाने की शक्ति है; और वह जो पृथ्वी पर देवदारु की भाँति दृढ़ होते हैं, समुद्र में आकर समुद्री-घास की तरह बहने लगते हैं। समुद्र इनको यह भुला देता है कि मनुष्य वह प्राणी है जिसकी अनंत जड़ें हैं और जो पृथ्वी के उत्तरदायी हैं। इसी कारण जब महानदी पद्मा के वक्ष पर मेरा निवास था मैं एक संगीतमय कवि से अधिक कुछ नहीं था किंतु जब से मैंने शांतिनिकेतन में आश्रम लिया है, एक स्कूलमास्टर बनने के सारे लक्षण मुझमें बढ़े हैं और इस बात की आशंका है कि मेरा जीवन एक सच्चे देवदूत की भाँति समाप्त होगा। अभी से ही लोग मुझसे सन्देश माँगते है और वह दिन आ सकता है कि मुझे उन्हें निराशा करने में भय लगे। कारण जब अकस्मात देवदूत प्रकट होते हैं तो उनके प्राण ले लिये जाते हैं; किन्तु वे जिन्हें मनुष्य उत्साह पूर्वक देवदूत समझते हैं, यदि अपना काम पूरी तरह न करें तो उपहास से उन्हें मिटा दिया जाता है। पहलों की क्षतिपूर्ति होती है कि वह अपना काम, धर्महित प्राणदान से पूरा करते। किन्तु दूसरी के लिये उनको दुःखद अन्त नितान्त निरर्थकता हैं; उससे न मनुष्य ही सन्तुष्ट होते हैं और न देवता।

संकट से कवि की रक्षा कौन करेगा? क्या कोई मेरी 'निरर्थकता' दे सकता है? क्या कोई मुझे पुनः वह संबल ला सकता है जिससे मैंने सत्य-प्रदेश के लिये अपनी जीवन यात्रा आरंभ की थी? एक दिन अपनी प्रसिद्धि से बाहर आने के लिये मुझे लड़ना होगा; क्योंकि इन बड़ी, बढ़ती हुई दीवारों में होकर पद्मा की पुकार अब भी मेरे पास आती है। वह मुझसे कहती है; "कवि तुम कहाँ हो?" और मेरे मन-प्राण उस कवि को खोजते हैं। उसको पाना कठिन हो गया है क्योंकि मनुष्यों के बृहत समुदाय ने उस पर सम्मान का ढेर कर दिया है और उनके नीचे से वह निकाला नहीं जा सकता। मुझे अब पत्र समाप्त कर देना चाहिये, कारण जहाज़ के एञ्जिन की धड़कन की गति मेरी क़लम की गति से भिन्न है।

मैं अनुमान करता हूँ कि तुमने पत्रों में पढ़ लिया है कि योरोप में मेरा बहुत बड़ा स्वागत हुआ है। निस्सन्देह अपने प्रति उन पुरुषों की उदार भावनाओं

के लिये मैं कृतज्ञ हूँ किन्तु किसी कारणवश अपने अन्तस्तल में मैं हैरान और व्यथित था।

एक बड़े मानव-समुदाय द्वारा प्रदर्शित भावना में एक अधिकांश अवास्तविक होता है। समूकि मन की सामूहिक भावनाओं के कारण उसमें अत्युक्ति हो ही जाती है। यह उस आवाज की तरह है जो एक बड़े कमरे में चारों तरफ से गूँज जाती है। उसका एक बड़ा अंश संक्रमण है—वह तर्क से असंगत है; और सभा के हर सदस्य को स्वतंत्रता है कि वह अपने ढंग से कल्पना करें और अपनी सम्मति बनायें। उनका मेरे बारे में विचार, जो मैं हूँ, वह नहीं हो सकता। मैं उसके लिये और अपने लिये दुःखी हूँ। इससे मुझमें एक लालसा होती है कि अपने पहले प्रसिद्धिहीन स्थान में जाकर शरण लूँ। दूसरे पुरुषों के भ्रमों से निर्मित संसार में रहना घृणास्पद है। मैंने देखा है मेरे चारों ओर घिर कर लोग मेरी पोशाक के छोर को पकड़ना चाहेंगे, उसको श्रद्धापूर्वक चूमना चाहेंगे—इस सबसे मेरा हृदय दुखी होता है। मैं इन लोगों को यह कैसे विश्वास दिलाऊँ कि मैं उन्हीं लोगों में से हूँ, मानवोपरि नहीं हूँ और यहाँ तक कि उनमें से कितने ही मेरी श्रद्धा के पात्र हैं।

फिर भी मैं निश्चय पूर्वक जानता हूं कि उनके बीच एक भी व्यक्ति ऐसा कवि नहीं है जैसा कि मैं हूं किन्तु इस प्रकार की श्रद्धा कवि के लिये नहीं है। कवि तो जीवनोत्सव में काम कराने के लिये है; उसके पारितोषिक स्वरूप, जहाँ उसको समझा जाय ऐसे सब उत्सवों में उसे खुला निमत्रण होना चाहिये। यदि वह सफल है तो वह 'मनुष्य' के शाश्वत साथ के लिये नियुक्त कर दिया जायगा—एक निर्देशक की भाँति नहीं एक साथी की भाँति। यदि किसी भाग्य के पागलपन से मैं किसी वेदी पर जमा दिया जाऊँ, तो मैं अपने सच्चे आसन से वंचित ही हो जाऊँगा—जिस पर मेरा ही अधिकार है और किसी दूसरे का नहीं।

एक कवि के लिये इस जीवन में पारितोषिक खो देना कहीं उत्तम है, इसकी अपेक्षा कि उसे कहीं झूठा पारितोषिक मिले या अत्यधिक परिमाण में मिले-वह व्यक्ति जो प्रशंसक समूहों से बराबर आदर पाता है उसको ऐसी मानसिक टुकड़े-खोरी का आदी होने का भारी खतरा है। उसमें जाने अनजाने उसके लिये

श्यकता होती है—वह कवि के अवकाश ग्रहण करने या अपने में आने के लिये छुट्टी नहीं दे सकता।

मेरी अन्तर्प्रकृति में इसी कारण संघर्ष होता है और मैं बहुधा यह सोचता हूँ कि भलाई का पथ-निर्देश सदैव सर्वोत्तम नहीं होता। तथापि मेरे लिये उसकी पुकार स्वाभाविक होने के कारण मैं उसकी बिल्कुल उपेक्षा नहीं कर सकता। किन्तु जो बात मुझे बराबर चुभती है वह यह है कि संगठन कार्य में मुझे उन लोगों का उपयोग करना होता है और उनसे बरतना होता है जिनका सृजनात्मक आदर्श की अपेक्षा भौतिक भाग में अधिक विश्वास होता है।

मेरा काम, काम की सफलता के लिये नहीं, उस आदर्श को साकार करने के लिये है। किन्तु जिनके मस्तिष्क में आदर्श की सचाई स्पष्ट नहीं है और जिनमें आदर्श के प्रति दृढ़ प्रेम नहीं है वे काम की सफलता में उसकी क्षति पूर्ति करने का प्रयत्न करते हैं और इसी कारण वे सत्य के साथ, हर प्रकार के समझौते के लिये तैयार रहते हैं।

मैं जानता हूँ कि जो विचार मेरे मन में है उसके लिये जीवन के संकुचित क्षेत्र में जमे हुए सारे विकारों को दूर करना आवश्यक है; किन्तु बहुत से व्यक्ति यह विश्वास करते हैं कि यह तीव्र कामनायें ही वह वाष्प-शक्ति है जो हमारे प्रयत्नों में वेग लाती है। वे उदाहरण देते हैं कि शुद्ध विचार ने कभी फल उपलब्ध नहीं किया। किन्तु तुम जब यह कहते हो कि विचार से फल बड़ा नहीं है तो वे तुम पर हँसते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय को स्थापित करने के अपने पिछले चौदह महीनों के प्रयत्नों के बीच मैंने बराबर अपने आप से कहा है: "असफलता की आशा से तुम्हारे अभिमान को चोट नहीं पहुँचनी चाहिये; कारण, असफलता से सत्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा; अपना सारा ध्यान सत्य पर बनाये रखने के लिये प्रयत्नशील रहो।" जहाँ मैं प्रेम करता हूँ, मेरी दुर्बलता चुपके से घुस आती है। जब वे जिनको मैं प्रेम करता हूँ, सफलता की आशा से जीते हुए अनुभव करते हैं तो वह विवश करती है कि मैं उनके लिये यह खिलौना लाया हूँ।

———

एस० एम० नोरिया
८ जुलाई १९२१

मुझे अतिशयोक्ति नहीं करनी चाहिये। मुझे स्वीकार है कि आदर्शों को सराकार करने में एक वाह्य अंग की आवश्यकता होती है जो अपनी वृद्धि के लिये पदार्थों पर निर्भर होते हैं; और पदार्थ चाहे सजीव प्राणी हों या भौतिक पदार्थ हों, सफलता में रुकावट डालते हैं, और इस कारण उस विषय पर विचार करने में गंभीरता की आवश्यकता है।

मेरे मस्तिष्क में जो चीज थी वह यह है कि व्याकरण पर पांडित्य, एवं साहित्य सृजन दोनों साथ-साथ नहीं भी चल सकते। व्याकरण पर जोर देने से भाषा-लालित्य नष्ट हो सकता है। पदार्थों की सफलता आदर्शों के परिपूर्ण के विरुद्ध भी हो सकती है। भौतिक सफलता का अपना प्रलोभन होता है। अक्सर सफलता पाने के लिये हमारे आदर्शवाद का दुरुपयोग किया जाता है—इस को हम गत युद्ध में देख चुके हैं। परिणामतः युद्ध जीत लिया गया है किन्तु आदर्शोपलब्धि नहीं हुई।

जब से अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की योजना सार्वजनिक रूप से सामने लाई गई मेरा अन्तर्द्वन्द्व बढ़ता रहा है—यह संघर्ष आदर्श के मानसचित्र और सफलता के मानसचित्र में है। योजना स्वयं बड़ी है और मनुष्य की आकांक्षाओं के लिये उसमें गुंजाइश है जिनमें अपनी शक्ति दिखाने और उसे पाने का प्रेम है। केवल आकांक्षायें ही नहीं हैं जो हमारे मन को लुभाती है; वरन् यह कुछ परिणामों को हमारा गलत मूल्य दे देना है। अन्तर्सत्य का निश्चय होने के लिये, कल्पना और श्रद्धा की आवश्यकता है और इसी कारण पास में होने पर भी उसकी आँख से बच जाने की संभावना होती है; जब कि बाहरी सफलता बिलकुल प्रत्यक्ष होती है।

तुमको ज्ञात है कि मेरे नाटक का चित्रा, देवताओं से प्राप्त भौतिक सौन्दर्य के प्रति कितनी ईर्ष्यालु हुई—क्यों कि वह सचाई स्वयं नहीं थी केवल सफलता थी। सत्य अवहेलना सह सकता है किन्तु सफलता के लिये असत्य से एकाकार नहीं हो सकता।

दुर्भाग्यवश उदाहरण दिये जाते हैं कि संसार में सर्वत्र बुद्धिमान और विद्वान् ईश्वर तक पहुंचने के लिये सड़क बनाने में निकार से समझौता करते रहे हैं। उन्हें केवल यह बात नहीं पता कि वे ईश्वर तक पहुंच नहीं पाये—और ईश्वर और सफलता एक चीज नहीं हैं। जब मैं यह सब सोचता हूं तो मैं गरीबी की सरलता के लिये लालायित होता हूं जो कुछ फलों की भांति अपने खोल में गहरे आदर्श की ताजगी और परिपूर्णता बनाये रहती है। तथापि जैसा मैंने कहा केवल शक्ति और भावना के अभाव से सफलता का प्रयत्न नहीं छोड़ना चाहिये। वह सत्य के प्रति हमारे बलिदान को प्रकट करे न कि अपने लिये।

एस० एस० मोरिया,
६ जुलाई १६२१

सभी हमारे सर्वोत्तम हित की कामना करते हैं और उस सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता कि यदि पूरे का भय हो तो हम आधा छोड़कर सन्तुष्ट हो सकते हैं। आदर्श धन की भांति नहीं हैं। वे सजीव वास्तविकता हैं। उनकी पूर्णता अविभाज्य है। एक भिखारिनी १६ आना मना होने पर ८ आने से सन्तुष्ट हो सकती है किन्तु अपने बच्चे का आधा भाग स्वीकार करने को तैयार नहीं होगी।

मैं जानता हूं कि पूर्व और पश्चिम के सच्चे मिलान के निमित्त काम करने के लिये, मुझे पुकार है। मैं अचेतन रूप से ही अपने को उस उद्देश्य के लिये तैयार कर रहा हूं। जब मैंने अपने 'साधना' व्याख्यान लिखे थे तो मुझको नहीं मालूम था कि मैं अपना काम पूरा कर रहा था। अपने सारे भ्रमण में मुझे बताया गया कि मेरे पश्चिमी पाठकों को 'साधना' ने सच्ची सहायता दी है। वह संयोग जिससे मैंने गीतांजलि का अनुवाद किया और वह आकस्मिक और अज्ञात लालसा जो मुझे पचासवें वर्षारंभ में यूरोप ले आई—उन सबने मिल कर मुझे उस मार्ग पर डाल दिया जिसका अन्त मैं उस समय जब कि मैंने पहले पहल उसे अपनाया, नहीं जानता था। इस गत यूरोप-भ्रमण ने वह मुझे निश्चित रूप से ज्ञात करा दिया है।

किन्तु जैसा मैंने पहले कहा सारे आदर्शों का मूल्य देना होता है। अहिंसा के नकारात्मक नैतिक उपदेश मात्र से ही काम नहीं चलेगा। मानव-समाज के

एकीकरण के लिये जिस सृजनात्मक शक्ति की आवश्यकता है, वह प्रेम है, यह स्पष्ट है। न्याय तो केवल एक उसका साथी है जैसे कि संगीत के साथ मृदंग की ताल। हम पूर्वीय, पश्चिमीयों के हाथों अपमानित होते रहे हैं। अब यह हमारे लिये अत्यन्त कठिन है कि पश्चिमी जातियों के लिये प्रेम बढ़ा सकें—विशेष कर इस कारण कि उसमें बुद्धिमानी और श्रेष्ठता की झलक होगी। भारतीय मॉडरेट पार्टी (उदार-दल) के शब्द और आचरण हमको प्रेरणा देने में इस कारण असफल रहते हैं कि उनकी उदारता का सिद्धान्त स्वार्थ पर था। सबल और दुर्बल में स्वार्थ के बन्धन में कहीं न कहीं ऐसी चीज़ अवश्य होगी जो गिराने वाली है। उससे हमको वह उपहार मिलते हैं जिससे हमको इसके अतिरिक्त कि आशा की दृढ़ता और हाथ पसारने में निस्संकोच भाव बना रहे, और कोई श्रेय नहीं मिल सकता।

पाने वाले की ओर से बलिदान उस देन का सच्चा मूल्य बढ़ाते हैं न कि देने वाले का बलिदान। जब हमारा अधिकार कमज़ोर होता है और उसको पाने का ढंग शौर्यहीन होता है, तब सारी देन भी हमको अधिक निर्धन बना देती है। यही कारण है कि उग्रवादियों के सामने भारत में उदार-दल वाले दयनीय रूप से पृष्ठ भूमि में रहते हैं।

जो भी हो, बात यह है कि आदर्शवादी होने के नाते यह मेरे लिये अत्यन्त कठिन है कि उन लोगों के प्रति प्रेम की भावना का पोषण करूँ जो न तो इससे उसे लेने के लिये परवाह करते हैं और जो न देने को स्वयं उत्सुक हैं। किन्तु इस दशा को मुझे कभी भी निर्विकार नहीं समझना चाहिये। हमारे बीच में वह आवरण है जिनको हटाना होगा—सम्भवतः वह दोनों दलों के बीच परिस्थितियों और अवसरों के बहुत बड़े असाम्य का कारण है। हमको अपनी शक्तिभर अपने साधनों से अपने हृदय की कुप्रवृत्तियों के विरुद्ध संघर्ष करना चाहिये (पर हम बराबर, आने-जाने के मार्गों को खुला रखने के लिये प्रयत्नशील हों ताकि दोनों ओर के व्यक्तियों को भाईचारे की सद्भावनाओं के साथ मिलने की सुविधा हो)। मैं तुमको बता नहीं सकता कि मैं तुम्हारा कितना कृतज्ञ हूँ क्योंकि तुम्हारे कारण तुम्हारे देश वासियों से प्रेम करना, मेरे लिये कितना सरल हुआ है। कारण, भारत के साथ तुम्हारा नाता कर्त्तव्य की

भावना से नहीं है वरन सच्चे प्रेम के कारण है। जब मैं यह देखता हूँ कि तुम्हारे प्रेम से शिक्षा ग्रहण नहीं की जाती—जब हमारे देशवासियों को इस अनुभूति की प्रेरणा नहीं होती कि तुम्हारा मानव-प्रेम, देश-प्रेम से कहीं अधिक सच्चा है तो मुझे दुःख होता है।

मुझे इस बात का भारी पछतावा है कि मेरी पिछली यूरोप यात्रा में तुम मेरा साथ न दे सके, यद्यपि मैं उन कारणों को भी समझता हूँ जिन्होंने तुम्हें रोका। यदि तुम मेरे साथ होते तो उस उद्देश्य के महान् सत्य को जिसे हमने अपनाया है तुम पूरी-पूरी तरह अनुभव कर सकते। मेरे अधिकांश देशवासियों को उन अनुभवों का तेज बहाव, जिसे मुझे पार करना पड़ा है, सदा अस्पष्ट रहेगा। अपने देश के इतिहास को मानवता की विशाल पृष्ठभूमि के सामने रखकर पढ़ने की मेरी प्रार्थना पर भी संभवतः कोई ध्यान नहीं दिया जायगा। अपने काम के लिये मैं सदा तुम्हारे साथ पर निर्भर रहूँगा। इसी कारण मुझे दुःख होता है कि मेरे प्रेरक आदर्श की सत्यता ने तुम्हारे हृदय के निकट आने का एक अपूर्व अवसर खो दिया है। वह दृष्टिकोण जिसके अनुरूप इधर तुम अपने जीवन का कार्यक्रम बना रहे हो, मेरे से बहुत भिन्न है। तुमको संभवतः ऐसा उत्तरदायित्व लेना पड़े जिसकी धारा, उससे हटकर हो जिसे मैं छोड़ूँ। मेरे काम की निर्जनता जो मेरे गत जीवन की भवितव्यता रही है, मेरे जीवन के अन्तिम दिनों तक चलती रहेगी। अपने पोषक की पुकार का मैं अनुसरण करूँगा और मैं जानता हूँ कि वह अपने ढंग से उसका प्रत्युत्तर देगा—स्वयं पूर्ण विकास, चाहे परिणाम कुछ भी हो।

एस० एस० मोरिया, १२ जुलाई, १९२१

पिछले चौदह महीनों में मेरा ध्यान केवल एक ओर रहा है और वह यह है कि भारत को मानवता के महत्तर संसार की सजीव हलचलों के सम्पर्क में लाऊँ। यह इस कारण नहीं था कि इस सम्पर्क से केवल भारत को ही लाभ होगा वरन इस कारण कि मुझे पूर्ण विश्वास था कि जब भारत का सुषुप्त मस्तिष्क अपनी तन्द्रा से उठेगा तो वह मानव जाति की आवश्यकताओं के लिये कुछ ऐसी भेंट देगा जो सचमुच बहुमूल्य है।

राजनैतिक सहयोग और असहयोग के विभिन्न ढंगों से अब तक भारतवर्ष ने दूसरों से दान माँगने का दृष्टिकोण अपनाया है। मैं किसी ऐसे सहयोग के ढंग की कल्पना कर रहा हूँ जिसके द्वारा वह ऐसी स्थिति में आये कि वह अपने उपहार संसार को दे सके। पश्चिम में मानव-मस्तिष्क पूरी तरह सक्रिय है। वह जीवन की सारी समस्याओं को सुलझाने के लिये बस भर सोच रहा है और काम कर रहा है। स्वय बुद्धिबल की पूर्णता मानसिक शक्ति को अपनी प्रेरणा देती है। किन्तु अपने भारतीय विश्वविद्यालयों में हमको वेग स्वयं न मिलकर, इस शक्ति के परिणाम मिलते हैं। इसी कारण हमारी शिक्षा से हमारा मस्तिष्क वेगवान न होकर, भाराक्रान्त होता है। इससे मुझे यह अनुभव हुआ है कि हमको पश्चिमी स्कूल अध्यापकों की आवश्यकता नहीं है वरन् हमको सत्यार्थी सहयोगियों की आवश्यकता है।

अपने देश के बारे में मेरी लालसा है कि वर्तमान संसार के महान् मानसिक आन्दोलन में, भारतीय मस्तिष्क अपनी शक्तियाँ लगा दे। इस प्रयत्न में होने वाली प्रत्येक सफलता, तुरन्त सांधे ही 'मानव' ऐक्य अनुभव करायेगी। लीग ऑफ नेशन्स (राष्ट्र संघ) इस एकता को स्वीकार करे या न करे, यह हमारे लिये एक सा ही है। हमको तो यह स्वयं अपने सृजनात्मक मस्तिष्क की सहायता से अनुभव करना है।

जिस समय हम सभ्यता-निर्माण में भाग लेते हैं, उसी क्षण हम अपने मानसिक एकान्तवास और अपने घेरे से युक्त हो जायंगे। हमें अभी पूर्ण विश्वास नहीं हुआ है कि हममे माहानिर्माताओं के—संसार के कर्मठों के—साथ चलने की शक्ति है। या तो हमारी शेखी भरी आवाज अस्वाभाविक चीत्कार में फट जाती है या हमारा आत्म-दैन्य अपनी हीनता की फड़फड़ाहट में अपना एक विकृत स्वरूप दिखाता है।

परन्तु मुझे निश्चय है कि इस विश्वास के लिये उपयुक्त, और इसे प्राप्त करने के लिये हमें भरसक प्रयत्न करना चाहिये। हमको शेखी मारने की जरूरत नहीं है; हमको केवल उस माननीय शान की जरूरत है जो यह जानती है कि सब पुरुषों के लिये सब काल के लिये उस लक्ष्य की पूर्ति करनी है। इससे मुझे संसार के विभिन्न भागों के विद्यार्थियों और विद्वानों को आमंत्रित करने का साहस हुआ

है कि वे एक भारतीय विश्वविद्यालय में हमारे विद्यार्थियों और विद्वानों से सहयोग की भावना के साथ मिलें। पता नहीं कि मेरे इस विचार का मेरे देश के वर्तमान निवासियों के हृदय में कोई समर्थन होगा या नहीं।

एस० एस० मोरिया,
१३ जुलाई, १६२१

हमारे यहाँ संगीत में प्रत्येक रागिनी का अपना चढ़ाव-उतार होता है जिसमें कुछ स्वर अनुपस्थिति होते हैं और कुछ जोड़ दिये जाते हैं और विभिन्न रागनियों में उनका क्रम भिन्न होता है। मेरे मस्तिष्क में भारत के विचार की अपनी भिन्न रागिनी है जो नये पक्ष सामने लाती है।

मेरी पश्चिम में अनुपस्थिति से, मेरा भारत के विचार का एक अपना स्वर-संकलन था और इसी कारण उस मानसचित्र का एक निजी भावनात्मक मूल्य था। जब अपनी यात्रा में मैं तुमसे पत्र-व्यवहार कर रहा था मुझे इसका तनिक भी ध्यान नहीं था कि उस समय के तुम्हारे भारत में और मेरे भारत में एक भारी अन्तर है। यह बात तो मुझे उस समय पता लगी जब अदन में अलग अलग तारीखों के कितने ही अखबार मेरे हाथों पड़े। इन चौदह महीनों में मुझे पहली बार ऐसा लगा कि अपनी आकांक्षा और अपने देश के बीच में मुझे एक नया प्रयत्न करना चाहिये।

मुझे सन्देह होता है कि क्या कोई उचित सामंजस्य संभव है? मैं अनवरत संघर्ष और चालता से घृणा करता हूँ—कि अपने को सुनाने के लिये मैं दूसरों की आवाजों से भी ज्यादा तेज आवाज में चिल्लाता रहूँ।

जिस भारत की मैं कल्पना करता रहा हूँ वह ससार का है। जिस भारत में थोड़े समय बाद मैं पहुँचूँगा वह बुरी तरह अपना है। किन्तु इनमें से मुझे किसकी सेवा करनी चाहिये?

महीनों पहले न्यू यॉर्क होटल में अपनी खिड़की के सामने बैठते हुए प्रति प्रातःकाल मेरे हृदय में व्यथा होती थी कि कब वह समय आये कि मैं वापिस लौटूँ—वह दिन जो मुझे भारत-माता की गोद में ले आयेगा।

किन्तु आज मेरा हृदय—बरसाती आसमान के नीचे, उछलते हुए नीले समुद्र की भाँति उदास है। पिछले कुछ दिनों से मैं अपने मन में इस पर आश्चर्य करता हू कि योरोप में जहाँ मुझसे रुकने की प्रार्थना थी, क्या एक वर्ष और रहना मेरे उद्देश्य के अनुरूप न होता। किन्तु अब समय चूक गया है। अब आगे अपनी मनोवृत्ति को एक ऐसी दशा के लिये जो मेरे मनोनुकूल नहीं है तैयार करने का प्रयत्न करना चाहिये।

एस० एस० मौरिया,
१४ जुलाई, १९२१

एक ऐसा आदर्शवाद है जो मुख्यतः स्वं-महत्ता के अहंकार का स्वरूप है। एक व्यक्ति का अपने विचारों में विश्वास सभव है सत्य के आनिश्चित प्रेम के कारण न हो। वह बारीकी से देखने पर अहम् का अन्धविश्वास हो सकता है। एक ऐसा भी आदर्शवाद है कि अपनी योजना के लिये, स्वतंत्रता पाने के लिये वह दूसरों की स्वतंत्रता का हनन कर सकता है।

मैं कभी-कभी सदय उठता हू कि कहीं आदर्शवाद का ऐसा अत्याचार मेरे मन पर अधिकार न जमा ले। इसका अर्थ यह होगा कि मेरा अपने में विश्वास की अपेक्षा सत्य मे विश्वास क्षीणतर हो गया है। अहंम् अभिमान, हमारी योजनाओं में अपने बन्धुओं की दशा-सुधार के नाम से चुपचाप घुस आता है; और जब हमको असफलता मिलती है तो चोट पहुँचती है। क्योंकि वह योजनायें हमारी योजनाये हैं।

इस प्रकार का अहम् भाव दूसरे पुरुषों के जीवनोद्देश्य को देखते हुए भी नहीं देखता। यह तो ऐसे व्यक्तियों पर जिनके स्वभाव और सामर्थ्य दूसरे ढंग के कामों के लिये उपयुक्त है, अपने ढंग की एक अभिरुचि को बलात् लादना है। यह तो उप भरती क अत्याचार की तरह है जो अध्यापकों को खुदाई के लिये और कवि को नर संहार के लिये विवश करता है। यह ईश्वरीय इच्छा के विरुद्ध होने के कारण भयङ्कर रूप मे निरथक है। सच यह है कि आदर्शवाद के सभी अत्याचारी अपने काम क लिये दैवी अधिकारों को हड़प लेना चाहते हैं।

उदासी का अन्धकार जो पिछले कुछ दिनों से मेरे मन पर मँडरा रहा है वह मेरे अहंकार की छाया होगी जिसकी आशा की लौ भय से धुंधली हो गई है। कुछ महीनों से मुझे यह निश्चय-सा हो रहा था कि सभी मेरे ढङ्ग से सोचेंगे और सभी मेरे काम को करेंगे। अपने अन्दर और अपनी योजना में इस विश्वास को अचानक रुकावट मिली है और मैं शंकित हूँ।

नहीं, यह मेरे लिये गलत है और दूसरों के लिये भी गलती का कारण है। मुझे हर्ष होना चाहिये कि अपने सत्य और सौन्दर्य के साथ एक महान् विचार मेरे मस्तिष्क में आया है। उसकी आज्ञाओं का पालन करने के लिये केवल मैं ही उत्तरदायी हूँ। उसमें स्वतंत्रता के पङ्ख है जो स्वयं उसे उसके लक्ष्य पर पहुँचा देंगे। उसकी पुकार संगीत है, सन्देश नहीं। सत्य के लिये कोई असफलता नहीं है—असफलता केवल मेरे लिये है—और उसमे क्या होता है ?

आगे मुझे तुमसे प्रत्यक्ष बात करने का अवसर मिलेगा। किन्तु दूरी में अपना एक महत्व है और पत्रों में बोलने की एक अपनी शक्ति होती है जो कि हमारी जीभ में नहीं होती। और इसी कारण जब हम मिलेंगे तो हमारे विचारों का कुछ मार्ग प्रकट होने से रह जायगा—इसलिये कि हमारे बीच स्थान और मौन का अभाव है।

एस० एस० मोरिया

१५ जुलाई १९२१

अपने इस अन्तिम पत्र को समाप्त करने से पूर्व, हे मित्र, मैं हृदय से तुम्हारी उस अनवरत उदारता के लिये कृतज्ञ हूँ कि तुम भारत से मेरी अनुपस्थिति में बराबर पत्र भेजते रहे। वे मेरे लिये उस संबल की भाँति हुए जो मरुस्थल में जाने वाले काफ़िले को भोजन और जल के रूप में होता है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में बिताये उल्लासहीन महीनों में मुझे उनकी बुरी तरह आवश्यकता थी। मैंने अपने मन में संकल्प किया कि मैं तुम्हें उसका प्रत्युत्तर दूँ। मेरा विचार है कि मैंने संकल्प पालन किया है। मुझे आशा है कि मेरे पत्र तुम्हें साप्ताहिक क्रम से मिलते रहे हैं। हाँ यह बात दूसरी है कि ब्रिटिश साम्राज्य के भाग्य निरीक्षण करने वाले सरकारी गुप्तचरों के सन्देह के कारण ताँता टूट गया हो।

मेरा अनुमान है कि पिछले सप्ताहों में मुझे आलस्य था और तुम्हें समाचार देने के लिये मैं पिअर्सन पर निर्भर था किन्तु अब उस कमी को पूरा कर देने में मैं व्यस्त हूं। किन्तु एक बात में तुमसे बाजी मारने की मुझे आशा नहीं है। एक पत्रलेखक के रूप में तुम अतुलनीय हो! मेरे लेख पत्र नहीं कहे जा सकते—ठीक उसी ढंग से जैसे घेंघों को मछली नहीं कहा जा सकता। वे किताब के पत्रों की भाँति हैं; जैसे किसी ग्रह से उसके अंग टूट कर गिरते हों वे तुम्हारी ओर फेंके जाते हैं और उनका अधिकांश एक जगमगाहट के बाद राख बन जाता है। किन्तु तुम्हारे पत्र प्यासी धरती पर मेह की बौछार की भाँति आते हैं। तथापि मेरी ओर तुम्हें एक बात पर विचार करना चाहिये—मुझे तुम्हारे साथ दौड़ने में कठिनाई है, कि मैं उस भाषा में लिखता हूँ जो मेरी अपनी नहीं हैं और इसके साथ किसी भाषा में कोई पत्र न लिखने की मौलिक जड़ता है। इसके विरुद्ध मुझे पत्र लिखने समय लड़ना पड़ता है। दूसरी ओर तुम्हें पत्र लिखना इतना आसान है जैसे वसंतारम्भ में हमारी साल वृक्षों को अपनी पत्तियाँ डाल देना। फिर भी मुझे आश्चर्य है कि तुम मेरे पुनरागमन पर इन पत्रों को संभाल सकोगे। वह परिमाण में इतने बढ़ गये हैं कि आश्चर्य होता है। नमस्कार।

परिशिष्ट :१:

निम्न पत्र, मैंचेस्टर गार्जियन के सम्पादक मिस्टर सी० पी० स्काट को रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा, अपने मित्र विलियम विन्स्टेनले पिअर्सन के संबंध में भेजा गया और यह २७ नवम्बर १९२३ को प्रकाशित हुआ : –

भारत के लिये प्रस्थान करने के अवसर पर, इटली में यात्रा करते हुए, एक दुर्घटना के कारण डबल्यू डब यू पिअर्सन के देहावसान का समाचार हमें मिल चुका है। सार्वजनिक दृष्टि में उनका बहुत कम परिचय है किन्तु हमको विश्वास है कि उनका निधन केवल उन व्यक्तियों के लिये ही क्षति नहीं है जो कि उनके सम्पर्क में आये। हम बहुत कम ऐसे व्यक्तियों से मिले, जिनका मानव प्रेम इतने सक्रिय रूप से सच्चा हो और जिनका सेवा का आदर्श उनके व्यक्तित्व में इतना घुल मिल गया हो जितना कि उनमें। मित्रता के उपहार को, हीन व्यक्तियों को और उन व्यक्तियों को जिनमें अपने पड़ोसियों को आकर्षित करने की कोई चीज नहीं थी, देने की तत्परता अपनी उदारता में स्वाभाविक थी, वह चेतन एवं अचेतन अहङ्कार के स्पर्श से बिलकुल मुक्त थी और वह भलाई के सन्तुष्ट अभिमान के बाहुल्य का स्वाद लेती थी। जिनको आवश्यकता थी उनको बराबर सहायता देने की सार्वजनिक मान्यता में कोई पारितोषिक नहीं हो सकता। वह इतनी सरल और मौन थी जैसे कि स्वयं उनकी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति। उनकी देश-भक्ति, मानव जगत के लिये थी। संसार के किसी भाग में किसी जाति पर होने वाले अन्याय और क्रूरता के लिये स्वयं उन्होंने घोर कष्ट सहा और उनसे अपनी मैत्री स्थापित करने के साहसिक प्रयत्न में, उन्होंने वीरता पूर्वक अपने देशवासियों द्वारा दिये गये दण्ड का स्वागत किया। शान्ति-निकेतन आश्रम को उन्होंने अपना घर स्वीकार कर लिया था जहाँ वह अपनी मानव-सेवा की इच्छा को पूरा कर सकते थे। भारत के प्रति उनका प्रेम बहुत सच्चा था और उनके जीवन की सारी आकांक्षायें उस पर केन्द्रित थीं।

मुझे विदित है कि इस देश में और भारत के बाहर अन्य देशों में उनके बहुत से मित्र हैं जो उनकी शुभ हार्दिक निस्वार्थता का आदर करते हैं और जिनको उनके निधन का दुःख है। मुझे विश्वास है कि उनको प्रिय शान्ति-निकेतन आश्रम में उनके नाम से एक स्थायी स्मारक बनाने के हमारे विचार का वह स्वागत करेंगे। उनकी बहुत बड़ी इच्छा थी कि आश्रम से संबंधित चिकित्सालय फिर से बनकर, पूरी तरह आवश्यक पदार्थों से युक्त हो, और इसके लिये वह बराबर प्रयत्न करते रहे और जब संभव हुआ उन्होंने इसके लिये धन दिया। मेरा विश्वास है यदि हम उनकी इस इच्छा को पूरा कर दें और चिकित्सालय-भवन बना दें और उसमें बच्चों के लिये एक विशेष विभाग हो, तो यह उनकी स्मृति को स्थायी करने का सर्वोत्तम ढंग होगा और पीड़ित-जनों के लिये उनकी सहानुभूति का हमें स्मरण कराता रहेगा

———

परिशिष्ट :२:

निम्न पत्र महाकवि द्वारा उनके मित्र विली पिअर्सन को लिखा गया था और यह श्री पिअर्सन के कागजों में पाया गया था। किन्तु जिस समय वह मिला, उसे इस पुस्तक के अन्तिम प्रकरण में सम्मिलित करना संभव नहीं था। इसी कारण मैंने इसे परिशिष्ट रूप यहाँ सम्मिलित किया है। सं०

शान्तिनिकेतन,
४ जुलाई १९२१

मुझे अभी अभी तुम्हारा पत्र मिला जिसमें तुमने संस्था बद्ध धर्म के संबंध में मेरी सम्मति माँगी है।

एक अपार्थिव विचार की दृष्टि से मुझे उसके संबंध में कुछ नहीं कहना क्योंकि यह वर्णव्यवस्था की भाँति केवल उस समय ही पूर्ण है जब उसकी आदर्श स्वरूप में चर्चा की जाय। अपनी जन्मगत स्वाभाविक भिन्नताओं के अनुसार मनुष्य का वर्गीकरण किया जा सकता है। यदि सभी स्वाभाविक ब्राह्मण मिल-कर उस काम को करें जो केवल उन्हीं को करना है तब उनके पारस्परिक प्रोत्सा-हन और सहयोग से अत्यन्त बलवती शक्ति उत्पन्न हो सकती है परन्तु ज्योंही एक वर्ग बनता है, उस वर्ग व्यक्तित्व में अनिवार्य रूप से एक अहंकार उत्पन्न हो जाता है और वह अपने मूल्य को बाहरी सफलता और भौतिक जीवनकाल से आँकता है। वह मत-वर्ग, आत्म-रक्षा और वृद्धि के लिये संघर्ष करता है, चाहे उसे सत्य का ही मूल्य देना पड़े। उसकी श्रेष्ठता और महत्व की बढ़ती हुई चेतनता एक अभिमान हो जाती है जो—धन और पद-अभिमान की भाँति—एक प्रलो-भन बन जाती है।

आचरण और जीवन में सच्चा ईसाई बनना बहुत कठिन है: किन्तु केवल ईसाईमत-वर्ग के सदस्य बनने के सरल मार्ग से एक व्यक्ति ईसाई होने का पद

पा लेता है और यह अधिकार समझता है कि वह उससे जो उस मत को नहीं मानते—चाहे वह उससे अधिक उत्तम हों घृणा कर सकता है।

उन सभी धर्मों के लिये जो मतवाद में पड़ जाते हैं, यह सत्य प्रमाणित हुआ है। धार्मिक जातियाँ अधिकतर सत्य की अपेक्षा, रीतियों और सामूहिक भावनाओं पर स्थापित होती हैं। ईसाई परिवार में जन्मे बच्चे ईसाई जाति में सम्मिलित किये जाते हैं, इस कारण से नहीं कि उसके सदस्य होने के उपयुक्त उन्होंने कोई बात दिखाई हो, वरन केवल जन्म के संयोग से। जिस धर्म को वह मानते हैं उसके प्रति अपनी निजी धारा को खोजने का न उन्हें समय है न अवसर। उनको लगातार इस विश्वास में ढाल दिया जाता है कि वे 'ईसाई' हैं। इसी कारण हमने वह दृश्य देखे हैं जिनमें आदमी उपदेशकों की भाँति—ईसाई धर्म प्रचार करते हैं, उन पुरुषों में जिन्हें वे सैनिक होकर मार सकते थे, और कूटनीतिज्ञ होकर उन्हें अपनी एड़ियों के नीचे दबाकर रखते, यदि उन्होंने अपना काम अपने सच्चे स्वभाव के अनुरूप छाँटा होगा।

एक संस्था जो उन व्यक्तियों को जो अपनी एक आकांक्षा में सच्चे हृदय से विश्वास करते हैं, एक सूत्र में बाँधती है, अपने सदस्यों के लिये बहुत बड़ी सहायता है। किन्तु यदि अपने विधान से वह उन व्यक्तियों को आश्रय देती है जिनमें सच्ची निष्ठा का ऐक्य नहीं है वरन् एकसी आदत का ऐक्य है तो वह अनिवार्य रूप से दम्भ और असत्य का जन्म-स्थान बन जाती है। और क्योंकि प्रत्येक संस्था अपने संयोग की शक्ति से आप ही आप एक वेग लाती है, इस असत्य और दम्भ को बहुत बड़ी शैतानी करने का तुरन्त अवसर मिल जाता है।

सभी आध्यात्मिक महापुरुषों की तरह ईसा मसीह, नैतिक महानता में अद्वितीय थे। उनका सारी मानवता से प्रेम का पवित्र संबंध था। उनकी चिदात्मा, मानव आत्मा की गहराई के निर्जन में काम करती है। यही कारण है कि उदारमना व्यक्ति पीड़ित और अपमानित वर्ग का पक्ष समर्थन करते हैं। दूसरी ओर ईसाई गिरजाघर उन स्थापित स्वार्थों का समर्थन करने में लगे हैं जो दुर्बल का शोषण करना चाहते हैं। ऐसा होने का कारण यह है कि गिरजा-घर एक संस्था के नाते से एक शक्ति है और जिसकी और शक्तियों से संधि है जो

केवल धर्म-हीन ही नहीं वरन् बहुधा अधार्मिक हैं। सच तो यह है कि वह उन्हीं शक्तियों से जिन्होंने ईसा को सूली पर चढ़ाया, समझौता करने को तैयार हैं।

यह कहना सच है कि एक धार्मिक जाति के अधिकांश सदस्यों का चरित्र उसके आदर्शों का स्तर निश्चित करता है। इसी कारण वह संस्था जो अपने पदार्थों की छाँट में विवेक से काम नहीं लेती, उसमें अपनी संख्या वृद्धि का बेहद लालच होता है और बहुधा वह अपने सदस्यों की सामूहिक तीव्र कामनाओं को प्रकट करने वाली सुचारु मशीन बन जाती है। क्या तुमने गत यूरोपीय महायुद्ध में यह बात नहीं देखी? क्या ईसाई मतावलम्बन शान्ति काल में फैशन का वह लबादा नहीं हो गया जो पाप-समूहों को ढके रहता है।

मैं जानता हूँ कि ईश्वर की खोज करने वालों की जाति मनुष्य के लिये बहुत बड़ा आश्रय है। किन्तु ज्योंही यह एक संस्था बन जाती है तो उसकी असुरों को चोर दरवाजे से मार्ग देने की संभावना होती है।